

सप्तभंगितरंगिणी प्रवचन

सहजानंद शास्त्रमाला

सप्तभंगितरंगिणी

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी ‘‘सहजानन्द’’ महाराज

प्रकाशक

श्री माणकचंद हीरालाल दिग्म्बर जैन पारमार्थिक न्यास
गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

प्रकाशकीय

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला सदर मेरठ द्वारा पूज्यवर्णीजी के साहित्य प्रकाशन का गुरुतर कार्य किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक ‘सप्तभंगितरंगिणी’ अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्रीमनोहरजी वर्णी की सरल शब्दों व व्यवहारिक शैली में रचित पुस्तक है एवं सामान्य श्रोता/पाठक को शीघ्र ग्राह्य हो जाती है।

ये ग्रन्थ भविष्य में सदैव उपलब्ध रहें व नई पीढ़ी आधुनिकतम तकनीक (कम्प्यूटर आदि) के माध्यम से इसे पढ़ व समझ सके इस हेतु उक्त ग्रन्थ सहित पूज्य वर्णीजी के अन्य ग्रन्थों को <http://www.sahjanandvarnishastra.org/> वेबसाइट पर रखा गया है। यदि कोई महानुभाव इस ग्रन्थको पुनः प्रकाशित कराना चाहता है, तो वह यह कंप्यूटर कॉपी प्राप्त करने हेतु संपर्क करे। इसी ग्रन्थ की PDF फाइल www.jainkosh.org पर प्राप्त की जा सकती है।

इस कार्य को सम्पादित करने में श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास गांधीनगर इन्दौर का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है। ग्रन्थ के टंकण कार्य में श्रीमती मनोरमाजी, गांधीनगर एवं प्रूफिंग करने हेतु श्री सुरेशजी पांड्या, इन्दौर का सहयोग रहा है — हम इनके आभारी हैं।

सुधीजन इसे पढ़कर इसमें यदि कोई अशुद्धि रह गई हो तो हमें सूचित करे ताकि अगले संस्करण (वर्जन) में त्रुटि का परिमार्जन किया जा सके।

विनीत

विकास छाबड़

53, मल्हारगंज मेनरोड़

इन्दौर (म०प्र०)

Phone:94066-82889

[Email-vikasnd@gmail.com](mailto>Email-vikasnd@gmail.com)

www.jainkosh.org

सप्तभंगितरंगिणी प्रवचन

प्रवक्ता:

(अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, पूज्य श्री १.५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णा)

गाथा १

वंदित्वा सुरसन्दोहवन्दाघिसरांरुहम्।

श्रीवीरं कुतुकात्कुर्वे सप्तझंगीतरंगिणीम्॥१॥

सप्तभंग तरङ्गों के अधिगम की आवश्यकता का आधार—ग्रन्थकार मंगलाचरण कर रहे हैं कि देव समूहों से वंदनीय है चरणकमल जिसके ऐसे श्री वीर भगवान को नमस्कार करके सहज अनायास ही सप्तभंगी तरंगिणी को बनाता हूँ इस ग्रन्थ की रचना का आधार क्या है? क्यों इस ग्रन्थ रचना की आवश्यकता हुई है ? इन सब बातों जानने के लिये तत्त्वार्थसूत्र के एक सूत्र पर दृष्टि दीजिये- “प्रमाणनयैरधिगमः” इस सूत्र की उत्थानिका में यह समझना चाहिये कि संसार के सब जीव दुखी हैं, जन्म-मरण की परम्परा में संकट पा रहे हैं। इन जीवों को संकटों से मुक्ति की आवश्यकता है। इन संकटों से मुक्ति यह जीव तभी पा सकता है जब कि संकट रहित, वैभवसहित, समृद्ध अपने आपके स्वरूप का परिज्ञान कर सके। ऐसे सहज आत्मस्वरूप का परिज्ञान करने के लिये यह आवश्यक है कि इसके प्रतियोगी इस समस्त जगत के स्वरूप की सही जानकारी की जाये। इसी का प्रयोज्य बताया गया सम्यग्दर्शन—कि प्रयोजनभूत जीवादिक ७ तत्त्वों का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। उन तत्त्वों का परिज्ञान कैसे हो ? इसके लिये सूत्रकार ने कहा है—‘प्रमाणनयैरधिगमः’ सो इसकी व्याख्या सुनिये। अधिगम तो यहाँ कर्ता कारक है और प्रमाण नय ये करणकारक है। समस्त तत्त्वार्थों का परिज्ञान प्रमाण और नयों से होता है। तो सर्वप्रथम अधिगम की बात सुनो ! अधिगम के मायने है समझ। अधिगम दो प्रकार से होता है—एक स्वार्थ और दूसरा परार्थ। एक ऐसा जानना कि हम खुद जान गए उसे हम कहना नहीं चाहते अथवा कह भी नहीं सकते। इस तरह का अपने आपमें जो परिज्ञान हो वह तो है स्वार्थ अधिगम। स्व मायने खुद के अर्थ मायने प्रयोजन के लिये। जो खुद के लिये जानना होता है उसे स्वार्थ अधिगम कहते हैं। दूसरा होता है परार्थ अधिगम—जो अधिगम समझ दूसरे के लिये की जा रही है अर्थात् दूसरे लोग भी समझ जायें, ऐसे प्रयोजन के लिये जो जानना किया है और उसकी प्रवृत्ति की जाती है याने जो अधिगम हुआ उसे कहते हैं परार्थ अधिगम।

स्वार्थाधिगम व परार्थाधिगम के प्रकार—स्वार्थ अधिगम और परार्थ अधिगम ये दोनों प्रमाण और नयों से जाने जाते हैं। स्वार्थाधिगम तो ज्ञानात्मक है और परार्थाधिगम यह शब्दात्मक है। इसके द्वारा बात हम समझकर दूसरों को समझाने के लिये चलते हैं। तो दूसरे लोग समझ जायें उसका उपाय क्या है ? कुछ शब्दों से ही तो कहेंगे। दूसरों को समझाने के लिये हम प्रयत्न क्या करेंगे ? कुछ शब्द ही बोलेंगे, जिससे वे समझ जायें। तो परार्थ होता है शब्दस्वरूप। तो स्वार्थाधिगम जो केवल ज्ञानात्मक है जिसका प्रयोजन खुद की ही जानकारी सन्तोष आदिक विकास करना है, उसमें तो विकल्प नहीं है और कुछ बाह्य में उसका व्यवहार नहीं होता है, वह तो खुद की समझ के लिये है। अब जो परार्थाधिगम कहा गया है कि दूसरों को प्रतिबोध देने के लिये अधिगम करना, जानकारी करना, वह है शब्दरूप, तो यह परार्थाधिगम दो प्रकार का है—प्रमाणात्मक और नयात्मक। शब्द द्वारा जो हम दूसरों को समझाने के लिये प्रवृत्ति करेंगे, ऐसा वह शब्दरूप अधिगम दो प्रकार का है—प्रमाणात्मक अधिगम उसे कहते हैं कि समस्तरूप से तत्त्वार्थ का जानना होता है वह है प्रमाणात्मक और जो एकदेश रूप से तत्त्वार्थ का जानना होता है वह है नयात्मक। तो प्रमाणात्मक और नयात्मक यह दो प्रकार का जो अधिगम है, भेद है ७ रूपों में प्रवृत्त होता है। कुछ भी बात हो, जहाँ कहा तो वहाँ ७ भंग अपने आप आ जाते हैं क्योंकि कहने में विधि और प्रतिषेध की प्रधानता होंगी। जब तक उसमें विकल्प नहीं, उसका कोई भंग नहीं। जहाँ कुछ दूसरों के समझाने की विधि में जानकारी की तरंग बनी है वहाँ ही भंग बनती है। तो यह दो प्रकार का भी भेद ७ प्रकार से युक्त होता है विधि और प्रतिषेध की प्रधानता में। बस, यह ही प्रमाण सप्तभंगी है और नय सप्तभंगी है।

सप्तभंगों का विवरण—७ भंगों का वाक्य का जो समूह है उसे सप्तभंगी कहते हैं। वे वाक्य हैं कौन ? ‘स्यात् अस्ति एव घटः’ याने घट है, किसी अपेक्षा को चित्त में रखकर कहा जा रहा है कि घट है। दूसरा भंग है—‘स्यात् नास्ति एव घटः’ घट को छोड़कर अन्य पदार्थों को निरखते हुए जब ध्यान में आ रहा है बाकी सब पदार्थ ये नहीं हैं जिस घट को स्यात् अस्ति बताया गया है वह घट अन्य पदार्थों की अपेक्षा से नहीं है, ऐसे निषेध की प्रधानता से भी पकड़ होती है। तो तब ये दो दृष्टियाँ आयी। किसी भी पदार्थ को निरखकर यह है, और यह अन्य नहीं है, ये दो बातें दृष्टि में आती हैं, जानने में भी ये दो बनी हुई हैं। भले ही हम उसका प्रयोग न करे लेकिन जानकारी बराबर इसी ढंग से होती है। स्यात् अस्ति एव घटः—यह अन्य पदार्थ नहीं है जब इन दो प्रकार की जानकारियाँ हुई तो एक जिज्ञासा होती है तो आखिर एक शब्द में बतलाओ कि असलियत क्या है ? जैसे घट स्वरूप से है, पररूप से नहीं है। जब ये दो बातें ध्यान में आ रही तो असली बात एक शब्द में बताओ ? तो उस समय यह ज्ञान होता है कि यों

तो अवक्तव्य है वह घट। एक शब्द में उसके समस्त अंगों को भंगों को संगों को बता सके इस शब्द का काम नहीं है। तब तृतीया भंग निष्पत्र होता है कि स्यात् अवक्तव्य। यों तीन स्वतंत्र एकाकी भंग है। पदार्थ है—पदार्थ नहीं है, पदार्थ अवक्तव्य है। इन तीन भंगों के होने पर कुछ और विकल्प की ओर चलता है, कुछ और धर्म विवरण करना चाहता है। तो वहा भाव बनाता है कि घट स्यात् अवक्तव्य है और उसके साथ अस्ति नास्तिपना भी लगता है। तो जैसे अवक्तव्य के साथ स्वतंत्र भंग और लगे हैं इस तरह अवक्तव्य के बिना स्वतंत्र दो भंग भी लग गए। तब ७ भंग इस प्रकार बनते हैं कि कथंचित् घट है, कथंचित् घट नहीं है, कथंचित् घट अवक्तव्य है कथंचित् घट है और नहीं है, कथंचित् घट है और अवक्तव्य है, कथंचित् घट नहीं है अवक्तव्य है और ७ वाँ भंग होता है कि कथंचित् घट है, नहीं है, इस रूप से अवक्तव्य है। ऐसे इन ७ वाक्यों के समुदाय का नाम सप्तभंगी है।

सप्तवाक्यों में अधिगम की पर्याप्तता का कारण—७ वाक्यों में अधिगम कैसे बना ? इसका कारण है सुनने समझने वाले के प्रश्न। प्रश्न कर्ता के जो प्रश्न हुए उसका ज्ञान हो जाये, उसका समाधान हो जाये, यह तो एक प्रयोजन रहता ही है। तो उस प्रश्न के समाधान में जो वाक्य कहा वह इन सप्तभंगों की ही बात है देखिये ! समझना है एक पदार्थ को। उस पदार्थ में अविरुद्ध नाना धर्मों का ज्ञान किया जाना है यद्यपि ये धर्म शब्दशः विरुद्ध जच रहे हैं लेकिन वे सभी धर्म एक वस्तु में ही रह रहे हैं इसलिये वे अविरुद्ध कहलाते हैं। है और न, इन दोनों का स्वरूप तो विरुद्ध है। है का अर्थ विधि है, न का अर्थ निषेध है, तो स्वरूप यद्यपि इसके विरुद्ध है लेकिन ये सभी धर्म एक वस्तु में रहते हैं इसलिये अविरुद्ध है। घट अपने स्वरूप से है, यह भी बात घट में देखी जाती है और पररूप से नहीं है यह भी बात घट में देखी जाती है। इस कारण ये दोनों धर्म परस्पर अविरुद्ध हो गए। तो ऐसे अविरुद्ध विधि प्रतिषेध रूप नाना धर्म एक पदार्थ में रहते हैं। उस पदार्थ के विशेषण है, ऐसे ज्ञान को उत्पन्न करने वाले जो ७ वाक्यों का समुदाय है वही सप्तभंगी कहलाता है।

सप्तभंगों के निर्माण में प्राश्नित में प्रश्न का आधारत्व—यहाँ पर विचार करें तो बहुत सी बातों का स्पष्टीकरण होता है। प्रश्नकर्ता ने कोई प्रश्न किया तो उसके बाद उसके उत्तररूप ज्ञान होगा ना। तो उसके ज्ञान को उत्पन्न किसने किया ? प्रश्नकर्ता के प्रश्न ने । तो का जो प्रश्नज्ञान है उस प्रश्न के ज्ञान का कारण हुआ प्रश्न। तो प्रश्न जनक और प्रश्न ज्ञान है जन्य । किसी शंकाकार ने कोई शंका की और विद्वानों ने उसका समाधान किया। तो समाधान का जनक कौन हुआ ? प्रश्नकर्ता का प्रश्न और समाधान जन्य है। किसी शंकाकार का प्रश्न ही तो समाधान

मिलने का कारण बनेगा। शंका का उत्तर दिया जा रहा है। तो उत्तर तो जन्य और शंका है जनक। शंका के उत्तर को शंका ने पैदा कराया। शंका की गई, उसका मिला उत्तर। तो प्रश्न हुआ जनक और उसका जो उत्तर है वह है जन्य। तो यह समझना चाहिये कि जो ७ भंग उत्पन्न हुए हैं उन ७ भंगों को प्रश्नकर्ता के प्रश्न ने उत्पन्न किया है। प्रश्न भी ७ प्रकार से उत्पन्न हुआ करता है, अतएव समाधान भी ७ प्रकार के आये हैं प्रश्नकर्ता ने किया प्रश्न और प्रश्न में क्या पूछा गया उसके ज्ञान से ही तो समाधान देने वाले को कहने की इच्छा हुई, और कहने की इच्छा होने पर वक्ता ने फिर वाक्यों का प्रयोग किया। कोई प्रश्नकर्ता प्रश्न करता है तो सुनने वाला यही तो कहता है कि मैं इसका समाधान कर दूँ। जहां प्रश्नकर्ता के प्रश्न का समाधान करने की इच्छा जगी तो फिर वक्ता बोलने लगता है। तो यहां अब तक समझिये कि समाधानकर्ता ने जो वाक्य प्रयोग किया उसका जनक तो है वक्ता की विवक्षा। किसी ने प्रश्न सुन लिया और उसका जवाब देने की इच्छा न जगाये तो वह कुछ बोलेगा तो नहीं। वक्ता कुछ बोलेगा तो इसका कारण है विवक्षा, बोलने की इच्छा। अब बोलने की इच्छा समाधानकर्ता में कैसे उठी ? उसका जनक है प्रश्नकर्ता का प्रश्न। प्रश्नकर्ता ने प्रश्न किया तो अब इस विद्वान् ने यह इच्छा की कि मैं इसे जवाब दूँ। इसके बाद वह जवाब देने लगता है। तो इस पद्धति में प्रश्न करने वाले के प्रश्न ज्ञान की प्रयोज्यता हुई, वह आधार बना अर्थात् जो ७ प्रकार के वाक्य बोले गए हैं उसका कारण बना प्रश्नकर्ता के प्रश्न का ज्ञान और, फिर उस समाधान करने की इच्छा होने से यह विद्वान् अब समाधान देने लगा तो ७ वाक्यों का निर्माण हुआ यों सप्तभंगी के निर्माण में प्रश्नकर्ता के प्रश्न का होना आधार है और उस प्रयोग में अब ये ७ प्रकार के भंग हुए जिनको कि ऊपर बताया गया है।

प्रकृतग्रन्थोक्त सप्तभंगी के लक्षण की अन्य आचार्यप्रणीत लक्षण से पुष्टि—सप्तभंगी का लक्षण आचार्यों ने इस प्रकार कहा है कि ‘प्रश्न के वश से’ एक वस्तु में अविरोध विधि और प्रतिषेध की कल्पना करना सो सप्तभंगी है इस लक्षण में जो ‘प्रश्न के वश से’ इतना शब्द दिया है इस शब्द से प्रयोज्यता प्रकट होती है अर्थात् सप्तभंगी में ७ ही भंग क्यों हुए ? उसका कारण और प्रयोजन प्रकट होता है कि प्रश्नकर्ता के प्रश्न ७ प्रकारों में ही सम्भव है। इस बात को आगे कहेंगे कि क्या ७ प्रकार के ही प्रश्न उठते हैं? कम उठकर ही रह जाये? या इससे अधिक उठें, ऐसा क्यों नहीं होता ? इस समय तो इतना जानना है कि जो पदार्थों की जानकारी में ७ प्रकार की नहीं हो रहे, फिर भी वस्तु के सम्बन्ध में जानकारी करने में ७ प्रकार की पद्धतियाँ बनती हैं उनका आधार है प्रश्नकर्ता के प्रश्न। यद्यपि किसी समय प्रश्नकर्ता नहीं भी है, प्रश्न भी नहीं हो रहे, फिर भी वस्तु के सम्बन्ध में जानकारी करने में ७ भंग बन जाते हैं। वहाँ भी यह अर्थ लेना

कि चूंकि प्रश्न ७ प्रकार के ही हो सकते हैं तो कोई जानकारी भी ७ प्रकार की ही कर सकेगा। आचार्यों ने जो सप्तभंगी का लक्षण कहा है उसमें बताया है विधि और और प्रतिषेध की कल्पना करना। तो विधि और प्रतिषेध की कल्पना का भाव यह है कि हाँ अथवा ना बताने के प्रकार में ज्ञान का उत्पन्न करना। और, यह विधि प्रतिषेध कल्पना भी अविरुद्ध रूप से है। विधि और प्रतिषेध का ऐसा खास वैशिष्ट्य याने विशेषता इस शब्द से जोड़ दिया है कि देखो ! एक ही पदार्थ में विधि और प्रतिषेध दोनों बराबर सम्भव है ओर ऐसा विदित भी होता है। यह विधि प्रतिषेध की कल्पना जो कि प्रश्नकर्ता के प्रश्न के आधार से हुई है और अविरुद्ध भाव से हुई है वह सब एक वस्तु में होनी चाहिये। यों तो विधि प्रतिषेध नाना स्थलों में नाना पदार्थ के होता है, उससे कहीं सप्तभंगी न बन जायेगी। किन्तु एक ही पदार्थ में अविरुद्ध भाव से विधि और प्रतिषेध का परिचय होना सो सप्तभंगी में बनेगा। यों ७ वाक्यों में जिसका समुदायपना पर्याप्त होता है अर्थात् का परिज्ञान की सम्पन्नता ७ प्रकार के वाक्यों में निष्पत्र होता है ऐसा यह कल्पना के आधार भूत पदार्थ के बारे में ज्ञान होता है।

सप्तभंगी के लक्षण में कहे गये अविरुद्ध शब्द की सार्थकता का विवरण—अब सप्तभंगी के लक्षण में जो विशेषण दिये गये हैं इन सबकी सार्थकता बताते हैं। सप्तभंगी का लक्षण प्रारम्भ में यह	किया	गया
--	------	-----

है—“एकवस्तुविशेष्यकाविरुद्धरुविधिप्रतिषेधात्मकधर्मप्रकारकबोधजनकसप्तवाक्यर्पायससमुदायत्वम्” इस उक्त लक्षण में जो अविरुद्ध शब्द दिया है उसका प्रयोजन यह है कि प्रत्यक्ष अनुमान आदि से विरुद्ध विधि और प्रतिषेध पाले वाक्यों में यह लक्षण न चला जाय सो इसकी अतिव्यासि रोकने के लिये अविरुद्ध शब्द दिया है। जो प्रत्यक्ष प्रमाण से विरुद्ध बैठता है ऐसा विधि प्रतिषेध एक वस्तु में नहीं लगाया जा सकता। जैसे अविरुद्ध विधि और प्रतिषेध की कल्पना अथवा जानकारी की गई है वह अविरुद्ध है। उसमें प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणों से विरोध नहीं आता। ये ऐसे भंग एक पदार्थ में लादे जाये कि जो परस्पर में विरुद्ध हो तो वह पदार्थ का स्वरूप नहीं कहलायेगा। तो प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणों से विरुद्ध विधि प्रतिषेध वाले वाक्यों में यह लक्षण नहीं जाता। जिस विधि और प्रतिषेध की जानकारी करायी जाये वह प्रमाण से विरुद्ध न होना चाहिये। जैसे कोई अग्नि को ही कहने लगे कि इसमें ठंडापन है और ठंडापन है नहीं अथवा गर्म है, तो ऐसी विरुद्ध बातें पदार्थों में नहीं बतायी जा सकती। अपेक्षा से सभी धर्म सम्भव हैं। उन धर्मों को बताया जाता है। वे धर्म परस्पर विरुद्ध हैं स्वरूप से लेकिन एक वस्तु में रहते हैं। जैसे जीव के सम्बन्ध में कहा गया है कि जीव नित्य है और जीव के ही सम्बन्ध में बताया गया है। कि अनित्य है तो नित्य का स्वरूप और अनित्य का स्वरूप एक दूसरे से बिल्कुल उल्टा है।

इसलिये स्वरूप दृष्टि से नित्य और अनित्यपने में विरोध है। जो नित्यपना है सो अनित्यपना नहीं है लेकिन जीव में द्रव्यदृष्टि से नित्यपना है और पर्यायदृष्टि से अनित्यपना है अतः इन दोनों का जीव पदार्थ में विरोध नहीं आता। तो जो स्वरूप से विरुद्ध अनेक धर्म एक वस्तु में अविरुद्ध रूप से रहते हैं, उनकी जानकारी सप्तभंगी में बतायी जाती है।

सप्तभंगी के लक्षण में एकवस्तुविशेष्यक शब्द की सार्थकता—अब इस सप्तभंगी के लक्षण में जो यह शब्द दिया गया है कि एक वस्तु विशेष्यक अर्थात् विधि और प्रतिषेध की निगरानी एक वस्तु के सम्बन्ध में ही की जाती है। इस शब्द के देने से बहुत सी विडम्बनाएं समाप्त कर दी गई। घट है, घट नहीं है, यों भिन्न-भिन्न स्थलों में भिन्न-भिन्न वातावरणों में दोनों का प्रयोग भी होता है। जहाँ घड़ा है को बताना है घड़ा है किसी महल में ! तभी किसी अन्य ग्राम में कपड़े की खोज हो रही थी, न मिला तो बता दिया कि कपड़ा नहीं है। अब एक जगह का घट है और दूसरी जगह का घट है और दूसरी जगह का पट नहीं है इन दो मेल से सप्तभंगी न बनेगी। यह बात एक विशेष्यक शब्द से जाहिर होती है। अनेक वाक्यों के समुदाय में सप्तभंगी नहीं बनता, किन्तु एक ही पदार्थ के सम्बन्ध में अविरुद्ध विधि प्रतिषेध की जानकारी से सप्तभंगी बनता है।

सप्तभंगी के लक्षण में सप्त शब्द की सार्थकता—अब सप्तभंगी में जो सप्त शब्द दिया है कि कहीं दो ही वाक्यों में स्याद्वाद की समाप्ति न हो जायेगी। जैसे कहा कि कथंचित् घट है कथंचित् घट नहीं है तो यों मात्र दो वाक्यों में स्याद्वाद की सम्पन्नता नहीं बतायी जा सकती। तो केवल दो वाक्यों में सप्तभंगी बन जाये इसके निवारण के लिये सप्त शब्द दिया है, कोई पुरुष केवल लौकिक रूप में एक ही वाक्य बोले—जैसे किसी को घट की जरूरत थी और वह कहता है कि घट लावो तो केवल एक उदासीन वाक्य को लेकर कोई इसमें ही सप्तभंगी की समाप्ति करे तो यह बात नहीं बनती, इस कारण बताया गया है कि ७ वाक्यों की संगति हो तो सप्तभंगी की समाप्ति बनता है। इस प्रकरण में एक विशेष बात यह समझना चाहिये कि लक्षण में जो यह शब्द दिया गया है कि ‘प्राश्निकप्रश्नज्ञानप्रयोजत्वेसति’ इतना अंश यद्यपि अतिव्याप्ति अव्याप्ति इस दोष के निवारण करने में समर्थ नहीं है, तथापि यह विशेषण दिया गया है यह बताने के लिये कि सप्तभंगों का जो उत्थान हुआ है उसका आधार प्रश्नकर्ता का प्रश्न है। यह विशेषण देना आवश्यक हुआ है। इसका तात्पर्य है कि इतना कह देने मात्र से कि प्रश्नकर्ता के प्रश्नज्ञान की प्रयोज्यता पर सप्तभंगी होता है सो कहीं इतने मात्र से अतिव्याप्ति और अव्याप्ति दोषों का निवारण तो विचार विमर्श के बाद किया जायेगा। प्रश्नकर्ता कुछ भी प्रश्न करे और उत्तर दे, वह उत्तर सही है अथवा नहीं उनमें किसी प्रकार का दोष नहीं आता, वे सब बातें तो प्रमाण के

आधार पर है। प्रश्नकर्ता ने प्रश्न किया और उसका उत्तर दिया, इतने मात्र से निर्दोषता न समझ लेना चाहिये। निर्दोषता तो प्रमाण से साबित होगी। यहाँ तो बताने के लिये कि जिन्हें समझाया जाना है ऐसे शिष्यों के प्रश्न ७ प्रकार के ही सम्भव हो सकते हैं। इस कारण भंग ७ ही होते हैं। इस नियम की सूचना देने के लिये यह विशेषण दिया गया है।

अधिगम में सप्तभंग की संभवता—सप्तभंगी के लक्षण के सम्बन्ध में संक्षेप में उक्त कथन के बाद अब यह जिज्ञासा होती है कि प्रश्नकर्ता के प्रश्न ७ प्रकार से ही क्यों सम्भव है ? समाधान यह है कि प्रश्नकर्ता के जानने की इच्छा ७ प्रकार में ही बनती है। जैसे प्रश्नकर्ता जानना चाहता था कि जीव क्या नित्य है ? जीव क्या अनित्य है ? तो जैसे इन दो मोटी जिज्ञासाओं के बल पर इनका भंग बन जाता है ऐसे ही प्रश्नकर्ता कुछ विवेकी है, बुद्धिमान है, तो उसके ही प्रश्नों का विस्तार कितने प्रकारों में हो सकता है ? तो वह अधिक से अधिक ७ प्रकार के ही सम्भव है। तो चूंकि जिज्ञासा ७ प्रकार की होती है अतएव प्रश्नकर्ता के प्रश्न ७ प्रकार के ही सम्भव है। प्रश्नकर्ता में किसी पदार्थ के जानने की इच्छा हुई है उस इच्छा को व्यक्त करने पाले वाक्य जो हो उनका भी नाम प्रश्न है। जैसे किसी ने प्रश्न किया कि गौ, इस शब्द का वाच्य क्या है ? गौ शब्द का मतलब क्या है ? तो जैसे उत्तर दिया गया कि देखो जिसमें सास्ना लगी हो, पूछ लगी हो, जिसका कंधा विशाल हो, खुर और सींग हो आदिक अवयव करके जो विशेष प्राणी हो उसका नाम गौ है। तो जब प्रश्नकर्ता ने यह पूछा कि गाय क्या होती है ? गाय को न जानने वाले पुरुष को वहाँ गाय के जानने की इच्छा हुई। जैसे कहीं उपदेश में या लोकव्यवहार में गाय की कुछ विशेषतायें बतायी गई, उनको सुनकर गाय को न जानने को न जानने वाले पुरुष पूछ बैठते हैं कि गाय क्या चीज है ? बस उसका उत्तर उसके प्रश्न के अनुसार उत्तर देने वाला देता है। तो यों ही पदार्थ के सम्बन्ध में प्रश्नकर्ता के जो प्रश्न हो सकते हैं वे ७ प्रकार के ही हो सकते हैं। इस कारण उत्तर भी ७ प्रकार से दिया गया और उनसे जो ७ वाक्य बने उनके समुदाय का नाम सप्तभंगी है।

सप्तभंगी के विधान में प्रश्न, जिज्ञासा प्रश्नज्ञान व समाधान का सम्बन्ध—पुरुष उत्तर देने वाला होता है वह कैसे समझे कि इस पुरुष को जानने की इच्छा क्या है ? वह तो उसके प्रश्न से ही जान जायेगा। इस कारण प्रश्नकर्ता का प्रश्न ही प्रश्नकर्ता की जिज्ञासा का प्रतिपादक है। प्रश्न करने वाले ने जो कुछ भी पूछा उस वाक्य से यह ध्वनित हुआ कि इस प्रश्नकर्ता की इस प्रश्नकर्ता को अमुक तत्त्व के जानने की इच्छा है। तब प्रश्नकर्ता का प्रश्न तो हुआ जनक और उत्तर देने वाले का ज्ञान हुआ जन्य। देखो उत्तर देने वाला अभी बड़ी शान्ति समता से बैठा हुआ

था, उसे कुछ मतलब नहीं था, खलबली नहीं थी, पर प्रश्नकर्ता ने कोई प्रश्न कर दिया तो उस प्रश्न को सुनकर उत्तर दाता की वृत्ति में परिवर्तन हुआ। इतना तो वह तुरन्त समझ गया कि अमुक प्रश्नकर्ता अमुक पदार्थ को जानना चाहता है। अब भले ही उसके राग न हो इतना बताने का, न बताने का, न बताये, मगर जो सुना है उससे प्रश्नकर्ता के प्रश्न का ज्ञान तो हो ही गया, उत्तर अगर देगा तो उसी के अनुसार देगा। तब प्रश्नकर्ता का प्रश्न हुआ समाधान का जनक और समाधान हुआ जन्य। यों सप्तभंगी के लक्षण में जो मुख्य बात कहीं गयी है कि एक वस्तु के सम्बन्ध में अविरुद्ध विधि और प्रतिषेध को सिद्ध करने वाले ज्ञान को जो पैदा करे ऐसे ७ वाक्यों के समुदाय का नाम सप्तभंगी है सो यह लक्षण निर्दोष सिद्ध होता है।

प्रश्नकर्ता की सप्तविधि जिज्ञासा का कारण—अब शंकाकार कहता है कि सप्तभंगी के लक्षण के विवरण में जो यह कहा गया कि ७ भंग होने का कारण है प्रश्नकर्ता के ७ प्रकार के प्रश्न और प्रश्नकर्ता में ७ प्रकार के प्रश्न हुए हैं उसका कारण है ७ प्रकार की जिज्ञासा अर्थात् प्रश्नकर्ता को जानने की इच्छा ७ प्रकार के ज्ञान की हुई। सो ठीक है लेकिन प्रश्न यहाँ यह होता है कि प्रश्नकर्ता के मन में जिज्ञासा ७ प्रकार से ही क्यों हुई ? इसके समाधान में कहते हैं कि प्रश्नकर्ता को अथवा किसी भी समझदार को किसी एक धर्मी वस्तु के परिचय करने के सम्बन्ध में संशय ७ प्रकार से ही उत्पन्न हो सकता है। अब यहाँ कोई पूछे कि संशय भी ७ प्रकार से ही क्यों होता है ? तो उसका उत्तर है कि संशयों के विषयभूत धर्म भी ७ प्रकार के होते हैं। ये धर्म वे ही हैं—कथंचित् सत्त्व, दूसरा कथंचित् असत्त्व, तीसरा क्रम से योजित उभय अर्थात् सत्य व असत्य, चौथा अवक्तव्यपना, ५वाँ कथंचित् सत्त्व सहित अवक्तव्य, छठा कथंचित् असत्त्व सहित अवक्तव्यपना और ७वाँ है क्रम से योजित उभय से विशिष्ट अवक्तव्यपना। यों धर्म ७ प्रकार के होते हैं अतः संशय ७ प्रकार से ही सम्भव है और जितने प्रकार से संशय सम्भव है उतनी जिज्ञासा होती है। जैसे किसी को संशय हुआ कि वह सीप है या चांदी है ? तो इस संशय में दो कोटि है। इस संशय करने वाले पुरुष के चित्त में दोनों जिज्ञासाओं बन रही है—सीप हो तो सीप की बात समझ में आ जाये, चांदी हो तो चांदी की बात समझ में आ जाये। तो जितनी कोटि के संशय होते हैं उतनी कोटि की जिज्ञासा हुई। इन जिज्ञासाओं के समाधान में जो ७ वाक्य कहे गये उनके समुदाय का नाम सप्तभंगी है। इस तरह धर्म जो ७ वाक्य बताये गये उनके विषय उत्पन्न होने वाले संशय ७ ही है।

प्रथम भंग की निष्पत्ति का आधार भूत प्रथम संशय—उन ७ संशयों का विवरण करते हैं—जिन संशयों पर जिज्ञासा आधारित है और जिन जिज्ञासाओं पर सप्तभंग का विधान

आधारित है उनमें प्रथम संशय है कि घट कथंचित् है ही अथवा नहीं, याने या सर्वथा है। यहाँ संशय में दो कोटियाँ बताई गयी हैं। किसी प्रकार के संशय में कोटियाँ कम से कम दो होती हैं। यहाँ दो कोटि का संशय उत्पन्न हुआ है कि घट कथंचित् है अथवा घट कथंचित् नहीं है याने क्या सर्वथा है ? इसके समाधान में पहिला भंग बना कि घट कथंचित् है। तो घट कथंचित् है इस भंग की निष्पत्ति का कारण बना संशयज्ञान और वह संशयज्ञान इस रूप में हुआ कि घट कथंचित् है अथवा सर्वथा है। क्या बात है ? उसके समाधान में प्रथम भंग बना कि घट कथंचित् है।

प्रथम संशय के सम्बन्ध में एक विचारधारा और उस पर शंका—कोई संत कहते हैं कि यह प्रथम संशय घटविषयक अस्तित्व तथा घटविषयक नास्तित्व को विषय करने वाला है। तब यहाँ संशय यह हुआ कि घट कथंचित् है अथवा घट कथंचित् नहीं है। उसके समाधान में यह प्रथम भंग बना। इस प्रथम संशय की निष्पत्ति सुनकर इस संशय निष्पत्ति पर शंकाकार कहता है कि कथंचित् सत्त्व के अभाव का ही नाम कथंचित् असत्त्व है। तब यहाँ दो कोटियाँ तो नहीं हुई। इस कारण संशय का विषय यहाँ सम्भव नहीं है। इस संशय में दो कोटियाँ बताई जा रही हैं—कथंचित् सत्त्व और कथंचित् असत्त्व। क्या है इनमें से ? यों संशय का रूप बनाया गया है। लेकिन संशय का रूप यों बन नहीं सकता। कारण यह है कि यहाँ तो दोनों ही धर्म रहे आते हैं। कथंचित् सत्त्व है और कथंचित् असत्त्व है। कथंचित् सत्त्व के साथ कथंचित् असत्त्व का कोई विरोध नहीं है। संशयज्ञान जो बनता है वह एक पदार्थ में विरुद्ध नाना धर्मों का ज्ञान करने में बनता है। पर, एक धर्मों में नाना धर्म का ज्ञानमात्र होने से संशय नहीं बनता। जितने धर्म एक वस्तु में एक साथ रह सकते हैं उनमें संशय की क्या बात ? जो दो बातें एक धर्मों में विरुद्ध हैं उनका ज्ञान अथवा उनकी जिज्ञासा हो तो वहाँ संशय बनता है। घट में यह घट कथंचित् है, कथंचित् नहीं है, घट आदिक अनेक पदार्थों के स्वरूप से नहीं है, यों अस्तित्व और नास्तित्व दोनों ही एक पदार्थ में जब सम्भव है तब उसमें संशय की क्या बात ? यदि एक ही पदार्थ में एक ही वाक्य में प्रयोग और व्यवहार में आने वाले वचन में शब्द अनेक होने से संशय ज्ञान मान लिया जाये तो जब कोई यह कहे कि यह घट द्रव्य है तो लो, इस वाक्य में यह शब्द कहकर उसमें घटपना और द्रव्यपना इन नाना धर्मों का ज्ञान बताया गया है। तो नाना धर्मों का ज्ञान करना मात्र यदि संशय ज्ञान करना मात्र यदि संशय बन जाय तो इस ज्ञान को भी कि यह घट द्रव्य है संशय बन जाना चाहिये। लेकिन ऐसा माना तो नहीं गया। तब फिर एक घट के सम्बन्ध में यह कथंचित् घट है अथवा कथंचित् घट नहीं है इस ज्ञान को संशय ज्ञान कैसे कहा जा सकता है? इसका और खुलासा यों समझिये कि जैसे कोई बर्तन धूप में रखा है, कब से रखा

है, किसने रखा है, यह तो जानकारी नहीं है, मगर धूप में रखा है। अब उसे उठाने का प्रयोजन है उस समय में यह संशय होता है कि यह बर्तन गर्म है, या ठंडा ? तो गर्म और ठंडा होना ये दोनों परस्पर विरोधी धर्म है। इसलिये यहाँ संशय बन सकता है। मगर जो विरोधी धर्म नहीं है उन धर्मों का बयान करे कि यह घट पीला है, मजबूत है, इस कथन में संशय की क्या बात है ? पीला होना, मजबूत होना दोनों धर्म एक में सम्भव है। तो ऐसे ही कथंचित् अस्तित्व और संशय की बात क्या हुई ? तो जब कथंचित् है अथवा कथंचित् घट नहीं है, यह संशय बन न सकेगा, तो प्रथम भंग की ही उत्पत्ति न हो सकेगी, क्योंकि भंगों की निष्पत्ति का कारण संशय ज्ञान बताया गया।

प्रथम संशय की एक विचारधारा पर हुई एक शंका का समाधान—शंकाकार की उक्त शंका के समाधान में कहते हैं कि जो यहाँ प्रथम संशय दिखाया गया है वहाँ संशय यह बनता है कथंचित् अस्तित्व है या सर्वथा अस्तित्व है ? जहां प्रथम भंग बताया गया है कि घट कथंचित् है, यह समाधान इस संशय के होने पर ही तो दिया गया है कि कोई संशय करे कि घट कथंचित् है या सर्वथा है ? उसका उत्तर है प्रथम भंग। तो अब देख लीजिये ! कि इस एक घट पदार्थ में कथंचित् अस्तित्व और सर्वथा अस्तित्व इन दोनों विरोधी धर्मों के प्रकार की जिज्ञासा बन रही है, और ये दोनों धर्म परस्पर विरुद्ध है। कथंचित् अस्तित्व होना और सर्वथा अस्तित्व होना ये दोनों परस्पर विरुद्ध है। यहाँ संक्षेप में ये कोटियाँ नहीं ली जा रही है कि घट कथंचित् अस्ति है या कथंचित् नास्ति है ? किन्तु संशय यह बन रहा है कि घट सर्वथा है ? ऐसी जिज्ञासा होने पर उत्तर बन गया कि घट कथंचित् है। घट कथंचित् है याने अपने स्वरूप से है। घट सर्वथा है, ऐसा नहीं है अर्थात् घट अपने स्वरूप से है और पट आदिक समस्त पदार्थों के स्वरूप से सब प्रकार से है, यह बात वहाँ नहीं है। तो बराबर यही संशय जिज्ञासा और प्रश्न हुआ। उसके उत्तर में यह प्रथम भंग निष्पत्ति होता है कि घट कथंचित् है।

प्रथम भंग के आधारभूत संशयज्ञान की उत्पत्ति होने की असम्भवता की चर्चा व उसका समाधान—अब यहां शंकाकार कहता है कि देखिये ! संशय की कोटियाँ उन पदार्थों की उन धर्मों में बनती हैं जो किसी तरह प्रसिद्ध तो हो। जैसे अंधेरे उजाले के समय में प्रातः कोई नागरिक घूमने गया किसी नई गली में। तो दूर से एक ऊचे लम्बे ढूंठ को देखकर उसे यह संशय हो गया कि यह ढूंठ है या पुरुष खड़ा है ? तो भाई ! ढूंठ भी प्रसिद्ध है पुरुष भी प्रसिद्ध है। जब दोनों बातें कहीं प्रसिद्ध हैं तो उसका तो संशय बन गया, पर जो चीज कहीं प्रसिद्ध नहीं है उसका संशय कैसे बन सकता है ? प्रथम भंग के आधारभूत संशयज्ञान में यदि यह बात कहीं

जाय कि यहां संशय की कोटियाँ यों बनायी जाये कि घट का कथंचित् सत्त्व है या सर्वथा सत्त्व है ? तो यहाँ कथंचित् सत्त्व तो प्रसिद्ध है और सर्वथा अस्तित्व कहीं भी प्रसिद्ध नहीं। फिर यहां संशय की कोटि कैसे बन गयी ? इस शंका के उत्तर में कहते हैं कि यह शंका करना यों युक्त नहीं है कि कभी अप्रसिद्ध भी हो कुछ, लेकिन उसकी प्रसिद्ध रूप में समझ बन रही हो तो वहाँ संशय का विषयपना सम्भव है ? यद्यपि सर्वथा अस्तित्व होना सर्वथा नास्तित्व होना वास्तविक नहीं है, क्योंकि वह सिद्धान्त ही नहीं है लेकिन जानकारी में या विवाद के प्रसंग में यह बात प्रसिद्ध हो रही है कि वस्तु कथंचित् ही अस्ति है या सर्वथा अस्ति है या सर्वथा अस्ति है ? तो अप्रसिद्ध भी जब प्रसिद्ध रूप से ज्ञात हो रहे हो तो दोनों ही प्रसिद्ध हो गये। यों कथंचित् अस्तित्व और सर्वथा दोनों प्रसिद्ध होने पर यहा संशय बन जाता है। यहां दो कोटियों को पुनः समझिये ! घटपने सहित सत्त्व यह तो हुआ एक कोटि का ज्ञान और सब प्रकार से सहित सत्त्व यह हुई दूसरी कोटि की समझा। तो यहाँ वस्तु के सत्त्व में सब प्रकार का सहित सत्त्व नहीं है याने घट अपने स्वरूप से है और पर के स्वरूप से नहीं है, यह बात तो मानी ही जा रही है। इसमें जो प्रथम भंग बना कि घट कथंचित् अस्ति है। तो वहाँ यह संशय हुआ था घटपने से सहित सत्ता से युक्त है या सब पदार्थों की सत्ता ये युक्त है ? ऐसा संशय होने पर प्रथम भंग की उत्पत्ति हुई। तो यहाँ संक्षेप में निष्कर्ष यह समझिये कि घटपने करके सहित कथंचित् सत्त्व को समझना एक कोटि है और सब प्रकार सहित सत्त्व को समझना दूसरी कोटि है। चीज चल रही है सत्ता के सम्बन्ध में। घट है, है यह यहाँ मूल बात कहीं गई, उसका यह घटरूप से है या स्वरूप से है ? यह संशय बना। उस संशय के निवारण करने में जो प्रयत्न जगा, उसका फल है प्रथम भंग की उत्पत्ति।

सप्तभंगी में द्वितीय भंग की निष्पत्ति का कथन—अब अगले भंगों की बात सुनिये जैसे उस प्रथम भंग की निष्पत्ति में यह संशय कारण है इसी प्रकार द्वितीय आदिक भंगों की उत्पत्ति में भी उस-उस प्रकार के संशय ज्ञान कारण है। जैसे कथंचित् घट का अस्तित्व तथा सर्वथा घट का अस्तित्व इन दो कोटि के संशयों की सम्भावना है और इस संशय को दूर करने के लिये प्रथम भंग बना है। ऐसे ही एक दूसरा संशय यह हो सकता है कि कथंचित् घट का नास्तित्व है या सर्वथा घट का नास्तित्व है। घट के सम्बन्ध में पहले तो यह जाना गया था कि घट है और फिर जाना गया कि घट नहीं भी है अर्थात् अन्य पदार्थों के स्वरूप से नहीं है तो इस द्वितीय भंग की उत्पत्ति में पहले यह संशय जगा था कि घट का असत्त्व जो कहा जा रहा है सो क्या यह कथंचित् घट का असत्त्व है या सर्वथा घट का असत्त्व है ? इस विवरण को सुगमतया समझना है तो यों समझिये कि घट पर स्वरूप से नहीं है यह बात है या घट स्व और पर

सबके रूप से नहीं है यह बात है ? उसके उत्तर में कहा गया कि घट कथंचित् नहीं है। अर्थात् कपड़ा आदिक अन्य द्रव्यों के स्वरूप से नहीं है। तो इस द्वितीय संशय के निवारण करने के लिये यहाँ द्वितीय भंग की उत्पत्ति हुई है। इस संशय ज्ञान में कथंचित् और सर्वथा उन दो विरोधी धर्मों से दो कोटियाँ बनती हैं संशयज्ञान होता है विरुद्ध धर्मों के सम्बन्ध में। तो यहाँ विरुद्ध धर्म है कथंचित् और सर्वथा। बस, कथंचित् और सर्वथा का आश्रय लेकर जो दो कोटिया बन जाती है और उसमें संशयज्ञान बनता रहता है तो उस संशयज्ञान के निवारण करने के लिये सप्तभंगों के भंग निष्पत्त होते जा रहे हैं। यों सप्तभंगों में जो प्रथम भंग कहा है घट कथंचित् है उसके आधारभूत संशय की बात भली प्रकार बतायी गई है और द्वितीय भंग में जो यह कथंचित् नहीं है उसके आधारभूत द्वितीय संशयज्ञान की भी बात कहीं गई हैं जितने संशयज्ञान होते हैं उनका निवारण करने से उतने ही अधिगम में भंग हो जाया करते हैं।

भंगों की सात संख्या से अधिक हो जाने की शंका—सप्त संख्या के सम्बन्ध में अन्य आचार्यों ने भी कहा है कि सत्त्वादिक भंग ७ होते हैं क्योंकि पदार्थ के परिचय के सम्बन्ध में भी ७ संशय हुआ करते हैं और उन ७ संशयों में अन्तर्निहित ७ जिज्ञासायें होती हैं। जब यों प्रश्न ७ हुए तो उत्तर भी ७ होते हैं। अब यहाँ शंकाकार कहता है कि यह सब व्याख्यान तभी सुयुक्त हो सकता है जब कि धर्मों के ७ ही भेद सिद्ध हो, परन्तु धर्म ७ ही है यह सम्भव नहीं है क्योंकि प्रथम द्वितीय धर्म की तरह क्रम और अक्रम से योजित प्रथम तृतीय आदिक ७ धर्मों से भिन्न अन्य धर्म सिद्ध होते हैं इसलिये ७ ही प्रकार के धर्म हैं यह नियम नहीं हो सकता तात्पर्य इसका यह है कि जैसे ये तीन भंग किए हैं—स्यादअस्ति, स्यादनास्ति और स्यादअस्तिनास्ति। तो कहते हैं कि वहाँ पहला व दूसरा भंग मिलाकर तीसरा भंग बनाने की तरह पहला और तीसरा भंग मिलकर एक भंग और बना दो। जैसे अवक्तव्य के साथ पहला, दूसरा व तीसरा भंग जोड़ा गया है यों अस्ति के साथ भी अस्ति नास्ति और जोड़ दिया जाये तब यह धर्म एक अलग हो गया। तब ७ ही धर्म होते हैं यह बात तो सिद्ध नहीं होती। इसी तरह तृतीय आदिक धर्मों को क्रम से या अक्रम से लगाने पर अन्य भी भिन्न धर्म हो गया। ऐसे ही उन अन्य धर्मों को चतुर्थ के साथ जोड़ देने से भी अन्य धर्म सम्भव होते हैं। तब धर्म ७ ही है यह नियम संगत न रहा।

सात से अधिक भंग हो जाने की शंका का समाधान—अब उक्त शंका के समाधान में कहते हैं कि यह शंका करना नहीं है क्योंकि क्रम व अक्रम से योजित प्रथम और द्वितीय धर्मों को जो लगाया है सो इस तरह से कोई धर्म है ऐसा प्रतीतिरूप में नहीं है। मायने जैसे स्यादअस्ति कहकर लोग समझते हैं कि यह कहा गया, स्याद् नास्ति कहकर लोग जानते हैं कि यह कहा

गया, ऐसे ही स्याद् अस्ति नास्ति, इस तरह जोड़कर कोई धर्म बना यह लोगों को प्रतीत नहीं होता । स्याद् अस्ति घटः इस प्रथम वाक्य में क्या कहा गया ? घटपने से सहित घट कहा गया घट में घटत्व है, उस घटत्व से सहित घट कहा गया। अब घट में दो सत्त्व सम्भव नहीं है। यदि कहो कि यह घट मृतिकामय है तो देखो घट घटपने से सहित है और घट मृतिकायपने से सहित है। तो देखो ! घट में दो धर्म आ गए। घटत्व से युक्त सत्त्व और मृतिकामयने से युक्त सत्त्व। तब धर्मान्तर की लोक से प्रतीति नहीं है, यह कहना तो युक्त नहीं है। इसके भी समाधान में कहते हैं कि देखिये ! घटपने से सहित सत् ऐसा जब कहा गया तब एक स्वतंत्र धर्म विदित हुआ। और जब कहा जाय कि मृतिकामयपने से सहित सत् तो इसमें मृतिकामयत्व धर्म स्वतंत्र हुआ। अर्थात् मृतिकामयपने से सहित के ७ भंग अलग लगेंगे। जैसे घटः अस्ति: इसके ७ भंग बनाये ऐसे ही मृतिकामय है तो काठमय नहीं है। अवक्तव्य है, आदिक फिर ७ भंग मृतिकामय अलग बनेंगे। सप्तभंगी से सम्बन्धित चौज ८वीं नहीं होती। यों तो जितने पदार्थों की बात कहीं जायेगी उतने के ही भंग लगेंगे। तो इस हेतु से अन्य सप्तभंगी तो सिद्ध हो जायेंगे, पर एक सप्तभंगी में ७ धर्मों से अलग कोई धर्म बने यह सम्भव नहीं है।

एक धर्म के विषय में दो नास्तित्व की असंभवता होने से द्वितीय व तृतीय भंग संयोजना की अयुक्तता—प्रथम और तृतीय धर्म की योजना से अन्य धर्म सिद्ध नहीं होता, अर्थात् जैसे स्याद् अस्ति स्याद् अस्ति नास्ति यों मिलकर कोई धर्म नहीं होता। इसी तरह स्यादनास्ति स्याद् अस्ति नास्ति यों मिलकर भी कोई धर्म अलग नहीं होता। एक धर्म के विषय में जैसे दो सत्त्व असम्भव है इसी प्रकार एक पदार्थ के विषय में दो नास्तित्व असम्भव है। जैसे एक धनी में काष्ठमय घट के सत्त्व का अभाव है वह मृतिकामय है, काष्ठमय नहीं है तो उससे भिन्न मृतिकामय घट की सत्ता सम्भव है। दो नास्तित्व सम्भव नहीं, दो अस्तित्व सम्भव नहीं, किन्तु अपेक्षा से एक पदार्थ में अस्तित्व और नास्तित्व सम्भव है, इसी कारण किसी भी एक मूल धर्म को लेकर उसके परिचय में बढ़े तो दो बातें भिन्न सिद्ध होगी। एक ही पदार्थ में अपेक्षा से ७ धर्म ही सिद्ध हो सकते हैं।

प्रथम चतुर्थ, द्वितीय चतुर्थ तथा तृतीय चतुर्थ भंग की संयोजना पर शंका—अब यहां शंकाकार कहता है कि प्रथम चतुर्थ तथा द्वितीय चतुर्थ तथा तृतीय चतुर्थ इन धर्मों की एक साथ योजना से फिर धर्मान्तर की सिद्धि कैसे हुई ? इन ७ भंगों में स्याद् अस्ति स्यादनास्ति स्याद् अस्तिनास्ति, स्याद् अवक्तव्य जैसे ये चार पहिये भंग हैं तो इनमें पहिये और तीसरे मिलकर कोई भंग नहीं बनता। स्याद् अस्ति, स्याद् अस्तिनास्ति यों मिलकर भंग नहीं बनता और दूसरा

मिलकर भी नहीं बनता। स्याद् अस्ति, स्याद् अस्तिनास्ति क्यों नहीं बनता कि एक पदार्थ में दो सत्ता नहीं। स्यान्नास्ति स्यादस्ति नास्ति भंग क्यों नहीं बनता ? यों कि एक तत्त्व में दो असत्ता नहीं। इस पर शंका यों की जा रही है कि ऐसे प्रथम और चतुर्थ मिलकर व द्वितीय चतुर्थ मिलकर भी भंग नहीं बने। जैसे बनाया गया स्यादस्ति अवक्तव्य, स्याद् नास्ति अवक्तव्य तो जब पहिला तीसरा न मिल सका, दूसरा तीसरा न मिल सका तो पहला चौथा भी न मिले, दूसरा चौथा भी न मिले, तीसरा चौथा भी न मिले, वे भी कभी धर्मान्तर सिद्ध न हो, लेकिन तुमने तो धर्मान्तर ही सिद्ध किया है। स्याद् अस्ति अवक्तव्य यों कहा है कि अवक्तव्यपने के साथ स्याद् अस्ति की योजना की है और आगे स्याद् अवक्तव्य के साथ स्यादनास्ति की योजना की है। तो इस प्रकार से जिस क्रम से योजित दो अस्तित्व में दूसरे अस्तित्व में दूसरा अस्तित्व का कुछ प्रयोजन नहीं है क्योंकि एक पदार्थ में दो सत्त्व को असम्भव कहा है तो इसी तरह एक साथ लगाये गये अस्तित्व नास्तित्व में नास्तित्व में नास्तित्व भी नहीं रह सकता। क्योंकि जहाँ एक धर्म विषयक एक नास्तित्व है वहाँ अन्य नास्तित्व भी सम्भव नहीं है। तब इस तरह प्रथम चतुर्थ मिलकर भी धर्मान्तर मत बनो।

प्रथम चतुर्थ, द्वितीय चतुर्थ, तृतीय चतुर्थ भंग की संयोजना का समाधान—उक्त शंका के उत्तर में कहते हैं कि देखिये ? अवक्तव्यपने के साथ जो अस्तित्व नास्तित्व लगाया गया है वह उभयरूप से नहीं है, किन्तु एक साथ योजित अस्तित्व नास्तित्व इन दोनों धर्मों का सर्वथा कथन नहीं कर सकते थे इसलिये अवक्तव्यरूप भंग धर्मान्तर ही है। जैसे कहा गया कि पदार्थ स्वरूप से है पररूप से नहीं है इस बात को यदि एक साथ योजित किया जाय, प्रथम और द्वितीय धर्म को एक साथ बोला जाय तो नहीं बोला जा सकता, अतएव वह कहने के लिये अशक्य रूप एक धर्मान्तर है, किन्तु कोई दो सत्ता नहीं मिलायी गई। एक पदार्थ में दो सत्ता नहीं मिलती। अगर किसी अपेक्षा से दो सत्ता समझ में आये तो वे भिन्न-भिन्न धर्म हो गए। वहाँ सप्तभंगी न्यारे- न्यारे लगेंगे, पर सप्तभंगों में कोई एक भंग बढ़कर ८ भंग हो जाये सो सम्भव नहीं है, इसी तरह सत्त्व के साथ अवक्तव्यपना लगे यह भी धर्मान्तर है। तब यह छल नहीं कर सकते कि यदि प्रथम और तृतीय धर्म नहीं मिलते, द्वितीय और तृतीय नहीं मिलते तो प्रथम चतुर्थ भी न मिले, ऐसी शंका नहीं कर सकते। अवक्तव्यपना एक स्वतंत्र धर्म है कितनी ही चीजें, द्रव्य और पर्याय दृष्टि से जानी गई बात एक साथ कहीं नहीं जा सकती इसलिए अवक्तव्य है।

सप्तभंगों में विभिन्न पद्धति में तत्त्व की झलक—अब इन ७ भंगों में जो कुछ झलक हुई है उसका व्योरा सुनो ! प्रथम भंग कहा गया है- ‘स्यादस्ति एव घटः’ तो इसमें सत्त्व की प्रधानता

से प्रतीति कराई गई है। दूसरे भंग में कहा गया है—‘स्यादनास्ति एव घटः’ इसमें असत्त्व की प्रधानता से प्रतीति कराई गई है तृतीय भंग में क्रम से अस्ति नास्ति की योजना भी है तब क्रम से सत् असत् की प्रधानता से प्रतीति है, क्योंकि किसी अपेक्षा घट का अस्तित्व और किसी अपेक्षा से घट का नास्तित्व अनुभव में आ रहा है। अब यहाँ कोई दोष न दिखाये कि भिन्न-भिन्न दो पदार्थों को भी क्रम से लगा दो, क्योंकि दो सत्त्वों को, दो पदार्थों को क्रम से योजित करके सप्तभंगी में, पर दो अस्तित्व अथवा दो नास्तित्व की योजना नहीं तभी तो यह एक धर्म नहीं बताया कि स्यादअस्ति, स्याद अस्ति नास्ति। अस्ति नास्ति कहने में जब एक बार सत्तापना आ गया तो अब स्याद अस्तिपना उसमें नहीं जुड़ सकता। इसी तरह यों भी कोई नहीं जुड़ा सकेगा कि स्यादनास्ति, स्याद अस्तिनास्ति जब स्याद अस्ति नास्ति में एक नास्ति आ गया तो उसके साथ दूसरा नास्तित्व नहीं लगा सकते। अव्यक्त न अस्तिरूप है, किन्तु अस्ति और नास्ति को एक साथ कहना अशक्य है। इस अशक्यता को अवक्तव्यपना कहते हैं। इस कारण अवक्तव्यपना अस्ति के साथ भी लगेगा, नास्ति के साथ भी लगेगा और अस्ति नास्ति के साथ भी लगेगा। यह बात बहुत ध्यान से समझना है कि ७ भंगों में कोई सा भी भंग ऐसा नहीं है जिसमें कि दो अस्तित्व बताये हो या दो नास्तित्व बताये हो। यों तीन भंगों की बात जानकर अब चौथे भंग में देखो ! उसमें अवक्तव्यपने की प्रधानता है। स्याद अवक्तव्य याने अस्तित्व और नास्तित्व को एक साथ कहा नहीं जा सकता, उसे अवक्तव्य कहते हैं। तो अवक्तव्य में किसकी प्रधानता हुई ? क्या अस्तित्व की हुई ? नहीं ! क्या नास्तित्व की हुई ? नहीं ! किन्तु अस्तित्व और नास्तित्व दोनों एक साथ कहे नहीं जा सकते। इसलिये अस्तित्वपने की प्रधानता है। पंचभंग में सत्त्वसहित अवक्तव्यपने की प्रधानता है। भंग कहा गया है स्याद अस्ति अवक्तव्य तो इसमें सत्तासहित अवक्तव्यपना दिखाया गया है। छठे भंग में कहा है—स्यादनास्ति अवक्तव्य इसमें नास्तित्व सहित अवक्तव्यपने की प्रधानता बताई गई है, और ७वें भंग में क्रम से लगाये गए सत्त्व और असत्त्व से सहित अवक्तव्यपने की प्रधानता है। यों खूब परख लो कि इन ७ भंगों में किसी भी में दो अस्तित्व नहीं जुड़े और दो नास्तित्व नहीं जुड़े। इस तरह ७ भंगों का विवेचन समझना चाहिये।

प्रत्येक भंग में स्वयं की प्रधानता व अन्य की गौणता—प्रथम भंग से स्या बोध हुआ ? स्याद अस्ति एव घटः । तो अब अन्य भंगों से जो असत्त्वादिकता का भान होता है सो वहाँ गौणता है न कि निषेध ! जैसे बोला गया कि घट अपने स्वरूप से है, ऐसा कहते ही यह बात जाहिर होती है कि घट पररूप से नहीं है। लेकिन जो कहा गया उसमें उसकी प्रधानता है, और जो नहीं कहा गया, उसका भान होने पर भी उसकी गौणता है। जैसे जब दूसरा भंग बोला

गया—स्याद् नास्ति घटः घट पररूप से नहीं है, तो ऐसा कहने में नास्तित्व की प्रधानता है और अस्तित्व की गौणता है, लेकिन निषेध अन्य का यहां नहीं है। ७ वाक्यों में यह बात समझनी चाहिये कि जिस समय जो भंग कहा गया उस भंग में उस तत्त्व की प्रधानता है और अन्य भंगों के तत्त्व की अप्रधानता है। भान सबका है उसको, क्योंकि नयों का प्रयोग वहाँ ही सत्य है जहाँ प्रमाण से पदार्थ को सर्वतोमुखी जान लिया गया। अर्थात् प्रमाण से जाने गए पदार्थ में एक देशधर्म को ज्ञात करना नय कहलाता है। नय से जानी हुई चीज में भी ७ भंग होते हैं। प्रमाण सप्तभंगी और नय सप्तभंगी दोनों ही पद्धतियों से सप्तभंगी का वर्णन किया जाता है।

वक्तव्यनामक अधिक भंग की अनावश्यकता—यह कोई यह भी सन्देह रख सकता है कि ७ भंगों में अवक्तव्यपने को एक भंग कहा गया है तो एक वक्तव्य भी भंग बन जाय। जब वस्तु स्याद् अवक्तव्य है तो वस्तु स्याद् वक्तव्य भी है! तो एक वक्तव्यपना क्यों नहीं बढ़ा देते? ऐसी शंका यों युक्त नहीं है कि वक्तव्य शब्द न कहकर जो भी कहा गया वह वक्तव्य ही तो रहा। स्याद् अस्ति क्या है? वक्तव्य! स्याद्नास्ति क्या है? वक्तव्य! लेकिन, वक्तव्य इस शब्द से अगर भंग किया जाय तो फिर वक्तव्य की सप्तभंगी अलग बन जायगी। स्याद् वक्तव्य, स्यादवक्तव्य इस तरह से उसके ऊपर ७ भंग और बन जायेंगे। पर, वक्तव्य न म जुड़कर ७ भंगों से अलग भंग बनाया गया, यह बात सम्भव नहीं है, क्योंकि सामान्य से वक्तव्य पना कोई भिन्न धर्म नहीं! स्याद् अस्ति आदिक कहकर जो कहा गया वह सब वक्तव्य ही हैं ऐसा वक्तव्यपना प्रथम भंग आदिक में बराबर पाया जाता है। यदि वक्तव्य शब्द ही कहकर धर्म मनवाये तो उसकी सप्तभंगी अलग हो जायगी। जैसे सत्त्व और असत्त्व में विधि प्रतिषेध की कल्पना से सप्तभंगी बनी ऐसे ही वक्तव्य और अवक्तव्य में विधि और प्रतिषेध की कल्पना से सप्तभंगी अलग ही बनेगी। उक्त समस्त कथनों से यह सिद्ध हुआ कि धर्मों में ७ भेद है। उनकी जिज्ञासा भी ७ है, प्रश्न भी ७ हो सकते हैं। इस कारण उनके उत्तररूप जो वाक्य निकले वे सप्तभंगी में ७ ही भंग हुए अधिक संख्या नहीं हो सकती।

सप्तभंगों में अधिकसंख्य व्यवच्छेद की तरह न्यून संख्याव्यवच्छेद की भी सिद्धि—शंकाकार कहता है कि उक्त प्रकार से सप्तभंगी में अधिक संख्या का निराकरण किया अर्थात् भंग ७ से अधिक नहीं होते। तो इस तरह अधिक संख्या का निराकरण करने पर भी यह निराकरण तो न हुआ कि कम संख्या भी होती है। शंकाकार कह रहे हैं कि भंग ७ से कम ही होते हैं, ७ नहीं हो सकते। कारण यह है कि जैसे कहा कि स्याद् घट है, और दूसरा भंग बताया है कि स्यात् घट नहीं है, तो इन दोनों का मतलब तो एक ही है। घट अपने स्वरूप से है यह तो प्रथम भंग

का स्पष्टीकरण है। तो इसही के मायने यह हो गया कि घट पर रूप से नहीं है। तो देखो! यदि घटादिक के अस्तित्व वाले ७ धर्म प्रमाणिक हो तब तो सप्तभंगी बने, किन्तु ७ धर्म प्रमाणिक नहीं हैं वे तो पुनरुक्त हैं। प्रथम भंग में कहा कि स्वरूप से है, उसी का अर्थ है कि पररूप से नहीं है। इसी तरह सत्त्व और असत्त्व में भेद नहीं है। जो स्वरूप से सत्त्व है वही पररूप से असत्त्व है। घट तो वही है ना, उसी में रूपी स्वरूप से सत्त्व दिखा और पररूप से असत्त्व दिखा। चीज तो एक ही दिखी। इस तरह प्रथम और द्वितीय भंग घटित नहीं होते, क्योंकि इनमें से कोई एक कह दिया जाय तो दूसरा अपने आप सिद्ध होता है। जब कहा कि घट अपने स्वरूप से है तो दूसरी बात स्वयं सिद्ध है कि घट पररूप से नहीं है। कोई ऐसी प्रमुखता से कहे कि घट पररूप से नहीं है तो इसका अर्थ यह स्वयं सिद्ध हो गया कि घट स्वरूप से है। तो जब प्रथम और द्वितीय भंग ही न बने तो इसके आधार से जो शेष अन्य भंग बनाये जाते हैं वे भी न बनेंगे, फिर सप्तभंगी न रही, बहुत ही अल्प भंग रह गये। इस शंका के समाधान में कहते हैं कि देखिये! पहिले भंग में कहा गया है स्वरूप से सहित सत्त्व, और दूसरे भंग में कहा गया है—पररूप से अविच्छिन्न, असत्त्व। तो इन दोनों में भेद है। स्वरूप से अविच्छिन्न सत्त्व और पररूप से अविच्छिन्न असत्त्व इन दोनों में यदि भेद न हो तो स्वरूप से सत्त्व कहा तो पररूप से भी सत्त्व बन बैठेगा। तो भेद तो न रहा। पररूप से असत्त्व कहा तो स्वरूप से भी असत्त्व बन बैठेगा, इस कारण अवच्छेदक भेद अवश्य है। और भी देखिये! सत्त्व होता है किसी आधार में। सत्त्व आधेय है और जिसमें सत्त्व बताया वह पदार्थ आधार है। जैसे कहते हैं कि इस जमीन पर घट है तो इसमें जमीन पर है वृत्ति जिसकी, जमीन पर है अस्तित्व जिसका, ऐसा घट समझाया गया है, और जब कहा कि जमीन पर घट नहीं है तब वहाँ जमीन में रहने वाला जो घट का अभाव है उसका प्रतियोगी घट है, यह समझा गया तो इस तरह सत्त्व और असत्त्व में स्वरूप से भेद है ही। देखिये! जब कहा कि इस कमरे में घड़ा है तो दिमाग और बना। भूतलनिष्ट घट का सत्त्व समझ में आया, इस रूप का घट जाना गया। और जब कहा जाय कि कमरे में घड़ा नहीं है तो कमरे के आधार में घड़े का अभाव है, उसका प्रतियोगी घट है इस तरह से समझ में आया। तो स्वरूप से अविच्छिन्न सत्त्व और पररूप से अविच्छिन्न सत्त्व का अभाव इन दोनों में स्वरूप भेद है ही इस कारण यहाँ पुनरुक्तपना नहीं आता। प्रथम भंग का वाच्य भिन्न है, द्वितीय भंग का वाच्य भिन्न है, किन्तु कथन है एक धर्मी पदार्थ में।

अन्य दार्शनिकों द्वारा भी सत्त्व व असत्त्व में भेद का समर्थन—अस्तित्व नास्तित्व भंग के समर्थन में और भी सुनो! जैसे सौगत आदिक हेतु को त्रैरूप्य मानते हैं। अनुमान जब बनाते हैं

तो अनुमान वह सही है इसकी जानकारी करने के लिए हेतु की परख की जाती है। जिस हेतु में पक्ष धर्मत्व, सपक्षसत्त्व और विपक्ष असत्त्व ये तीन बातें पाई जाये वह हेतु सही माना गया है। मायने हेतु का पक्ष में रहना, हेतु का सपक्ष में रहना हेतु का विपक्ष में न रहना ये तीन गुण जब हेतु में विदित हो जाये तो उस हेतु से साध्य की सिद्धि मानी गई है। जैसे कि कहा गया है अनुमान कि इस पर्वत में अग्नि है धुवाँ होने से। तो धुवाँ होने से यह हेतु पर्वत में पाया जाता, इस कारण से हेतु में पक्ष धर्मत्व है और उसका दृष्टान्त सपक्ष है। रसोई घर याने जहाँ-जहाँ धुवाँ होता है वहाँ-वहाँ अग्नि होती है। इस अन्वय व्याप्ति का उदाहरण जो बताया जाय उसे इस हेतु का सपक्ष कहते हैं। तो रसोई घर में भी धुवाँ है, यों सपक्ष सत्त्व बन गया और, विपक्ष में न रहना सो विपक्ष सत्त्व है। जब इस ही अनुमान में व्यतिरेक व्याप्ति बनाई जाती है कि जहाँ अग्नि नहीं होती, वहाँ धुवाँ भी नहीं होता। तो अग्नि के अभाव में, साध्य के अभाव में साधन का अभाव कहना यह व्यतिरेक व्याप्ति है। तो यहाँ विपक्ष का उदाहरण दिया गया है तालाब। तालाब में न अग्नि है न धुवाँ। तो तालाब में धुवें का अभाव है इस तरह हेतु के तीन गुण परखे जाते हैं—पक्षधर्मत्व, सपक्षसत्त्व और विपक्षासत्त्व। तो इस तरह जो सौगत आदिक हेतु को त्रिरूप मानते हैं अथवा जो नैयायिक आदिक हेतु में पंचरूपता मानते हैं—प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन। फिर इनके विस्तार में व्याप्ति, सपक्ष, विपक्ष सभी उपयोगी प्रसंग आ जाते हैं। तो इन दोनों के यहाँ भी बुद्धादिक के यहाँ और नैयादिक आदिक के यहाँ, तीन रूप और पंचरूप मानने वालों के यहाँ भी देखो सपक्ष सत्त्व भी अपेक्षा से विपक्षासत्त्व भिन्न ही माना गया है। नहीं तो कोई वहाँ यह कह सकता था कि सपक्ष में हेतु का रहना इससे ही यह सिद्ध होता है कि विपक्ष में हेतु का न रहना। जैसे कथंचित् है इसका भाव यह बताकर कि कथंचित् यह नहीं है, सत्त्व और असत्त्व में अभेद कर डाला। यों ही सपक्षसत्त्व में और विपक्षासत्त्व में भी भेद कर डाला जाने से फिर उन लोगों का माना हुआ त्रिरूप और पंचरूप हेतु न रहेगा। तो देखो ! सत्त्व और असत्त्व में भेद अन्य दार्शनिकों ने भी माना है। इसी तरह सप्तभंगी में प्रथम भंग में कहे गये अस्तित्व का और द्वितीय भंग में कहे गये नास्तित्व का भेद है। तब यह कहना ठीक नहीं है कि स्यादस्ति का अर्थ है स्याद् नास्ति। फिर यों ७ भंग नहीं रहते, बहुत कम भंग रह जाते हैं।

स्यादस्ति नास्ति की योजना में शंका—अब शंकाकार कहता है कि चलो प्रथम भंग में और द्वितीय भंग में तुमने भेद कर दिया सो ठीक है। मान लिया थोड़ी देर को, लेकिन तृतीय भंग में तो अर्थात् कथंचित् है, कथंचित् नहीं है इस तीसरे भंग में तो अस्तिनास्ति में कथंचित् सत्त्वरूप जो प्रथम भंग है उससे भेद क्या रहा ? पहिले दो बातें कहीं गई—स्यादस्ति, स्यादनास्ति। अब

तीसरे भंग में यह कहना कि क्रम से स्यादस्ति स्यादनास्ति का उभय क्या रहा ? देखिये ! प्रत्येक घट और यह पुस्तक रखी है तो यों कहना कि यह घड़ी है, यह पुस्तक है और क्रम से अर्पित ये दोनों हैं । तो क्रम से अर्पित दोनों में और पुस्तक है, घड़ी है, ऐसी दो बात ग्रहण में नहीं आई । स्यादस्ति कहा, अस्तिनास्ति कहा । दो भंग बोल दिये जायेंगे । अब तीसरा भंग यों बोलते कि क्रम से अस्तिनास्ति तो यह तीसरी कौन सी बला हो गई ? है तो दो ही बातें—अस्तित्व और नास्तित्व । तो जैसे प्रत्येक घट पट की अपेक्षा से घट पट का उभय कोई दूसरी चीज नहीं है, इसी तरह प्रथम और द्वितीय भंग की अपेक्षा से क्रमशः लगाये गए प्रथम द्वितीय भंग भी कोई जुदी चीज नहीं है । लो अब तो सप्तभंगी न रही । मान लो प्रथम के दो भंग सही है, लेकिन तीसरा भंग कोई भिन्न न ठहरेगा ।

क्रमशः अर्पित स्यादस्ति नास्ति की योजना का समर्थन—उक्त शंका के उत्तर में कहते हैं कि भाई यह शंका करना युक्त नहीं है कि प्रथम और द्वितीय भंग की अपेक्षा से याने प्रत्येक की अपेक्षा से उभय कोई भिन्न चीज नहीं है । है भिन्न चीज । प्रत्येक की अपेक्षा से उनका समुदाय भिन्न है, ऐसा प्रतीति में सिद्ध है तभी तो देखो घ एक अक्षर है और ट एक अक्षर है, यों अलग-अलग दो अक्षरों का होना और क्रम से घ और ट दो अक्षरों का उभय मिलना यह भिन्न चीज है या नहीं ? सभी लोग मान जायेंगे कि अलग-अलग घ और ट अक्षर का मूल्य, स्वरूप, स्थिति जुदा है और क्रम से घ और ट इन दो अक्षरों के बोलने में जो घट पद बनता है उसकी स्थिति अलग है । वह उससे अतिरिक्त चीज है, अन्यथा याने अलग-अलग रहने वाले घ और ट मिलकर क्रम से योजित घट इनको यदि एक मान लिया जाय तो कभी कोई घ इतना ही बोले तो उससे घट का ज्ञान हो जाना चाहिए क्योंकि अलग रहने वाले अक्षर और मिलकर बनाये गए अक्षर इन दोनों में तुम भेद नहीं मानते । जब भेद नहीं मानते तो प्रत्येक घ आदिक की अपेक्षा से घट पद से अभिन्न मानने पर घ आदिक के उच्चारण से ही घट ज्ञान सम्भव हो जाय और जब ट बोला तो ट के बोलने से घट समझा जाय कि पट समझा जाय ये सब विडम्बनायें बन जाती हैं और फिर जब किसी एक अक्षर के बोलने से ही पूरा पदार्थ आ जाता है तब शेष अक्षरों के बोलने की बात व्यर्थ हो जायगी । और, भी सुनो—माला में दाने अनेक पिराये गए । अब यह बतलाओ कि भिन्न-भिन्न जो एक दाने है उन दानों से माला में कथंचित् भेद है कि नहीं, या एक-एक दाना सो ही माला ? अगर एक-एक दाने का ही नाम माला बन जाय तो कहीं बिखरे पड़े हुये जो दाने हैं उनमें तो माला का अभेद हो गया, फिर उससे दूसरों का सम्मान करो अथवा उनसे जाप जपो । तो प्रत्येक दाने की अपेक्षा से माला में कथंचित् भेद है, यह बात सबके अनुभव में सिद्ध है । इसी तरह स्याद् अस्ति यह एक भंग है । घट स्वरूप से है- स्यादास्तिघटः

यह दूसरा भंग है, घट पररूप से नहीं है, ये दो भंग जुदे-जुदे हैं। इनमें जुदा है यह तीसरा भंग अर्थात् क्रम से योजित ये दोनों बातें जिनमें कि बुद्धि समझ कुछ भिन्न बनती है, यह तीसरा भंग जुदा है। इस तरह कथंचित् सत्त्व की अपेक्षा से कथंचित् असत्त्व की अपेक्षा से क्रम से लगाई गई ये दोनों चीजें जुदी हो गई अर्थात् स्याद् अस्ति यह प्रथम भंग भी सिद्ध है, स्याद् नास्ति यह द्वितीय भंग सिद्ध है और स्याद् अस्तिनास्ति यह तृतीय भंग भी सिद्ध है, इसमें पुनरुक्तता नहीं आती।

क्रमार्पित उभय और सहार्पित उभय के स्वरूप में भेद न होने की आरेका—उक्त प्रकार से प्रथम दो भंगों से तृतीय भंगों की अतिरिक्तता सुनकर शंकाकार कहता है कि भले ही प्रथम द्वितीय भंग से अतिरिक्त तृतीय भंग बन जाये मगर अवक्तव्य में तुम यह कह रहे हो कि एक साथ योजित अस्तिनास्ति। अवक्तव्य का अर्थ यह है कि अस्तिनास्ति। इन दोनों को अगर एक साथ जोड़ा जाय तो कहा नहीं जा सकता उसी को कहते हो अवक्तव्य तो क्रम से जोड़े गए अस्तिनास्ति में और एक साथ जोड़े गए अस्तिनास्ति में किसी तरह भेद हो ही नहीं सकता। यह तो केवल शब्द में रहने वाला भेद है कि शब्दों से कह दिया कि इसमें अस्तिनास्ति क्रम से लगाया है। इसमें अस्तिनास्ति एक साथ लगाया है। और, चाहे क्रम से बोले, चाहे एक साथ बोले, गाँठ में बात तो उतनी ही है स्वरूप से अस्तित्व और पररूप से नास्तित्व, यहाँ तो कोई बात बढ़ी नहीं, यह तो केवल शब्दों में रहने वाला भेद है। पदार्थ में रहने वाला भेद नहीं है। क्योंकि क्रम से जोड़ा गया सत्त्व असत्त्व के उभय की अपेक्षा से एक साथ जोड़े गए सत्त्व असत्त्व का उभय कोई भिन्न चीज नहीं है। जैसे कि एक जमीन पर घट और पट दोनों रखे हैं। अब वहाँ यह कहा जाये कि क्रम से योजित घट पट का उभय है, यह एक अलग चीज है और एक साथ योजित घट पट का उभय अलग चीज है, ऐसा तो भेद कोई नहीं मान सकता। यहाँ घड़ी और पुस्तक रखी है तो क्रम से योजित घड़ी पुस्तक अलग चीज हुई और एक साथ योजित घड़ी पुस्तक अलग चीज हुई। और एक साथ योजित घड़ी पुस्तक अलग चीज हुई। इसका मतलब क्या है? है तो दो ही चीजें। क्रम से और अक्रम से मतलब क्या? तो आपके ये अन्य भेद नहीं बन सकते हैं।

क्रमार्पित उभय व सहार्पित उभय में भेद न होने पर भी हानि न होने की एक प्रतिशंका—शंकाकार कह रहा है कि यदि यह कहो कि क्रम से योजित सत्त्व असत्त्व का उभय की अपेक्षा से एक साथ योजित सत्त्व असत्त्व के उभय का भेद भी कुछ न हो फिर भी कोई हानि नहीं है। हानि तो यह मानी जा रही थी कि ७ भंग से कम भंग से कम भंग से कम भंग

लगाये जाये । सो तुम इसका उत्तर यह दे लोगे कि पुनरुक्ति दोषरहित ७ वाक्यों का समुदाय ही सप्तभंगी है । याने उसमें तो लगा दिया शब्द क्रम और इसमें शब्द लगा दिया ‘एक साथ’ तो अब इन भंगों में फर्क हो गया । यों शब्द का विलास बताकर कह सकते हो कि पुनरुक्ति दोष नहीं है । यह भी कह सकते हैं, सत्त्व असत्त्व धर्म के विषयपने से ७ भेद से वचन की मार्ग प्रवृत्ति हो सकती है न कि अधिक, क्योंकि अधिक होने से पुनरुक्ति दोष आता है । एक वाक्य से उत्पन्न हुआ जो ज्ञान है उसी ज्ञान के समान ज्ञान को उत्पन्न करने वाला यदि उत्तर काल का वाक्य हो तो यही तो पुनरुक्ति दोष कहलाता है । जो बात पहिले कहीं गई वही बात फिर तुरन्त कहीं जाय तो उसे पुनरुक्ति कहते हैं, और इस सप्तभंगी नय के प्रमाण में तृतीय भंग याने स्याद् अस्ति नास्तिघटः और चतुर्थ भंग ने स्याद् अवक्तव्य एव घटः । इन धर्मों में पुनरुक्ति दोष सम्भव नहीं है, क्योंकि तीसरे भंग से उत्पन्न हुआ जो ज्ञान है उसमें तो अस्तित्व सहित नास्तित्व का ज्ञान कराया है । स्याद् अस्तिनास्ति कह रहे तो अस्तित्व सहित नास्तित्व का बोध कराया और चतुर्थ जो अवक्तव्य भंग है उससे जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसमें अस्तित्व नास्तित्व दोनों रूप अवक्तव्य है । तो ऐसे अवक्तव्यपने के साथ रहकर जो प्रयोग बना उस प्रकार से ज्ञान आता है इस कारण तीसरे और चौथे भंग से उत्पन्न हुए ज्ञान में समान आकार न रहा । अतएव पुनरुक्ति दोष नहीं है । यों क्रम अथवा अक्रम वाले तृतीय चतुर्थ भंग में भेद न होने पर भी कोई हानि नहीं ऐसी एक प्रतिशंका उपस्थित हुई ।

प्रतिशंका का समाधान करते हुए न्यूनसंख्याव्यवच्छेद की असिद्धि की शंका का समर्थन—अब शंकाकार ही समाधानकार की और से शंका उठाकर उसका निराकरण कर रहा है, समाधानकर्ता की इस शंका के निराकरण में शंकाकार कहता है कि इस तरह से भेद मान लेने पर ७ भंगों से अधिक भंगों की संख्या हो जाना अनिवार्य है । अर्थात् यह सिद्धान्त जब रख दिया कि क्रम से योजित बात अन्य है, अक्रम से योजित बात अन्य है, यों भिन्नता बताकर सप्तभंगी बनाने में तो बहुत से और अधिक भंग हो सकेंगे । जैसे तृतीय चतुर्थ भंगों में पुनरुक्ति दोष का अभाव उनके विलक्षण बोध उत्पन्न होने से मान लिया है तो ऐसे ही समझिये कि विपरीत क्रम से याने नास्ति अस्ति ऐसे अन्य भंग की भी बात कहीं जायगी । जैसे कहा कि स्याद् अस्ति स्याद् नास्ति और स्याद् अस्ति नास्ति तो एक और बढ़ा दो । स्यादनास्तिअस्ति, क्योंकि जरा सा भी अगर बोध में भेद हो जाता उससे तुम पुनरुक्ति दोष नहीं मानते तो यों तो अनेक भंग बनाये जा सकते हैं । कहा जा सकता है कि इसमें नास्तित्व सहित अस्तित्व बताया गया, और फिर इन दोनों को एक साथ कहा नहीं जा सकता । इस तरह से अवक्तव्यपना भी और ढंग का बनेगा । जैसे अभी चौथे भंग में अस्ति और नास्ति का अवक्तव्य बनाया तो अब बना दीजिए नास्ति अस्ति का

अवक्तव्य । और फिर इस तरह से संयोगी भंग भी बढ़ जायेंगे । और ऐसा कहते हुए हम भी यह कह सकेंगे कि जैसे तीसरे भंग में अस्तित्व विशिष्ट नास्तित्व का बोध कराया तो हमारे इस नये भंग में नास्तित्व विशिष्ट अस्तित्व का बोध कराया । अब हुआ क्या इसमें बात तो दोनों है लेकिन एक बन गया विशेषण और दूसरा बन जाता है विशेष्य । जैसे स्यादअस्ति नास्ति में अस्ति विशेषण है नास्ति विशेष्य है क्योंकि वहाँ यह बताया जाता है कि अस्तित्व विशिष्ट नास्तित्व । तो हमारे यहाँ बताया जाता है कि नास्तित्व विशिष्ट अस्तित्व । तो लो समान आकार भी न रहा तब पुनरुक्ति दोष तो न रहा । ऐसे ही ७वां भंग जो लो समान आकार भी न रहा तब पुनरुक्ति दोष तो न रहा । ऐसे ही ७वां भंग जो बताया गया है—स्याद अस्तिनास्ति अवक्तव्य तो एक और बढ़ा देंगे स्यादनास्ति अवक्तव्य । और उसमें एक नया बोध बढ़ा देंगे कि नास्ति अस्तित्व इस उभय सहित अवक्तव्य को बताने वाला यह भंग है तब ९ भंगी, १० भंगी, ११ भंगी यों कितने ही भंग बन जायेंगे । तो सप्तभंगी तो न रही । इस प्रकार शंकाकार की शंका का यह मूल प्रस्ताव कि सप्तभंग से अधिक भंग नहीं हो सकते तो न हो पर कमती संख्या का निराकरण कैसे सिद्ध होगा ? कम संख्या बन जायगी, क्योंकि स्वरूप से अस्ति, इसका ही अर्थ है पररूप से नास्ति । तब फिर वे दो भंग क्यों रहे ? एक ही रहा । और, यदि कुछ थोड़ा-थोड़ा भेद बताकर ७ भंगों की सम्हाल करोगे तो स्मरण रखना चाहिए कि फिर भेद ९, १०, ११ भी हो सकते हैं, फिर तो अधिक संख्या बन जायगी, इस कारण से सप्तभंगी का नियम सही नहीं बन सकता कि भंग ही होते हैं । अब शंकाकार की इस शंका का समाधान करते हैं ।

सप्तभंगी में न्यून संख्या न होने का विवरण—उक्त शंका के समाधान में कहते हैं कि ऐसी शंका करना ठीक नहीं है कि सप्त भंगी में ७ से अधिक संख्या नहीं होती, ७ से कम संख्या तो हो ही सकती है, क्योंकि एक भंग का दूसरे भंग में ही अन्तर्भाव है । उनमें अभेद है । ऐसी शंका करना यों युक्त नहीं है कि ७ भंगों में ही अपने-अपने पृथक् विषय और दृष्टिकोण है । प्रथम और द्वितीय भंग में तो भेद बताया ही गया था । प्रथम भंग में तो स्वरूप से अविच्छिन्न सत्त्व का वर्णन है । अब आगे के भंगों की बात सुनो ! कि जिनको लेकर शंका की गई है । तृतीय भंग में अस्तित्व और नास्तित्व इन दोनों की प्रधानता है तथा चतुर्थ भंग में अवक्तव्यपनेरूप अन्य धर्म की प्रधानता है । तो तृतीय और चतुर्थ भंग के अभेद की शंका न करना चाहिए । जैसे कि शंका में कहा गया था कि क्रम से अर्पित उभय का भंग और एक साथ अर्पित उभय का भंग इन दोनों में क्या अन्तर है ? है । तो दोनों ही बातें—चाहे क्रम से अर्पित हो चाहे सह अर्पित हो । तो शंका यों न करना चाहिए कि तृतीय भंग है अस्तित्व नास्तित्व का उभय और उससे विलक्षण है यह अवक्तव्यरूप धर्म । जैसे पूर्व के धर्मों में जैसे सत्त्व माना गया है, ऐसे ही वस्तु

का स्वरूप नहीं है, क्योंकि स्वरूपादिक से जैसे सत्त्व माना गया है ऐसे ही पररूपादिक की अपेक्षा से असत्त्व भी माना जाता है। इस कारण वस्तु का स्वरूप केवल सत्त्व ही नहीं है। इसी तरह आगे भी देखिये ! वस्तु का स्वरूप केवल असत्त्व ही नहीं है, क्योंकि जैसे पररूपादिक की अपेक्षा से असत्त्व की प्रतीति होती है उसी प्रकार स्वरूपादिक की अपेक्षा से सत्त्व की भी प्रतीति होती है। तब वे दोनों भंग भिन्न-भिन्न रूप से प्रतीति सिद्ध हुए ना ! अब आगे चलो, तीसरे और चौथे भंग के लिए ! तीसरे भंग में बताया है कि अस्तित्व का और नास्तित्व का उभय वस्तु का स्वरूप है सो उसमें भी यही खोज करना कि अस्तित्व और नास्तित्व का उभय ही वस्तु का स्वरूप नहीं है, क्योंकि इस खोज इस उभय से विलक्षण कोई अन्य धर्मान्तर भी वस्तु में अनुभूत होता है अर्थात् अवक्तव्यरूप धर्म भी प्रतीत होता है।

उदाहरणपूर्वक क्रमार्पित, सहार्पित व स्वतन्त्र भंगों का समर्थन—जैसे दही गुड़ और अनेक मसाले मिलाकर एक पानक द्रव्य बनाया जाता है तो उस पानक द्रव्य में भिन्न-भिन्न केवल दही, गुड़ आदिक की अपेक्षा से अब कोई भिन्न जात्यन्तर का स्वाद उसमें आता है। जैसे चार-पांच चीजें मिलाकर कोई एक पानक बनाया गया, पेय वस्तु में स्वाद उन केवल दही, गुड़ आदिक से विलक्षण है। और तब यह कह सकते हैं कि अब उस पादक का स्वरूप केवल दही गुड़ आदिक का चतुष्टय ही नहीं है, किन्तु उससे विलक्षण स्वाद है। और, फिर यह भी कहे सकते कि उनसे विलक्षण स्वाद ही पानक का स्वरूप नहीं है, क्योंकि उनके अन्दर दही गुड़ आदिक सबका स्वाद भी पाया जाता है। और, फिर यह भी कह सकते कि उनसे विलक्षण स्वाद ही पानक का स्वरूप नहीं है, क्योंकि उनके अन्दर दही, गुड़ आदिक सबका स्वाद भी पाया जाता है। ऐसे ही समझना चाहिए कि तृतीय—चतुर्थ भंग का पार्थक्य तृतीय भंग में कहा गया है कि स्याद् अस्ति और नास्ति, इनका उभय वस्तु कस स्वरूप है, सो ये दोनों एक साथ कहे नहीं जा सकते क्रमशः निरखेंगे तो एक-एक बात दिखेगी ऐसी स्थिति में यह कहा जायेगा कि उन दोनों से विलक्षण अवक्तव्यपना वस्तु का स्वरूप है लेकिन फिर यह भी नहीं कह सकते कि अवक्तव्यपना ही वस्तु का स्वरूप है, क्योंकि उस वस्तु में अस्तित्व नास्तित्व धर्म भी प्रतीति हो रही है। तो न केवल अस्तित्व वस्तु का स्वरूप है, न नास्तित्व वस्तु का स्वरूप है और न केवल दोनों का उभय वस्तु का स्वरूप है, न केवल नास्तित्व वस्तु का स्वरूप है। न केवल अवक्तव्यपना वस्तु का स्वरूप है। सो और आगे भंगों में बढ़िये ! तब किसी एक धर्म को लेकर अन्य धर्मों का अभेद करके सप्तभांगी की संख्या कम कर देना कैसे सम्भव है ? एक सत्त्व स्वरूप तो यों नहीं है कि उसमें कथंचित् सत्त्व पाया जाता। केवल असत्त्व वस्तु का स्वरूप यों नहीं है कि उसमें कथंचित् असत्त्व पाया जाता। केवल अलग-अलग ये रहे यह भी स्वरूप नहीं है,

क्योंकि वस्तु में अस्तित्व और नास्तित्व दोनों पाये जाते हैं और अस्तित्व नास्तित्व का उभय भी वस्तु का स्वरूप नहीं है, क्योंकि उनसे विलक्षण अवक्तव्यपना पाया जाता है और अवक्तव्यपना ही वस्तु का स्वरूप नहीं है, क्योंकि वहाँ कथांचित् सत्त्व और कथांचित् असत्त्व की प्रतीति पाई जाती है। इसी प्रकार शेष के अंत के तीन धर्मों में भी बात लगानी चाहिए तो दृष्टि भेद से धर्मभेद अनुभव में आता है और इस प्रकार जब समस्त भंगों का स्वरूप अपेक्षा में भिन्न-भिन्न नजर आता है तो अलग-अलग स्वभाव वाले ७ धर्मों की सिद्धि हो गई। जब वस्तु में ७ प्रकार से धर्म प्रसिद्ध हुए तो धर्मविषय संशय भी ७ प्रकार से हुए और ७ प्रकार के संशयों में जिज्ञासा भी ७ प्रकार की हुई। तो अब जिज्ञासा के समाधान में ७ प्रकार के समाधान रूप वाक्य हुए। यों सप्तभंगी का स्वरूप ७ भंगों में ही युक्तिसिद्ध है।

सप्तभंगी के प्रकारों की जिज्ञासा—अब सप्तभंगी का स्वरूप बताकर उसके प्रकार बतलाते हैं। सप्तभंगी दो प्रकार से होती है—प्रमाण सप्तभंगी और नय सप्तभंगी। प्रमाण का लक्षण पहिले बताया गया था कि यह समस्त रूप से तत्त्वार्थ अधिगम है सो प्रमाणात्मक अधिगम है और एक देश रूप से तत्त्वार्थ का जो अधिगम है वह नयात्मक अधिगम है। जिसके मायने यह हुआ कि प्रमाण तो समस्त रूप के विज्ञान का नाम है और नय एक देश के विज्ञान का नाम है। यों सामान्य से व्यापक स्वरूप जानकर अब उसके सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक स्वरूप समझने के लिए चलो! इस समय यह जिज्ञासा हो रही है कि सप्तभंगी दो प्रकार की कहीं गई है—प्रमाण सप्तभंगी और नय सप्तभंगी। और सप्तभंगी बनती है वाक्यों से। तो प्रमाण वाक्य किसे कहते हैं। और नय वाक्य किसे कहते हैं? यहाँ प्रमाण रूप ७ वाक्य क्या है? और नयरूप ७ वाक्य क्या है? इस सम्बन्ध में जो निष्कर्षरूप सिद्धान्त की बात है यह तो अन्त में कहेंगे। इससे पहिले उन सप्तभंगियों के सम्बन्ध में किसका क्या अभिप्राय है? पहिले उन अभिप्रायों का प्रसंग करते हैं। जिससे कि निर्णय करते-करते प्रमाण वाक्य और नय वाक्यों का सही सैद्धान्तिक स्वरूप सुगमता से समझ में आयगा।

प्रमाणवाक्य और नय वाक्य के सम्बन्ध में एक अभिमत पर विचार—प्रमाण और नय वाक्यों के सम्बन्ध में कोई संत ऐसा कहते हैं कि सकलादेश वाक्य तो प्रमाण वाक्य कहलाता है याने सम्पूर्ण रूप से पदार्थ का ज्ञान कराने वाले वाक्य तो प्रमाण वाक्य है और विकलादेश वाक्य नय वाक्य है। एक अंश में पदार्थों का ज्ञान कराने वाले वाक्य नय वाक्य है वस्तु में अभी सत्त्व असत्त्व आदिक अनेक धर्म बताये गए हैं। तो सत्त्व असत्त्व आदिक अनेक धर्म स्वरूप जो वस्तु है उस वस्तु के सम्बन्ध में उस वस्तु का बोध उत्पन्न करने वाला अथवा वस्तु के अनेक धर्मों का

ज्ञान कराने वाला वाक्य तो सकलादेश कहलाता और वह प्रमाण वाक्य है, किन्तु वस्तु के सत्त्व असत्त्व आदिक धर्मों में से किसी एक धर्म का ज्ञान उत्पन्न कराने वाला वाक्य विकलादेश है और वह नय वाक्य कहलाता है। ऐसा कुछ संतो का सिद्धान्त है। अब उक्त सिद्धान्तों के सम्बन्ध में विचार कीजिये! जो लोग सकलादेश का प्रमाण वाक्य और विकलादेश को नयवाक्य मानते हैं उनके मत में प्रमाण वाक्य में भी ७ भेद बने और नय वाक्य में भी ७ भेद बने, यह सिद्ध न हो सकेगा, क्योंकि सकल का आदेश और विकल का आदेश इस दृष्टिकोण को रखकर जब इन भंगों में से कुछ भंग विकलादेश लगेंगे और कुछ सकलादेश लगेंगे। जैसे—स्यादस्ति, स्यादनास्ति, स्यादअवक्तव्य एव ये तीन भंग पहिला, दूसरा और चौथा ये इकहरी बात बतलाते हैं इसलिए ये विकलादेश कहलायेंगे क्योंकि न भंगों में पहिले में तो केवल सत्त्व का और दूसरे में केवल असत्त्व का और चौथे भंग में केवल अवक्तव्य स्वरूप का संकेत किया गया है। तो अब वस्तु के एक-एक धर्मविषयक बोध कराने वाला वाक्य होने से ये ही मात्र नय वाक्य होगे, उसके अतिरिक्त जो चार वाक्य है—तीसरा, पाचवाँ, छठवाँ और सातवाँ—स्यादस्ति नास्ति, स्यादअस्ति अवक्तव्य, स्यादनास्ति अवक्तव्य, स्यादअस्तिनास्ति अवक्तव्य, ये भंग एक को लिये हुए नहीं है इन पर ऋमशः दृष्टि दे तो स्याद् अस्ति नास्ति ये सत्त्व और असत्त्व दो धर्मों का वर्णन है। स्याद् अस्ति अवक्तव्य में नास्तित्व और अवक्तव्य इन दो का आदेश है। स्याद् अस्ति अवक्तव्य में नास्तित्व और अवक्तव्य इन दो का वर्णन है और अस्ति नास्ति अवक्तव्य में तीन का वर्णन है। तो एक-एक धर्म का आदेश इसमें नहीं है। अतः ये प्रमाण वाक्य कहलायेंगे। तो सकलादेश प्रमाण वाक्य है, विकलादेश नय वाक्य है, ऐसा आग्रह करने में न तो प्रमाण सप्तभंगी बनेगा और न नय सप्तभंगी बनेगा।

सप्तभंगों में ३ नये वाक्य व ४ प्रमाण वाक्य मानने में सिद्धान्त से विरोध—यहाँ कोई यह शंका करता है कि सप्तभंगी दोनों में नहीं बनती तो मत बनो। तीन नय वाक्य हो जायेंगे और ४ प्रमाण वाक्य हो जायेंगे। सो यह बात यों न कह सकेंगे कि इस तरह कहने में अर्थात् पहिले, दूसरे, चौथे भंगों को नय वाक्य कहने में और ५वें, ६वें ७वें भंग को प्रमाण वाक्य मानने से स्याद्वाद के सिद्धान्त का विरोध होगा क्योंकि अपेक्षा यहाँ ७ है। पूर्ण बात तो वाक्यों में कहीं नहीं जा सकती। अपेक्षा भेद से दृष्टिकोण में एक वस्तु में एक वस्तु पाये जाने वाले एक दो धर्मों का याने विकल धर्मों का वर्णन है इस कारण से स्याद्वाद की सम्पन्नता न केवल तीन वाक्यों से बनेगी और न ४ वाक्यों से बनेगी। ७ भंग ही स्याद्वाद का रूप रखते हैं। तब प्रमाण सप्तभंगी और नयसप्त भंगी के सम्बन्ध में कुछ और खोज करना चाहिए।

धर्म धर्मी विषय के बोधक वाक्य से सकलादेश व विकलादेश के स्वरूप वर्णन की चर्चा—कोई सतंजन कहते हैं कि धर्म को विषय न करने वाले और धर्मी वस्तु को विषयक करने वाले ज्ञान को उत्पन्न करने वाला वाक्य सकलादेश कहलाता है और धर्मी को विषय न करने वाले धर्म को विषय करने वाले बोध को उत्पन्न करने वाला वाक्य विकलादेश कहलाता है यह कथन भी धर्म युक्त नहीं है, क्योंकि यदि किसी भी धर्म से विशेषित न हो धर्मी, तो उस धर्मी के सम्बन्ध में शब्दज्ञान भी नहीं बन सकता है और धर्मी में वृत्ति पाये जाने रूप से विशेषित न हो धर्म, तो उसका भी शब्द बोध हो नहीं सकता इसका तात्पर्य यह है कि कभी किसी धर्ममात्र के शब्द से भी कथन किया जाय तो धर्म युक्त धर्मी ज्ञान में होता ही है, तब जाकर धर्म का ज्ञान बनना है। इस प्रकार कभी धर्मी वाचक शब्दों का प्रयोग किया जाय तो उस प्रयोग से भी धर्म का परिज्ञान गर्भित ही है। धर्म से अविशेषित धर्मी का बोध में विषय न बनेगा अथवा धर्मी में रहने वाले रूप से अविशेषित यदि धर्म का ज्ञान किया जाय तो वह भी किसी भी ज्ञान का विषय नहीं बन सकता। अतः यह कहना सम्पन्न नहीं हो सकता कि धर्मी को विषय करने ज्ञान को उत्पन्न करे ऐसा वाक्य सकलादेश कहलाता है और धर्म का ही विषय करने वाले ज्ञान को उत्पन्न करे ऐसा वाक्य विकलादेश कहलाता है।

प्रसंगगत सकलादेश विकलादेश के उदाहरण पर विचार—उक्त चर्चणीय सकलादेश विकलादेश के सम्बन्ध में यदि कोई यह कहे कि स्याद् जीव एव कथंचित् जीव ही है, इस वाक्य से केवल जीव धर्मी मात्र का ज्ञान उत्पन्न हुआ है, और जब यह कहा कि स्यादास्ति एव कथचित् है ही इस वाक्य से केवल अस्तित्व धर्म का ज्ञान उत्पन्न हुआ। यों सकलादेश और विकलादेश के लक्षण युक्ति संगत रहे। जो समस्त धर्मों का ज्ञान कराये वह सकलादेश, जो किसी धर्म मात्र का ज्ञान कराये वह विकलादेश। तो स्याद् जीव एव इस वाक्य से सकलादेशपना स्यादास्तिएवः इस वाक्य से विकलादेशपना, यह बात भी नहीं कह सकते, क्योंकि जब भी जीव शब्द से बोला गया कि स्याद् जीव एव तो इसमें भी जीवत्वरूप धर्म से सहित ही जीव का कथन हुआ न कि धर्म शून्य पृथक् किसी धर्मी मात्र का ज्ञान हुआ। जब भी जीव कहा कि स्याद् जीवः एव तो इस कथन में जीवत्व धर्म सहित ही जीव परखा गया। धर्म से पृथक्, धर्म से रहित केवल धर्मी मात्र का परिग्रहण नहीं हुआ। इसी प्रकार जब स्याद् अस्ति एव इस वाक्य से कहा गया तो इस शब्द से ऐसे अस्तित्व धर्म का कथन हुआ जो किसी धर्मी में रहने रूप से विशेषित है अथवा किसी में धर्मरूप में रह रहा है वह अस्तित्व इस वृत्तिरूप सम्बन्ध से युक्त अस्तित्व धर्म का कथन हुआ। कहीं न तो धर्मी से रहित धर्मी में वृत्तिरूप से शून्य केवल धर्ममात्र का भान होता है और न धर्म से रहित केवल किसी धर्ममात्र का ज्ञान होता

हे । और बतलावो कि धर्मो के सम्बन्ध बिना अन्वितपना बिना धर्म का अर्थ क्या ? जो विवेकी पुरुष हैं वे सब इस रहस्य को भली भाँति जानते हैं । कदाचित् कोई यह कहे कि यदि धर्मो तथा धर्म का अलग-अलग भान नहीं होता, तो द्रव्यवाचक शब्द और भाववाचक शब्द इस विभाग की सिद्धि नहीं हो सकती याने धर्मो और धर्म ये जुदे-जुदे हैं । धर्मो का भान पृथक् है, धर्म का भान पृथक् है तभी तो यह शब्द द्रव्यवाचक है यह शब्द भाववाचक है, ये व्याकरणों में भेद चलेंगे मगर धर्मो और धर्म का पृथक् भान न माना जाय तब फिर शब्दभेद भी क्या रहा कि यह द्रव्य का वाचक शब्द है और यह भाव शब्द का वाचक है, ये धर्मो के वाचक शब्द है और ये धर्म के, इस विभाग न बन सकेगा ।

सकलादेश व विकलादेश के उक्त लक्षणारेका का समाधान—उक्त शंका के समाधान में कहते हैं कि यह भी शंका नहीं डाली जा सकती, क्योंकि प्रधानता से जो द्रव्य के वाचक है उनको कहते हैं द्रव्यशब्द और जो प्रधानता से भाव के या धर्म के वाचक है शब्द उनको कहते हैं भावशब्द । जैसे ‘जीवः’ यह कहा गया तो यहाँ जीव शब्द से जीव जो एक द्रव्य है उसकी प्रधानता से कथन हुआ, किन्तु जीवस्वरूप धर्म का गौणता से प्रतिपादन हो ही जाता है । इसी प्रकार जब कहा अस्ति तो इस शब्द की मुख्यता से अस्तित्व धर्म का वर्णन होता है लेकिन उसमें जीवादिक धर्मों का भी गौणता से प्रतिपादन है । अस्तित्व ऐसा कहने पर क्या पदार्थशून्य अस्तित्व बोला गया । क्या कहीं ऐसा भी अस्तित्व है । कि जो किसी पदार्थ से विशेषित न हो, पदार्थ में न रहता हो, केवल सत्ता ही सत्ता है ऐसा कोई पदार्थ नहीं है, ऐसी कोई सत्ता नहीं है । हाँ, सत्ता शब्द जब कहा तो प्रधानता से धर्म का वर्णन हुआ, पर धर्मों को छोड़कर धर्म रहे और उस धर्म का वर्णन हो सत्ता आदिक शब्द से ऐसा नहीं हो सकता । तो यों प्रधानता से कथन होने के कारण द्रव्यवाचक और भाववाचक शब्दों का विभाग उत्पन्न होता है ।

द्रव्यवाचक व भाववाचक शब्द का निरूपण व उसका समाधान—द्रव्यवाचक व भाववाचक शब्द के सम्बन्ध में कोई यह कहते हैं कि जैसे कहा गया अय पाचकः यह रोटी पकाने वाला है । तो पाचक शब्द बोला वह द्रव्य पाचक शब्द है, एक पुरुष का बोधक है और जब कहा—अस्य पाचकत्वं इसका पाचकपना तो इस शब्द में भाववाचकता आई । यों द्रव्यवाचक और भाववाचक शब्दों का विभाग बनता है । सो यह कथन भी युक्तिसंगत नहीं है, क्योंकि जब भी पाचक ऐसा कहा गया, तो पाचक ऐसा कहने में पाचकत्वं धर्मसहित ही पुरुष का कथन हुआ । यह बात सभी के अनुभव में सिद्ध है कि जब भी पाचक बोला गया और समझा गया कि यह पाचक है । तो यह केवल द्रव्य का ग्राहक है इस कारण यह द्रव्यवाचक शब्द है, ऐसा कथन ठीक नहीं,

किन्तु प्रधानता से द्रव्य का वाचक शब्द है यह कथन ठीक है। इसी तरह जब भी कहा गया कि इसका पाचकपना तो इस शब्द से केवल पाचकपना अलग से समझ हो सो नहीं, किन्तु पाचक उसके ज्ञान में और उसमें रहने वाला पाचकपना उसका यहाँ प्रधानता से कथन हुआ। तो द्रव्य का प्रधानता से कथन जो करे उसका नाम है द्रव्यापाचक शब्द और भाव का प्रधानता से कथन जो करे उसका नाम है भावपाचक शब्द। परन्तु कोई यह कहे कि कभी केवल धर्मों का ही ज्ञान किया जाता है, धर्म का भान जरा भी नहीं होता, तो बात न बनेगी। अथवा धर्म का ही भान होता है जिस धर्मों में वह धर्म है, उस धर्मों का भान होता ही नहीं है, सो भी बात न बनेगी। इस तरह जब धर्मों और धर्म बिल्कुल अलग-अलग सिद्ध नहीं होते तब यह कथन करना कि जो धर्म का विषय करने वाले ज्ञान को उत्पन्न कर वह तो है विकलादेश और जो धर्मों को विषय करने वाले बोध को उत्पन्न करे ऐसा वाक्य है सकलादेश। यों सकलादेश को प्रमाणवाक्य कहना और ऐसे ही लक्षण वाले विकलादेश को नयवाक्य कहना सो युक्तिसंगत नहीं है।

प्रमाणसप्तभंगी व नयसप्तभंगी के आधारभूत विवाद का उपसंहार—सकलादेश व विकलादेश के लक्षण में विवाद जानकर जिज्ञासा होती है कि फिर प्रमाण वाक्य है और नयवाक्य क्या है? इसका कथन आगे होगा। उस कथन को समझने के लिए अन्य-अन्य प्रकार से जो प्रमाण सप्तभंगी और नय सप्तभंगी का कथन किया जाता याने प्रमाणवाक्य और नयवाक्य का जो लक्षण किया जाता उसमें यह निरखना है कि इसमें क्या त्रुटि रह गई? जिससे अब तक सकलादेश या विकलादेश का सही लक्षण नहीं बना। तो अब तक दो बातें रखी गई हैं—पहिला मत तो यह रखा गया था कि धर्मस्वरूप वस्तु के बोध को उत्पन्न करने वाला वाक्य सकलादेश है और सत्त्व असत्त्व आदिक धर्मों में से किसी एक धर्म का ज्ञान उत्पन्न कराने वाला वाक्य विकलादेश है। यह पहिली बात निराकृत कर दी गई थी। अब दूसरी बात कहीं जा रही है यह कि जो धर्मों का विषय न करके धर्म का विषय करे, ऐसे वाक्य का नाम है विकलादेश और जो धर्म को विषय न करके केवल धर्मों का विषय करे उसका नाम है सकलादेश। सो ये दोनों ही प्रकार के अभिमत यहाँ युक्तिसंगत नहीं उत्तरते और न सकलादेश और विकलादेश के लक्षण से प्रमाण सप्तभंगी और नय सप्तभंगी बनती है। अब इसके सम्बन्ध में अन्य विद्वान लोग क्या कहते हैं? इसका वर्णन करेंगे।

प्रत्येक पृथक् वाक्यों को विकलादेश व समुदित वाक्य को सकलादेश मानने की चर्चा पर विचार—कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि स्याद अस्ति आदिक वाक्य सातों ही प्रकार के प्रतिपादन तो अलग-अलग विकलादेश कहलाते हैं और वे समस्त समुदित होकर सकलादेश कहलाते हैं।

उनसे पूछा जाय कि यह बतलाओ कि किस कारण से स्याद अस्ति आदिक ७ प्रकार का वाक्य एक-एक करके अलग-अलग विकलादेश है ? तो वे ऐसा कहते हैं कि एक-एक अलग-अलग वाक्य समस्त अर्थों का प्रतिपाद करने वाला नहीं है, इस कारण विकलादेश है। जैसे ७ भंगों में एक स्याद अस्ति एव कहा, तो उसमें बाकी ६ भंगों के जो वाक्य है उनका तो बोध नहीं कराया। इसी प्रकार हर भंग में यही बात है कि वे अपने ही वाक्य धर्म का बोध करायेंगे अन्य ६ भंगों का नहीं इस कारण वह विकलादेश है। वे ऐसा भी नहीं कह सकते क्योंकि इस तरह मानने से तो सातों वाक्य भी विकलादेश हो जायेंगे याने स्यादअस्ति: स्यादनास्ति आदिक तो वाक्य मिलकर भी सम्पूर्ण अर्थों के प्रतिपादक नहीं हो सकते क्योंकि समस्त श्रुतज्ञान ही समस्त अर्थों का प्रतिपादक होता है। और, इसी तरह जैसे कि विकलादेश के निराकरण में बात कहीं गई है सकलादेश के निराकरण में भी समझना कि सम्पूर्ण अर्थ के प्रतिपादक तो मिलकर भी सप्तभंगी का वाक्य नहीं है, जो अभी अन्तिम शंका में यह बात कहीं गई थी कि सातों ही प्रकार का वाक्य अलग-अलग होकर तो विकलादेश और समुदिक हो करके सकलादेश है सो यह स्वरूप नहीं बनता। समुदित होकर भी समस्त अर्थों का प्रतिपादक हो जाये वह सप्तभंगी वाक्य, ऐसा निश्चय नहीं है, क्योंकि सत्त्व असत्त्व आदिक के सम्बन्ध के जो ७ वाक्य कहे गए हैं। उन सातों वाक्यों से एक अनेक आदिक ७ वाक्यों द्वारा प्रतिपाद्य धर्मों का वर्णन नहीं हो पाता। कोई एक धर्म जैसे कथंचित् सत् है, कथंचित् असत् है, आदिक ७ धर्मों में विस्तृत है इसी तरह वे कथंचित् एक है, कथंचित् अनेक है, कथंचित् नित्य है कथंचित् अनित्य है। तो सभी बातें एक सप्तभंगी के समुदाय से ज्ञात नहीं होता। इससे सकलादेश का यह अर्थ युक्त नहीं हो पाता कि समस्त अर्थों का प्रतिपादक होने से समुदिक होकर सप्तभंगी वाक्यों का समुदाय सकलादेश कहलाता है। इस प्रकार प्रमाण सप्तभंगी, नय सप्तभंगी, प्रमाण वाक्य व नयवाक्य के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न सन्तजनों के भिन्न-भिन्न विचार है। उन सब विचारों का कुछ विचार करने बाद अब सिद्धान्त की बात पर आयें।

सकलादेश का स्वरूप—सिद्धान्त के जानकर लोग ऐसा कहते हैं कि एक धर्म के बोधन के द्वार से अर्थात् वस्तु में एक धर्म को समझाया जा रहा है इस माध्य से उस धर्म को आदि लेकर समस्त जो धर्म है उन सब धर्मस्वरूप जो वस्तु है सो उस समस्त वस्तु के बोध को उत्पन्न करने वाला जो वाक्य है उसे सकलादेश कहते हैं। याने वर्णन तो होगा एक धर्म के कथन द्वारा, पर एक धर्म के कथन के माध्यम से जो उसका भी और अन्य सब धर्मों का जो बोध करा देता है ऐसा जो वाक्य है उसका नाम सकलादेश है। अन्य आचार्यजन भी असी के सम्बन्ध में अपने कुछ शब्दों द्वारा वर्णन करते हैं कि वस्तु के एक धर्म के द्वारा बाकी सब वस्तुओं के स्वरूप का

संग्रह करने से सकलादेश कहलाता है। इस मंतव्य का विशेष अर्थ यह है कि जब अभिन्न वस्तु एक गुणरूप से कहा जाता है तब अन्य शेष धर्मों के बिना वस्तु का विशेष ज्ञान असंभव है। याने एक गुण रूप के कहे बिना अन्य धर्मों का ज्ञान होना असम्भव है। वह एक धर्मद्वारा ही कहा जायगा। लेकिन उस एक धर्म द्वारा उस समग्र वस्तु का कथन हो तो वह सकलादेश कहलाता है। इसका कारण यह है कि कोई एक पदार्थ अस्तित्व आदिक सब धर्मों में एक धर्म स्वरूप से या अभेद वृत्ति से अथवा अभेद के विचार से वे सब निरंश हैं। इस कारण समस्त रूप से ही कथन किया जाना अभीष्ट है। कोई चाहे कि हम वस्तु को पूरा जान जाये तो उसको उस समस्त वस्तु की जानकारी कराने के लिए जो कुछ भी कहा जायगा वह वचन किसी एक विशेषता का वाचक है। संसार में कोई शब्द ऐसा है ही नहीं किसी एक वस्तु के सम्बन्ध में कहने वाला कि उसकी एक विशेषता का सूचक न होकर समस्त वस्तु का सूचक हो। जैसे कहा घड़ा तो घड़ा शब्द यह बतलाता है कि जो घड़ा जाय उसे घड़ा कहते हैं। तो उस घड़ा वस्तु में केवल एक यही विशेषता तो नहीं है कि वह घड़ा जाता है। उसमें अन्य भी तो धर्म है, लेकिन लोग घड़ा, ऐसा शब्द बोलकर उस समस्त वस्तु का ग्रहण करते हैं तो जानकारी में यह पद्धति बनी हुई है कि एक धर्म के माध्यम से तो वर्णन किया जायगा और वहां समस्त वस्तु का ग्रहण हो जायगा। तो यों एक धर्म के कथन के माध्यम से उस धर्म सहित अन्य समस्त धर्मात्मक वस्तु विषयक बोध को जो उत्पन्न करे ऐसे वाक्य को सकलादेश कहते हैं। एक भंग के द्वारा जो तत्त्व अथवा धर्म कहा गया है उससे यह विभाग बन गया कि इसके सिवाय जो अन्य धर्म हैं वे इसके प्रतियोगी धर्म हैं। मुकाबले में भिन्न-भिन्न धर्म हैं। तो जब कभी एक भंग के द्वारा एक धर्म का कथन किया जाता है तो वहां उसका प्रतियोगी अन्य धर्म अविवक्षित है याने उस समय कहने को इष्ट नहीं है और बोध हो जाता है सबका। तो यों अभेदवृत्ति से अथवा अभेद उपचार से एक धर्म के कथन द्वारा उस धर्म सहित समस्त धर्मात्मक वस्तु का बोध हो जाता है और इस तरह का ज्ञान जो उत्पन्न कराये ऐसे वाक्य का नाम है सकलादेश।

द्रव्यार्थिकनय की प्रधानता में अभेदवृत्ति व अभेदोपचार का स्पष्टीकरण—यदि इस प्रसंग में यह जिज्ञासा हो कि कैसे अभेद सम्बन्ध से अभेदवृत्ति से किसी अभिन्न धर्मों को जानते हैं और यहाँ अभेद का उपचार किस ढंग से किया गया है सो सुनो! जब द्रव्यार्थिकनय का आश्रय करके कुछ कथन किया जाता है तो वहां दुव्यत्वरूप से अभेद होने के कारण अर्थात् द्रव्य तो अभेदरूप है, तो वहां अभेद सम्बन्ध से द्रव्यत्व की वृत्ति है क्योंकि द्रव्य के नाते से द्रव्यत्व धर्म से सब धर्मों का अभेद है। तो जब द्रव्यार्थिकनय का आश्रय करके कथन किया जाता है तो वहां अभेदवृत्ति स्वयं आ जाती है, क्योंकि वह दृष्टि ही द्रव्यार्थिकनय की है। द्रव्यार्थिकनय की

दृष्टि सामान्य होती है और वह दूसरों का पृथक्करण नहीं करती, किन्तु सबका समग्ररूप एक अभेद में रहता है। तो यों तो हुई अभेद सम्बन्ध से अभेदवृत्ति। अब अभेद के उपचार की बात सुनो! जब पर्यायार्थिक तत्त्वों का जैसे कि घटपना, कपालपना याने मिट्टी के घट खपरिया आदिक, उन अनेक पर्यायों में जितनी पर्यायें हैं उन पर्यायों में अथवा जीव द्रव्य को समझना चाहे तो जीव में देवपना, मनुष्यपना, इस तरह से इन व्यंजन पर्यायों में अथवा मिथ्यात्व हुआ, सम्यक्त हुआ आदिक धर्मों का आश्रय करने से अर्थात् इन पर्यायों का परिज्ञान करने की स्थिति में इनमें परस्पर भेद है तो भी द्रव्यत्वरूप एकत्र के मानने से अभेद का भी उपचार हो जाता है। हुई है एक जीव में मिथ्यात्व सम्यक्त आदिक अनेक पर्यायें लेकिन उन सबका आधार स्रोत तो एक यह जीव द्रव्य है। तो पर्यायार्थिकनय की दृष्टि में इस पर्यायात्मक रूप का भेद होने पर भी अभेद का उपचार बनता है।

परिज्ञानाशय के आधार पर सकलादेश व विकलादेश का विभाग—अभेदवृत्ति और अभेद उपचार की पद्धति से द्रव्यार्थिकनय की प्रधानता रखकर जो इन भंगों द्वारा किसी एक धर्म के कथन द्वारा समस्त धर्मात्मक वस्तु का ग्रहण किया जाता है उसको सकलादेश कहते हैं। तथा अभेदवृत्ति एव अभेद उपचार इन दोनों का आश्रय न करके एक धर्मात्मक वस्तु के विषय में ज्ञान को उत्पन्न करने वाले जो वाक्य है उनको विकलादेश में भीतर की दृष्टि का फर्क है अभेद पद्धति से उस एक धर्म के कथन द्वारा समस्त धर्मात्मक वस्तु का ग्रहण करना सकलादेश है और अभेद पद्धति से एक धर्म के कथन द्वारा एक धर्म विषयक ही ज्ञान को बताना सो विकलादेश है। तो यह ही सप्तभंगी अभेद पद्धति से सकलादेश को सूचित करती है और भेद पद्धति से विकलादेश को सूचित करती है।

प्रथम व द्वितीय भंग की उपपत्ति—अब उन ७ भंग में प्रत्येक भंग की विधि बतलाते हैं। ७ भंगों में से अन्य धर्मों का निषेध न करके विधि विषय बोध उत्पन्न कराने वाला वाक्य प्रथम भंग है, जैसे प्रकृत में कहा गया है स्याद् अस्ति एव घटः। यहाँ विधि की जाती है घट की। घट का अस्तित्व कहा गया है। और इससे सम्बन्धित ६ भंग और है जिनका विषय है नास्तित्व अवक्तव्य उभय आदिक, उनका निषेध नहीं किया। तो अन्य धर्मों का निषेध न करके विधि को बताने वाला यह प्रथम भंग है। इस भंग में खास ध्यान देने योग्य दो बातें हैं—स्याद् और एव। स्यात् का अर्थ है अपेक्षा से और एव का अर्थ है अवधारण। घट है ही अपेक्षा से तो अपेक्षा लगाकर ही का बोलना बहुत रहस्य को प्रकट करता है। सप्तभंग में संशय का स्थान नहीं है। संशय का विरोधी है एवं शब्द। जहाँ एव हो, अवधारण हो वहाँ संशय का अवकाश नहीं है। तो

एव लगाकर संशयवाद का निराकरण किया गया तथा स्यात् जो शब्द पहिले से लगाया गया उससे हठवादक निराकरण किया गया। अब द्वितीय भंग की बात सुनो ! द्वितीय भंग में जो कुछ तत्त्व बताया है उसके अतिरिक्त जो अन्य इ भंग है उनका निषेध न करते हुए प्रतिषेध के विषय का ज्ञान उत्पन्न करने वाला वाक्य है दूसरा भंग स्याद्नास्ति एव घटः

प्रथम भंग में प्रयुक्त द्रव्यवाचक व गुणवाचक शब्द का निरूपण—अब प्रथम भंग के सम्बन्ध में एक नवीन बात पर और ध्यान दीजिए ! प्रथम वाक्य में जो घट कहा है वह तो है द्रव्यवाचक और अस्ति कहा है वह है गुणवाचक । द्रव्य है विशेष्य और अस्ति है विशेषण। यहाँ शंकाकार शंका करता है कि ऐसे अनेक दृष्टान्त मिलेंगे कि जहाँ गुण तो विशेष्य बन जाता है और द्रव्य विशेषण हो जाता है और द्रव्य भी विशेष्य रूप से प्रयुक्त होता है। तब यह कहना यहाँ कि घट विशेष्य रूप है और अस्ति विशेषण रूप है, यह बात कैसे सम्भव हुई? उत्तर में कहते हैं कि कुछ हद तक आपकी बात यद्यपि सत्य है तो भी जो वाक्य समानाधिकरण रूप है उनमें तो यह नियम बन जाता ही है कि जो द्रव्यवाचक शब्द हो वह तो विशेष्य है और जो गुणवाचक हो वह विशेषण है। शंकाकार के कथन का यह प्रयोजन था कि जैसे अनेक उदाहरण पाये जाते हैं। घट का रूप फल की मधुरता, फूल की गंध, जल का ठंडापन, वायु का स्पर्श आदिक बातों में देखो ! शंकाकार बता रहा था कि यहाँ गुण भी विशेषरूप से देखा गया है। जो प्रधानरूप से कहा जाता हो वह विशेष्य होता है जैसे कहा गया जल का ठंडापन तो मुख्यता किस पर गई, ठंडेपन पर और ठंडापन है गुण, तो देखो यह विशेष्य बन गया। और कहाँ-कहाँ द्रव्य भी विशेषण बन जाता है। इसके समाधान में थोड़ा इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि समान अधिकरण वाले वाक्य में तो द्रव्य वाचक को ही विशेष कहा जाता है और गुणवाचक को ही विशेषण कहा जाता है। समानाधिकरण वाक्य का अर्थ यह है कि अवच्छेदक धर्म और वस्तु का गुण दोनों एक अधिकरण में हैं ऐसे बोध का जनक वाक्य जैसे कहा नील कमल। तो अब यहाँ अवच्छेदक धर्म है नील, नील कमल न कि अन्य पीला आदिक। तो जो शब्द अन्य का निराकरण करे उसे कहते हैं अवच्छेदक। व्यवहार के प्रयोग में भी शब्द अवच्छेदक बहुत बोले जाते हैं। जैसे किसी एक का नाम लेकर बोलना, तो इसमें अवच्छेदक बहुत बोले जाते हैं। जैसे किसी एक का नाम लेकर बोलना, तो इसमें अवच्छेदकता स्पष्ट है कि यह ही आया, अन्य कोई नहीं। तो अन्य के निराकरण की बात स्पष्ट न कहने पर भी शब्द में यह सामर्थ्य है कि वह अन्य का अवच्छेदक बन जाय। तो जैसे कहा गया नीलकमल, तो नील हुआ अवच्छेदक और कमल हुआ द्रव्य। तो द्रव्य वाचक कमल शब्द में तो है विशेष्यपन और नील इस शब्द में है ।

प्रथम भंग में अवच्छेदकता व अवधारण का प्रकाश—अब परखिये ! प्रथम भंग में अवच्छेदकता की बात। जैसे स्वकीय स्वरूप से अस्तित्व का भंग किया गया है, कहीं इसी प्रकार स्वकीय रूप से नास्तित्व का भी भान मत हो जाय, इस प्रयोजन के लिए अनिष्ट अर्थ के निराकरण के लिए एवं शब्द लगाया गया है। स्याद् अस्ति एवं घट, अपने स्वरूप से है ही। ही के लगाये बिना कहीं यह बात न बन जाय कि पदार्थ अपने स्वरूप से है और पर के स्वरूप से है ही। ही के लगाये बिना कहीं यह बात न बन जाय कि पदार्थ अपने स्वरूप से है और पर के स्वरूप से भी है। तो प्रतियोगी का व्यवच्छेद करने के लिए इसमें एवं शब्द दिया गया है। तब प्रथम भंग में स्याद् अस्ति एवं, इस शब्द के कहने से यह अर्थ ध्वनित होता है कि निज स्वरूप से घट का अस्तित्व ही है न कि नास्तित्व। अर्थात् अपने स्वरूप से है ही है, उसके निजरूप का आसक्त नहीं है। इसी सम्बन्ध में अन्य आचार्य जनों ने भी कहा है कि वाक्य में जो अवधारण शब्द दिया गया है वह अनिष्ट अर्थ की निवृत्ति के लिए दिया गया है। यदि अवधारण करने वाला शब्द न दिया जाय तो न कहे हुए के समान कदाचित् कहीं उसके प्रतियोगी की प्रतीति हो जायेगी। अर्थात् एवं शब्द के न कहने पर स्वरूप से नास्ति तत्त्व का भी बोध हो जायगा। अतः भंग में वाक्य के अवधारण रूप एवं शब्द का प्रयोग करना उचित है।

शंकाकार द्वारा एवं शब्द की व्यर्थता का निरूपण—शंकाकार कहता है कि देखिये ! नाना पदार्थ वाचक शब्दों में दिख जाते हैं कि कहीं एवं शब्द लगाने पर भी अनिष्ट अर्थ की निवृत्ति नहीं होती। और कहीं एवं एवं शब्द न लगाने पर भी अनिष्ट अर्थ की निवृत्ति हो जाती है। जैसे कहा—गौः एव, केवल गौ। यहाँ निश्चयवाचक एवं शब्द साथ में जुड़ा हुआ है फिर भी अनिष्ट अर्थ की निवृत्ति नहीं हो रही। सो कैसे? उसे यों देखिये कि गौ शब्द के अनेक अर्थ हैं। गौ शब्द—इंद्रिय, किरण, सूर्य आदि अनेक अर्थों का वाचक है। तो गौ एवं यहाँ एवं अवधारण वाचक शब्द रहने पर ही गौ शब्द द्वारा वाक्य जितने अर्थ है सभी अर्थों की उपस्थिति हो जायगी। और प्रयोजन था यहाँ गाय पशु से लेकिन शब्द में तो अर्थ भरे हैं अनेक, तो गौ ही यों यहाँ ही लगाकर केवल गाय पशु आया, ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि गौ शब्द के अनेक अर्थ हैं। किरण, सूर्य आदिक भी अर्थ लिए जा सकते हैं। तो देख लीजिए कि अवधारण वाला एवं शब्द लगा है इसमें, लेकिन गौ, एवं कहने से केवल गाय पशु का ही अवधारण बने सो बात नहीं। तो यहाँ यह देख लिया ना कि अवधारण वाचक एवं शब्द लगाने पर भी यहाँ पर अनिष्ट अर्थ की निवृत्ति नहीं हो सकती। अब दूसरा स्थल सुनो। यहाँ एवं शब्द का प्रयोग भी न हो फिर भी अनिष्ट अर्थ की निवृत्ति हो जाती है। जैसे कहा गया “गा आ नय” गाय को लावो, तो यहाँ एवं शब्द कुछ नहीं लगाया गया, फिर भी प्रकरण वश केवल गाय का ही बोध हुआ। गाय को ही

लायेगा सुनने वाला, अनिष्ट अर्थ को न लावेगा। तो अब यह निश्चय न रहा कि जहां एव शब्द लगा हो वहाँ अवधारण रहता है। गां आनय ऐसा कहने पर चूंकि वहाँ दूध लाने का प्रयोजन था उसके लिए पशु बोलने की बात कहीं जा रही है। तो उस समय गौ लावो इस शब्द से पशु का ही अवधारण हुआ, अन्य का नहीं। इससे सिद्ध है कि अवधारण शब्द के प्रयोग से अन्य की निवृत्ति न हो और ‘एव’ न भी लगा हो फिर भी अनिष्ट अर्थ की निवृत्ति हो जाय। इस हेतु से, अन्वयव्यतिरेक सही न रहने से निश्चयवाचक एव शब्द में अन्य की निवृत्ति। निवृत्ति में कारणपना नहीं आया अर्थात् एवं लगाने से अन्य बातों का निराकरण हो जाय यह बात नहीं आ सकती है। और भी देखिये ! एव शब्द लगाने में दोष, अन्य की निवृत्ति करता हुआ जो एव शब्द है वह शब्द है वह एव शब्द अन्य एव शब्द भी अपेक्षा रखता है या नहीं? अर्थात् एव शब्द का जो अर्थ है उसका भी अवधारण बन जाय और अन्य की निवृत्ति हो जाए इसीलिए अन्य एव शब्द की अपेक्षा होती है क्या? यदि कहो कि हाँ अन्य एव शब्द की अपेक्षा होती है तब तो अनवस्था दोष आयगा। जैसे अस्तित्व को पुष्ट करने के लिए एव शब्द लगाया गया है तो एव शब्द के अर्थ को पुष्ट करने के लिए और एव लगाना चाहिए। यों अनवस्था दोष होगा और यदि कहो कि एव शब्द दूसरे एव की अपेक्षा नहीं रखता है, तो जैसे “एव” के अर्थ का ज्ञान कराने में जैसे अन्य एव के प्रयोग बिना भी एव का अवधारण हो जाता है इसी तरह एव के प्रयोग बिना ही पदार्थ का अवधारण हो जाना चाहिए। तो यों सब शब्दों के प्रयोग में भी एव के कहे बिना ही प्रकरण आदिक से अन्य की निवृत्ति बराबर बन जायगी। तब स्याद अस्ति एव इस प्रकार के प्रथम भंग में एव शब्द को जोड़ना बिल्कुल व्यर्थ है। शंकाकार इस समय प्रथम भंग स्याद अस्ति एव इसमें स्याद अस्ति, इन दो पर आपत्ति न देकर यहाँ एव शब्द पर आपत्ति दे रहे हैं कि एव कहने की जरूरत नहीं है। क्योंकि इससे अवधारण का अन्वय व्यतिरेक नहीं है। याने एव कहने पर भी अन्य की निवृत्ति निश्चित नहीं है और एव न कहने पर भी अन्य की निवृत्ति है। साथ ही एव अगर दूसरे “एव” को चाहेगा तो अनवस्था बनेगी। और न चाहेगा तो पहिले ही एव की कोई आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार प्रथम भंग में एव शब्द का देना व्यर्थ है। यों शंकाकार ने शंका की।

“एव” शब्द की अव्यर्थता व आवश्यकता का निरूपण—एव शब्द से अवधारण सिद्ध नहीं होता है ऐसी आशंका के समाधान में कहते हैं कि ऐसी शंका नहीं कर सकते, क्योंकि फिर तो शब्द शास्त्र की परिपाठी विरुद्ध पड़ जायेगी। शब्द शास्त्र में यह बताया गया है कि जो शब्द अपने अर्थ मात्र में जो कि अनवधारित हुए है शब्द याने निश्चय रूप से कहा गया नहीं है ऐसे अपने अर्थमात्र में जो शब्द संकेतित हुए है याने जो शब्द कहे गए है वे शब्द अपने स्वरूप के

अवधारण की विवक्षा में अर्थात् ये ऐसे ही है यों निश्चय की विवक्षा में एव शब्द की अपेक्षा रखते हैं जैसे कि शब्दों के समुच्चय आदिक की विवक्षा वे च शब्द नहीं बोलते तो यह अर्थ रहता कि घट को लावो। एक सामान्य कथन था। सम्भव है कि घट के ही समान और कोई पदार्थ थोड़ा सा उस प्रकृत प्रयोजन को बनाता होता तो उसको भी ला सकता था। जैसे कहा कि एक कटोरा लावो और न मिले कटोरा उस समय तो गिलास को भी ला सकता है। क्योंकि जो प्रयोजन कटोरा से बनता है थोड़ा-थोड़ा कार्य गिलास से चल जायेगा लेकिन जब यह कहा जायें कि एक कटोरा ही लाओ तो गिलास वगैरह कुछ नहीं लाये जायेंगे। तो ही शब्द एक अवधारण को सिद्ध करता है। जैसे कि 'च' शब्द समुच्चय को जताता है। जैसे किसी ने कहा—कटोरा लावो और गिलास लावो तो जो और शब्द लग गया जो कि 'च' का अर्थ है तो उससे समुच्चय अर्थ आ गया। तो यह एव शब्द अवधारण को सूचित करता ही है। तो जो शब्द अवधारण का अर्थ नहीं रखता, अपने ही वाक्य अर्थ को रखते हैं उन शब्दों के आगे निश्चय की विवक्षा होने पर एव शब्द लगाया जाता है। लेकिन एव शब्द तो खुद अवधारणा के रूप में रखा गया। एव का अर्थ ही निश्चय होता है। तो अब उससे और निश्चय के लिये अन्य एव शब्द की अपेक्षा न रहेगी। जैसे च का समुच्चय समझने के लिये दूसरे च की अपेक्षा न रहती। जैसे बोला कि कटोरा लावो ! और और गिलास लावो ! तो ऐसे अनेक और बोलने का प्रयोजन है? एक और से ही समुच्चय का अर्थ ध्वनित होता है। अब उसके समुच्चय बनाने की आवश्यकता नहीं है। इसी तरह कटोरा ही लावो। कटोरा अर्थ के अवधारण के लिए एक बार 'ही' बोल दिया अब और 'ही' के अवधारण की आवश्यकता है जिससे और 'ही' लगाने की जरूरत पड़े। यों भंगों में जो एव शब्द लगा हुआ है—स्याद् अस्ति आस्ति एव स्याद् नास्ति एवं वह शब्द सार्थक है और उसके अवधारण के लिए और शब्द की आवश्यकता नहीं रहती।

एक शब्द की व्यर्थता की शंका व उसका समाधान—अब यहाँ कोई संदेह रख रहा है कि भाई ! जो निपात शब्द होता है वह तो द्योतक ही होता है। अर्थात् निपात शब्द का जिस शब्द के साथ जुड़ाव रहता है वह निपात शब्द जिसमें जुड़ा है उस शब्द के अर्थ को ही प्रकाशित करता है। उसी के मायने है द्योतक होना। तो निपात द्योतक होता है, इस कारण उसमें एव शब्द की वाचकता सम्भव नहीं है अर्थात् एव शब्द द्योतक है वाचक नहीं है। इस कारण एव शब्द का प्रयोग व्यर्थ ही है, वह तो किसी अर्थ का वाचक ही नहीं है। उत्तर में कहते हैं कि ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि निपात शब्द द्योतक भी होता और वाचक भी, ऐसा शब्द शास्त्र में बताया ही गया है कि 'द्योतकाश्च भवन्ति निपाताः' निपात द्योतक भी होते हैं तो वहां जो 'च' शब्द का प्रयोग किया है और कहा है कि 'और द्योतक भी होते हैं निपात' तो इस 'च' शब्द से निपातों की

वाचकता भी बताई गई है। निपात शब्द वाचक भी होते हैं, यह अर्थ अपने आप ध्वनित हो जाता है।

द्योतक शब्द के लिए अन्य द्योतक शब्द की अपेक्षा का कथन—कुछ संतजन तो स्पष्ट ऐसा कहते हैं कि जो निपात शब्द होते हैं, वे द्योतक हुआ करते हैं और द्योतक होने के नाते से द्योतक शब्द के लिए अन्य द्योतक शब्द की अपेक्षा नहीं रहती। इस कारण अवधारण का द्योतन करने के लिये अन्य एकाकार की अपेक्षा न रहेगी। तो एक शब्द के निश्चय के लिए अन्य एवं शब्द की अपेक्षा नहीं रहती। निपात शब्द वह कहलाता है कि जिसका कुछ वाच्य नहीं, किंतु किसी शब्द के अर्थ को ही ध्वनित करने के लिये शब्द बनाया गया है। जैसे हिन्दी में और ही भी इन शब्दों का निजी अर्थ कुछ नहीं है। और ये शब्द कभी स्वतंत्र प्रयोग में आते नहीं किन्तु शब्दों के साथ ही इन निपात शब्दों का प्रयोग होता है उनके वाच्य में कुछ विशेषता जताते हैं ये निपात, इनका भिन्न अर्थ कुछ नहीं है। तो उन्हीं निपात शब्दों में एवं शब्द है। जैसे हिन्दी में ‘ही’ होता है, यह अवधारण के लिए आता है। तो चूंकि यह एवं अथवा ही शब्द स्वयं अवधारण द्योतक है, इस कारण इनका और अवधारण करने के लिए अन्य एवं शब्द की अपेक्षा नहीं। जैसे कि दीपक द्योतक पदार्थ है प्रकाश करने वाली वस्तु है। अब दीपक के निश्चय करने के लिये अन्य दीपक की अपेक्षा नहीं रहती। तो जैसे घट पट आदिक पदार्थों को ढूँढ़ने के लिये दीपक की अपेक्षा की जाती है इस तरह दीपक को ढूँढ़ने के लिये अन्य दीपक की अपेक्षा नहीं रहती। तो जैसे घट आदिक पद वाच्य शब्द है तो इन वाचक शब्दों के अवधारण करने के लिए एवं शब्द की अपेक्षा हुई घट ही है। यहां तो ही लग गया, पर ही के और निश्चय करने के लिये अन्य ही की अपेक्षा न होगी।

द्योतक शब्द में भी अन्य द्योतक शब्द जुड़ने की एक शंका व उसका समाधान—निपातों से केवल द्योतक कहकर प्रकृत समाधान में सहयोग देने के प्रयत्न करने वाले इस चर्चाकार के प्रति कोई शंकाकार कहता है कि भाई देखिये ! द्योतक भी शब्द हो तो भी उसको अन्य द्योतक शब्द की अपेक्षा देखा जाता है। जैसे एक प्रयोग किया गया—ऐसा ही है। अब यहां देखिये ! ऐसा यह शब्द भी द्योतक है निपात है और उस द्योतक शब्द के अवधारण के लिए इसमें ही फिट बैठाया गया है। ऐसा ही है। यह अयुक्त प्रयोग तो नहीं है, और है दोनों द्योतक शब्द। “ऐसा” यह शब्द भी द्योतक है और “ही” भी द्योतक। तो द्योतक शब्द के लिए भी अन्य द्योतक शब्द की अपेक्षा देखी जाती है। जैसे कि एवं एवं, इसमें एवं के साथ एवकार की अपेक्षा हुई, इसी प्रकार समस्त द्योतक शब्द द्योत्य अर्थ में, जिस अर्थ का प्रकाश करना है उस अर्थ में अन्य द्योतक की अपेक्षा

रहेगी। और, इसी तरह फिर तो अनवस्था हो जायगी। वह किसी प्रकार हटायी न जा सकेगी। इस शंकाकार के प्रति चर्चाकार समाधान करता है कि यह कथन करना युक्त नहीं है। क्योंकि यहां जो उदाहरण दिया है एवं एव' ऐसा ही है, इस उदाहरण में जो एवं शब्द है उसका खुद का निजी अर्थ है, वह स्वार्थ वाचक होने के कारण स्व अर्थ से अतिरिक्त अन्य अर्थ की निवृत्ति के लिए द्योतक एवं शब्द की अपेक्षा हुई। निपात शब्द वाचक भी हुआ करता है, यह बात शास्त्र सम्मत है तात्पर्य यह है कि जिन शब्दों का अपना अर्थ होता है उनके अवधारण के लिए एवं एवं शब्द का प्रयोग होता है लेकिन एवं के अवधारण की न कोई अपेक्षा रहती है और न अन्य एवं शब्द की वहां आवश्यकता होती है। निपात शब्द कई निपात शब्द केवल द्योतक होते हैं। यहां एवं अर्थात् ऐसा, यह शब्द वाचक भी है द्योतक भी है। निपात शब्द वाचक भी होता है, इसमें संदेह न करना चाहिए। देखिये ! समास जो हुआ करते हैं वे वाचक शब्दों में ही हुआ करते हैं। निपात के साथ ही अगर कहीं समास होता है तो समझना चाहिए कि यह वाचक है और इस अर्थ को ध्यान में रखकर यहां समास किया गया है। जैसे उपकुम्भम्—यह समास वाला शब्द है, इसका अर्थ है—कुम्भ के समीप। तो यहां उपशब्द है इसका अर्थ है कुम्भ के समीप। तो यहाँ उपशब्द है तो निपात शब्द, लेकिन इसका अपना अर्थ है। यहां समीप अर्थ में उप का प्रयोग है तभी उप शब्द के साथ कुम्भ शब्द का समास संगत हुआ है अन्यथा अर्थात् यदि इस निपात शब्द का स्व अर्थ न होता, केवल द्योतक ही कहलाता। तो इस शब्द के साथ समास न हो सकता था, क्योंकि द्योतक शब्द के साथ समास नहीं किया जाता। जो शब्द अपने खुद का अर्थ रखते हैं उन शब्दों के साथ ही समास किया जाता है। तो चर्चाकार के प्रति शंकाकार की शंका अयुक्त है। निपात शब्दों में जो शब्द वाचक भी है उनके साथ अन्य द्योतक शब्द लगा दिये जाते हैं, किन्तु जो शब्द केवल द्योतक ही है, जिनका अपना कुछ अलग अर्थ नहीं है उनके साथ अन्य द्योतक शब्द की अपेक्षा नहीं रहती।

अन्यव्यावृत्तिवाद में 'एव' शब्द की व्यर्थता की आशंका व उसका समाधान—यहां पर क्षणिकवादी सौगत कहते हैं कि जितने भी शब्द है वे सभी शब्द अन्य व्यावृत्ति के वाचक हैं। जैसे कि घट कहा तो घट का अर्थ सीधा विधिरूप घड़ा नहीं है, किन्तु घट को छोड़कर बाकी अन्य पदार्थ नहीं है, यह घट का अर्थ होता है। तो सभी शब्द जब अन्य व्यावृत्ति के वाचक हैं और इसी कारण घट आदिक पदार्थों से भी अन्य की व्यावृत्ति का बोध होता है। तब यहां अनिष्टरूप अर्थ की निवृत्ति के लिए अवधारण वाचक एवं शब्द देना युक्त नहीं है। शंकाकार का यहां यह अभिप्राय है कि जब कोई शब्द अपना निजी अर्थ नहीं रखता, किन्तु उसका अर्थ अन्य व्यावृत्ति है तब फिर अवधारण वाचक एवं शब्द देने की बात युक्त नहीं है। इसके समाधान में कहते हैं कि

सौगत का यह सिद्धान्त युक्तिपूर्वक नहीं है। क्योंकि घट आदिक शब्दों से दोनों ही बोध हुआ करते हैं। अन्य की निवृत्ति भी ज्ञात होती है और विधि रूप से घट अर्थ भी ज्ञान में आता है ऐसा सभी को अनुभव सिद्ध है जैसे किसी ने कहा घड़ा तो इस शब्द से दोनों ही बातें बोध में आती है कि यह घड़ा है और घड़े के अतिरिक्त अन्य पदार्थ यह नहीं है। यदि ऐसा न मानोगे कि घट आदिक शब्दों से विधिरूप अर्थ का बोध हुआ करता है तो अन्य व्यावृत्ति शब्द विधि रूप से अन्य की निवृत्ति रूप अर्थ का ज्ञान कैसे करा सकता है? जैसे पूछा जाय कि अन्य व्यावृत्ति का मतलब क्या है? तो उसकी भी तो विधि बतानी पड़ेगी और विधि तुम अर्थ में मानते नहीं तो विधि अर्थ माने बिना अन्य व्यावृत्ति शब्द का भी अर्थ नहीं बन सकता। यदि सुगत ऐसा कहें कि अन्य व्यावृत्ति शब्द भी अन्य व्यावृत्ति से भिन्न अन्य की व्यावृत्ति रूप से अन्य व्यावृत्ति रूप अर्थ का बोध करता है जैसे कि घट कहने से अघटव्यावृत्ति रूप से अन्य व्यावृत्ति समझ में आती है इसी प्रकार अन्य व्यावृत्ति शब्द से इससे भिन्न जो अन्य है उनकी व्यावृत्ति का अर्थ बन जायगा। तो यह कहना संगत नहीं है क्योंकि यदि उस व्यावृत्ति से भिन्न अन्य व्यावृत्ति रूप से बोध कराये तो फिर वह तीसरी अन्य व्यावृत्ति से अन्य व्यावृत्ति का बोध होगा। और तीसरी अन्य व्यावृत्ति का बोध चौथी अन्य व्यावृत्ति से होगा। तो यों इसमें अनवस्था दोष आयगा, क्योंकि विधि न मानने से अन्य की व्यावृत्ति की धारा कभी समाप्त ही न होगी। इससे यह सिद्ध हो गया कि वाक्य में अनिष्ट की निवृत्ति धारा कभी समाप्त ही न होगी। इससे यह सिद्ध हो गया कि वाक्य में अनिष्ट की निवृत्ति के लिये अवधारणसूचक एवं शब्द कहना युक्त ही है। तब स्याद्‌अस्तिएव घटः इसका निश्चयात्मक अर्थ यह हुआ कि घट अपने स्वरूप से है ही। स्याद्‌नास्ति घटः इसका अवधारणपरक अर्थ यह हुआ कि घट पररूप से नहीं है ही, इस तरह प्रत्येक भंगों में एवं शब्द अपनी अपेक्षा को लेकर अवधारण ही कराता है।

एव शब्द की अयोग्यवच्छेद बोधकता—अब एवकार के अर्थ और प्रकार के विषय में सुनो ! एव शब्द तीन प्रकार का होता है। एव शब्द से निश्चय ही तो किया जाता है। उसमें तीन कलायें होती हैं। और उस पद्धति से एव तीन प्रकार का होता है—एक अयोग्यवच्छेद बोधक दूसरा अन्य योग-व्यवच्छेद बोधक तीसरा अत्येता योगव्यवच्छेद बोधक। इसका सामान्यतया अर्थ यह है कि जिसका योग जुड़ाव सम्बन्ध नहीं है उसका निराकरण कर देता है ‘ही’ शब्द। जैसे किसी ने कहा कि शंख सफेद ही, होता है तो इससे ‘ही’ लगा है सफेद के साथ। सफेद है विशेषण और शंख है विशेष्य। तो उस शंख में यह निश्चय किया गया है कि सफेद ही है। तो इस ‘ही’ ने अन्य किन बातों को हटा दिया? काला, पीला, नीला आदिक अन्य विशेषणों का व्यवच्छेद कर दिया। तो जो विशेषण में लगा हुआ एवकार हो वह अयोग का व्यवच्छेद करता है। जैसे कोई

कहे कि यह पुरुष मोटा ही है तो अर्थ हुआ कि पतला आदिक नहीं है। तो जिन विशेषणों का योग नहीं हो सकता उस विशेष्य में उन सब विशेषणों को हटा दें उसे अयोग व्यवच्छेदक कहते हैं। तो एव शब्द में अयोग व्यवच्छेदकपने की कला पड़ी हुई है। अयोगव्यवच्छेद में होता क्या है? कि जिस उद्देश्य से सहित अधिकरण है उसमें जिसका अभाव बताना है उस अभाव की अप्रतियोगिता को अयोगव्यवच्छेद कहते हैं। जिस वस्तु का अभाव कहा जाता है यह वस्तु उस अभाव का प्रतियोगी है। प्रतियोगी का अर्थ समझिये शत्रु। जैसे घट का अभाव कहा तो घट के अभाव का प्रतियोगी है घट। घट है तो उसका अभाव नहीं। अभाव है तो वहां घट नहीं। जिस वस्तु का अभाव बताना है उस अभाव का प्रतियोगी वह वस्तु होती है। यहां जो उदाहरण दिया गया है वहां वस्तु बतायी जा रही है शंख। उसमें धर्म है शंखपना। तो शंखपना धर्म से सहित जो शंख है उसके साथ ही साथ सफेदी रूप धर्म की विधि बतायी जा रही है। तो शंखपने का अधिकरण है शंख। और इसी शंख में समान अधिकरण रूप से रह रहा है सफेदी पर। तो उसमें नीलपीत आदिक पन का अभाव है। इस अभाव का प्रतियोगी शंख हुआ। और सफेदी का अभाव है नहीं तो सफेदी के अभाव का शंख अप्रतियोगी हुआ। मायने सफेदीपन और शंख को तो सम्बन्ध है, शत्रुता नहीं है और जिन-जिन धर्मों का अभाव बतलाया जा रहा है उन-उन धर्मों की शत्रुता है। इस रीति से शंखपन जैसे शंख में रह रहा है ऐसे ही सफेदपन भी शंख में ही रह रहा है कोई कहे कि शंख सफेद ही है तो उसका अर्थ हुआ कि शंख में जिन-जिन धर्मों का योग नहीं है, जिन-जिन धर्मों का अभाव है उन धर्मों का व्यवच्छेद करता है 'ही' शब्द। शंख सफेद ही है, काला, पीला, नीला आदिक नहीं। वह अन्य समस्त विशेषणों का परिहार कर देता है तो देखो यहां एव शब्द लगाने से अयोग व्यवच्छेद हुआ तो अयोग व्यवच्छेद बोधक एवकार वह कहलाता है जो विशेषण के साथ लगा हुआ हो।

'एव' शब्द की अन्ययोगव्यवच्छेदबोधकता—अब दूसरे प्रकार के 'एव' की बात सुनो ! एक एवकार अर्थात् 'ही' शब्द अन्ययोग व्यवच्छेदबोधक होता है जो एवकार विशेष्य में लगा हुआ होता है वह है अन्य योग के व्यवच्छेदक बोध कराने वाला। जैसे कि कहा—अर्जुन ही धनुर्धारी है तो यहाँ ही शब्द विशेष्य के साथ लगा है। अर्जुन ही धनुर्धारी है अन्य लोग धनुर्धारी नहीं है, तो इसमें अन्य विशेष्यों का व्यवच्छेद किया गया है। अन्य योगव्यवच्छेद नाम है उसका जो विशेष्य से भिन्न पदार्थों का तादात्प्य हटा दे। तो यहां पर जो अर्जुन के साथ ही शब्द लगा है वह अर्जुन को छोड़कर अन्य पुरुषों में धनुर्धारिता के तादात्प्य का अभाव बताता है कि धनुर्धारी तो अर्जुन ही है। अब यहाँ एक विशेष बात यह भी जान लेनी चाहिये कि जैसे अर्जुन को छोड़कर अन्य

पुरुषों में धनुर्धारीपने का तादात्म्य नहीं है, तो अर्जुन में धनुर्धारीपने को तादात्म्य है। तो जो ही शब्द विशेष्य के साथ लगा हुआ हो वह अन्य योगव्यवच्छेदक होता है।

‘एव’ शब्द की अत्यन्तायोगव्यवच्छेद बोधकता—अब तीसरा एव शब्द है अत्यन्तायोगव्यवच्छेद का बोधक। इसका लक्षण यों समझिये कि क्रिया में लगा हुआ जो एव शब्द हो वह है अत्यन्तायोगव्यवच्छेद बोधक। जैसे कि कहा नील सरोज होता ही है, कमल नील होता ही है। यहाँ ही शब्द क्रिया के साथ लगा है। यहाँ पर कमल को अन्य पदार्थों से पृथक् करने वाला धर्म है कमलपना, क्योंकि कमलपने से सहित कमल का ही उद्देश्य करके कि इसमें कुछ बताना है, नीलपने का विधान किया गया है। सो कमलपने के रूप धर्म से सहित कमल में नील से भेदरूप धातु के अर्थ का विधान करना यह इष्ट है, तो यहाँ नील में अभावता बताते हैं और अन्य में यह क्रिया नहीं है, सत्ता नहीं है यह भी बताते हैं। भावार्थ यह है कि जहाँ अभेद रहेगा वहाँ अभेद का अभाव नहीं रह सकता। जैसे कमलपने में व्यापक जिनका अत्यन्ताभाव है, उन अत्यन्त भावों का अप्रतियोगी है नील से अभिन्न कमल। सीधी बात यों जानना चाहिए कि जिस एव शब्द का सम्बन्ध क्रिया से है वह है अत्यन्तायोग व्यवच्छेदबोधक एवकार।

स्यादस्तयेव घटः इस प्रथम भंग में प्रयुक्त एव की अत्यन्तायोगव्यवच्छेदबोधकता होने से अनिष्ट निवृत्ति के अभाव की शंका—एवकार के तीन प्रकार सुनकर कि जिसमें विशेषण संगत एवकार हो वह तो है अयोगव्यवच्छेद बोधक और विशेष्य में लगा हुआ एवकार हो तो वह है अन्ययोगव्यवच्छेदबोधक तथा क्रिया में लगा हुआ एवकार हो तो वह है अत्यन्तायोगव्यवच्छेद बोधक। यों एवकार के तीन भेद सुनकर शंकाकार कहता है कि इस रीति से तो स्याद् अस्ति एव घटः यह जो प्रथम भंग कहा है इसमें एवकार अत्यन्तायोग व्यवच्छेदक बोधक होना चाहिये क्योंकि इसमें ‘एव’ क्रिया से लगा हुआ है। अस्ति एव (है ही), इस प्रकार ‘एव’ के क्रिया से लगे रहने के कारण अत्यन्तायोगव्यवच्छेद बोधक एवकार होगा और ऐसा एवकार मान लेने पर फिर जो आपका इष्ट अर्थ है उसकी सिद्धि न होगी। आपका इष्ट अर्थ था अयोगव्यवच्छेद में अर्थात् घट है ही, घट पररूप से नहीं है, तो पररूप से अस्तित्व का अवच्छेद करने के लिये एव शब्द माना था लेकिन अब तो एव शब्द क्रिया में लगा होने के कारण अयोगव्यवच्छेद न होगा। इससे तो अत्यन्तायोगव्यवच्छेद बना। जैसे कि किसी कमल में नीलपने के अभाव में भी नीलकमल होता ही है ऐसा प्रयोग किया जाता है।

प्रथम भंग में प्रयुक्त ‘एव’ शब्द की अयोगव्यवच्छेद बोधकता का समाधान—उक्त शंका के समाधान में कहते हैं कि यह बात युक्त नहीं है। इस प्रथम भंग में जो एवकार लगा है वह

अयोगव्यवच्छेदबोधक ही स्वीकार किया गया है। रही यह बात कि एवं तो लगा है क्रिया में सो सुनो ! क्रिया में लगे हुए एवकार का भी कहीं-कहीं अयोगव्यवच्छेद अर्थ होता है। भले ही एवं क्रिया में लगा हो मगर उसकी धुन, उद्देश्य, प्रकरण, दृष्टि आदि निरखकर समझ लिया जाता है कि इस एवं का अर्थ अयोगव्यवच्छेद है तो स्यात् अस्ति एव घटः इस वाक्य में घट है ही तो 'ही' भले ही क्रिया में लगा है पर अघट नहीं है इस तरह अयोगव्यवच्छेद ही अर्थ है। जैसे कि एक प्रयोग होता है—ज्ञान अर्थ को ग्रहण करता ही है। इस प्रयोग में ज्ञानत्व का अधिकरण है ज्ञान और उस ही समानाधिकरण में जो अत्यन्ताभाव जाहिर किया है किसका? न ग्रहण करने का, उसकी अप्रतियोगिता का अर्थ ग्राहकत्व रूप धात्वर्थ में परिचय है, उसका अप्रतियोगी है ज्ञान, तो वह अर्थ का ग्रहण कर रहा है। इस अर्थ में उसका बोध हो ही रहा है। वहां पर भी जब अत्यन्तायोगव्यवच्छेद के बोध में वचन बोला जायगा कि ज्ञान अर्थ का ग्रहण करता ही है तो इस तरह की पद्धति में यह भी बोला जायगा कि ज्ञान अर्थ का ग्रहण करता ही है तो इस तरह की पद्धति में यह भी बोला जा सकेगा कि ज्ञान चांदी का ग्रहण करता ही है। लेकिन यह प्रयोग युक्त तो न होगा, क्योंकि समस्त ज्ञानों में चांदी को ग्रहण करता ही है। लेकिन यह प्रयोग युक्त तो न होगा, क्योंकि समस्त ज्ञानों में चांदी को ग्रहण करने का अभाव है। ही अर्थात् सारे ज्ञान चांदी का ही तो ग्रहण नहीं करते, तो सारे ज्ञानों में रजत ग्राहकता का अभाव होने पर भी जो कुछ ज्ञान में रजत ग्राहकता के सत्त्व से ही ज्ञान रजत को ग्रहण करता ही है यह एवकार का प्रयोग अत्यन्तायोग व्यवच्छेद में निर्वाध बन जायगा। तो इसी तरह यहां भी समझ लेना चाहिए कि प्रथम भंग में यद्यपि एवं शब्द का प्रयोग किया के साथ लगा हुआ है तो भी यह अयोग व्यवच्छेदबोधक ही है।

अस्ति के साथ एवं शब्द के योजित रहने पर भी उसके अयोगव्यवच्छेदरूप अर्थ का वर्णन—स्यादअस्तिएव घटः आदिक वाक्यों में अयोगव्यवच्छेदबोधकता की बात घटा लीजिए ! घटत्व का अधिकरण है घट, घट के समानाधिकरण में अत्यन्ताभाव का प्रतियोगीपन जो एवकार का अर्थ है वह अस धातु के अस्तित्वरूप अर्थ में याने अस्तित्व में अन्वित है सो वहां घटत्व का समानाधिकरण रूप अत्यन्ताभाव का प्रतियोगी अस्तित्वान घट है यह परिचय हुआ। याने अत्यन्ताभाव का व्यवच्छेद भी अर्थ लिया जाय तो उससे भी अयोगव्यवच्छेद का अर्थ होता है। है ही अर्थात् घट में स्वरूप के अभाव का अभाव है इससे भी सिद्ध हुआ कि प्रथम भंग में स्वरूप का अस्तित्व बताया गया है। घटत्व का समानाधिकरण रूप जो अत्यन्ताभाव है। जिस किसी का भी, अघट का अत्यन्ताभाव है तो अघट का ही तो अत्यन्ताभाव है किन्तु अस्तित्व का तो अत्यन्ताभाव न रहा तो अत्यन्ताभाव का व्यवच्छेद भी घटित हो जाता है और निष्कर्ष रूप में

अयोगव्यवच्छेद अर्थ होता है। घट अपने स्वरूप से है परस्वरूप से अत्यन्ताभाव है। तो इस प्रकार चाहे क्रियासंगत एव की पद्धति से लगावो चाहे विशेषण संगत एवकार की पद्धति से लगाओ, अर्थ यह होगा कि यह अपने स्वरूप से है और परस्वरूप से नहीं है। पररूप का व्यवच्छेद कर देने वाला यह प्रथम भंग है।

एवकार का अन्यनिवृत्तरूप उद्देश्य—यहां शंकाकार कहता है कि क्रियासंगत एवकार का अर्थ प्रयोग व्यवच्छेद रूप जो बताया गया है अर्थात् यह बताया गया है कि घट में जो कि घटत्व का अधिकरण है उसमें ही अत्यन्ताभाव है सो उस अत्यन्ताभाव का व्यवच्छेद का सूचक एवकार का अर्थ अयोगव्यवच्छेद लगाया है सो इससे अस्तित्व का अत्यन्ताभाव भी तो बन सकता है, क्योंकि अस्तित्व के अत्यन्ताभाव रूप नास्तित्व का घट में सत्त्व है। जैसे कि घट में अस्तित्व है इसी प्रकार घट में नास्तित्व भी है और ऐसे अभाव का अस्तित्व अप्रतियोगी रहे इसमें बाधा आ जाती है। तो यों जैसे कि उस वाक्य का अर्थ लगाया है। क्रिया संगत एवकार का भी जो अयोगव्यवच्छेदरूप अर्थ लगाया है सो उससे तो नास्तित्व का घट में निषेध प्राप्त होता है। इस शंका के उत्तर में कहते हैं कि देखिये—यहां एवकार का जो अर्थ है वह प्रतियोगी के व्यधिकरण के अभाव का अप्रतियोगी होना माना गया है। अर्थात् जैसे अधिकरण में प्रतियोगी हे उसी में उसका अभाव भी हो ऐसा नहीं, किन्तु प्रतियोगी के अधिकरण में न रहने वाला जो अभाव है उस अभाव का अप्रतियोगी है याने घट में पट का अभाव ही सिद्ध हो सकेगा। घट में घट का नास्तित्व कैसे कहा जा सकता है? जैसे कि प्रयोग किया गया कि शंख सफेद ही होता है तो इसमें शंखत्व का समानाधिकरण है शंख। शंख में पाण्डुत्व के होने से अब उस एवकार का अर्थ अयोगव्यवच्छेदरूप बना। ऐसे ही स्यादअस्ति एव घट में एवकार का अर्थ घट के अस्तित्व का समर्थन करता ही है। इसमें यह शंका नहीं कर सकते कि घट के अत्यन्ताभाव को ही सिद्ध कर दे एवकार। स्यादअस्ति एव घटः ऐसा कहने से सीधा यह अर्थ होता है कि स्वरूप से घट है ही। अब इस ‘ही’ के साथ लगा दिया जाय, स्वरूप से घट ही है, अथवा उस एव का अर्थ स्यात् के साथ लगा दिया जाय, घट स्वरूप से ही है अथवा उस एव को क्रिया में लगा दिया जाय घट स्वरूप से है ही। सबका मतलब यही निकलता है कि घट अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से है पर के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नहीं है। तो जैसे शंख सफेद ही है। यहां पर अन्य का प्रवेश नहीं हुआ। इसी प्रकार घट है ही, इस अस्तित्व के प्रसंग से अन्य का नास्तित्व सिद्ध होता है तो वह तो युक्त है मगर सर्व प्रकार का अस्तित्व या नास्तित्व आये यह बात इष्ट नहीं है। घट अपने स्वरूप से ही है, पर स्वरूप से नहीं है, इसमें जो स्यात् शब्द लगा है उस स्यात् शब्द के आधीन एवकार का अर्थ है उससे भी यह सिद्ध है कि घट अपने स्वरूप से ही है।

स्यात् शब्द की अनेकान्त अर्थ में वृत्ति—इन भंगों में जो स्यात् शब्द लगाया गया है वह अनेकान्त विधि विचार आदि अनेक अर्थों में सम्भव है। लेकिन वक्ता की विशेष इच्छा होने से स्यात् शब्द का अर्थ अनेकान्त अर्थ में ही लगता है। अनेकान्त शब्द का अर्थ क्या है? अनेक अन्तरूप। अंत मायने धर्म के है। अनेक धर्मरूप। तो अनेकान्त में जो अन्त शब्द है उसका घटादिक शब्द में अभेद सम्बन्ध से अन्वय होता है। तो अनेक धर्मात्मक घट यों कहो या अनेक धर्मस्वरूप अस्तित्वान घट यह कहो, प्रथम भंग का अर्थ होता है। स्यात् शब्द लगते ही यह ध्वनित हो जाता है कि जिस धर्म से अन्वित इस समय कहा जा रहा है उस धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मस्वरूप भी यह है। स्यात् शब्द से ही जब अनेक धर्मस्वरूप घट ऐसा बोध हो गया तब अस्तित्वादिक का कहना व्यर्थ है, ऐसी शंका नहीं कर सकते। कोई यह सोचे कि एक स्यात् शब्द में ही ऐसी सामर्थ्य है कि वह अनेक धर्म स्वरूप घट का बोध करा दे तब स्यात् शब्द का ही प्रयोग करके रह जाय, अस्ति तत्त्व आदिक का कथन करना व्यर्थ है, सो ऐसा नहीं कहा जा सकता। क्योंकि स्यात् शब्द से तो सामान्यरूप से ही अनेकान्तपने का बोध हुआ। जहां स्यात् शब्द लगा दिया वहां यह अर्थ तो ध्वनित हो गया कि अनेक धर्मस्वरूप है मगर कैसे-कैसे धर्मस्वरूप है उसकी दिशा का बोध नहीं हो पाया। तो स्यात् शब्द बोलकर अनेकान्त का सामान्य से ज्ञान हो गया तो भी विशेष रूप से ज्ञान कराने के लिए अस्तित्व आदि शब्दों का प्रयोग करना आवश्यक है। अन्य आचार्यों ने भी ऐसा ही काह है कि स्यात् शब्द से सामान्य अनेकान्त का बोध हो गया, पर इतने मात्र से उस वस्तु के सम्बन्ध में कोई दिशा ज्ञात नहीं हुई। किस तरह का अनेकान्त स्वरूप है यह ज्ञान न हो सका तब इन भंगों में अन्य शब्दों का जो प्रयोग किया है। वह विशेष ज्ञान के लिए किया जाता है स्यात् इतने ही मात्र से काम नहीं चलता। क्या है ? ऐसा बताने के लिए कुछ विशेष शब्दों का प्रयोग करना अत्यन्त आवश्यक है। तब सामान्यतया अनेकान्त का बोध और विशेषतया अनेकान्त का दिग्दर्शन कराने के लिए भंगों में प्रथम भंग स्याद अस्ति एव घटः यह पूर्णतया उपयुक्त होता है, जैसे यह कहा कि वृक्ष वट है तो इस उदाहरण में वृक्षपना इस तरह सामान्य रूप से कहने पर वट का बोध भी हो सकता है तो भी वह इस विशेष रूप से जो कहा गया है वह वट का बोध कराने के लिए कहा गया है। और, स्यात् शब्द के द्योतकपने में अस्ति आदिक शब्द का करना, बोलना वाक्य में न्याय से प्राप्त है क्योंकि अस्ति आदि शब्दों से कहा गया अनेकान्तरूप अर्थ स्यात् शब्द से घोषित होता है।

भंगों में स्यात् शब्द की उपर्योंगिता—देखिये ! वाचकपना व द्योतकपना दोनों पक्ष अव्यय निपातों में शास्त्रसम्मत है। यहाँ इस बात का स्पष्ट किया गया है कि इन भंगों के प्रयोग में कुछ एक शब्द बोलने पर ही पूरी बात ध्वनित हो जाती है तथापि जितना समझना है, जो-जो दृष्टियां

है उन सबका ग्रहण करने के लिये सभी शब्दों का प्रयोग करना आवश्यक है। निपात शब्द घोतक और वाचक दोनों होते हैं। कोई निपात शब्द केवल घोतक होते हैं—जैसे च एव ये शब्द घोतक ही है और एवं स्यात् आदिक शब्द घोतक भी है और वाचक भी। जो केवल घोतक है उससे मतलब तो यह है कि उन शब्दों ने अपना अर्थ कुछ नहीं कहा केवल किसी दूसरे अर्थ का समर्थन किया है शब्द वाचक हुआ इसका यह है कि वह शब्द अपना अर्थ भी रखता है यहाँ स्यात् शब्द का यदि प्रयोग न किया जाय तो अनेकान्त रूप अर्थ का ज्ञान एकान्त पक्ष की व्यावृत्ति पूर्वक ही होती है। यदि एकान्त पक्ष हटा दिया जाय तभी तो अनेकान्तरूप का अर्थ का ज्ञान होगा। एकान्त पक्ष हटाने का सूचक है स्यात् शब्द। स्यात् अस्ति एव, इसमें यदि स्यात् का प्रयोग न हो तो अनेकान्त रूप अर्थ का ज्ञान नहीं हो सकता जैसे कि एव शब्द का प्रयोग न हो तो विवक्षित अर्थ का निश्चय रूप ज्ञान नहीं हो सकता है। यों प्रथम भंग में जितने शब्द बोले गए हैं सभी शब्द उपयोगी हैं। स्यात् अस्ति एव घटः यहाँ चार शब्दों का प्रयोग है। घटः कहने से तो मूल आधार मालूम हुआ कि किस पदार्थ के सम्बन्ध में बात की जा रही है। अस्ति कहने से धर्म का बोध हुआ कि किस धर्म को प्रधान बनाकर यहाँ अनेकान्त कहा जा रहा है? स्यात् कहने से अपेक्षा दृष्टि लग गई है कि यह बात किसी अपेक्षा से है, सर्वथा नहीं बनता। अस्ति। उसकी निवृत्ति एक स्यात् शब्द से है और एवं शब्द अवधारण के लिए है, कि इस अपेक्षा से ऐसा ही है।

स्यात् शब्द की स्याद्वाद न्याय में आवश्यकता—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि देखिये ! सब स्थानों में एव का शब्द के प्रयोग बिना भी जैसे अवधारण अर्थ का बोध हो जाता है उसको बोध कराने वाले एव शब्द का बोध शब्द की शक्ति में हो जाता है। मतलब यह है कि जैसे एव में निश्चय करने के लिए अन्य एव की जरूरत नहीं रहती है और शब्द की शक्ति से ही अवधारणरूप अर्थ निकल आता है ऐसे ही यदि इस वाक्य में स्यात् शब्द का प्रयोग न किया जाय तो भी वस्तु अनेकान्तरूप है ऐसे अर्थ का ज्ञान कराने की शक्ति होने से अनेकान्तरूप अर्थ का बोध स्वयं हो जायगा। याने इस तरह के पूरे सजे हुए वाक्यों में प्रयोग न किया जाय अथवा एक किसी भी शब्द का संकेत करके कहा जाय तो सर्व अनेकान्त अर्थ का बोध हो ही जायेगा। इसलिए यह शब्द आवश्यक उपयुक्त नहीं है। इसके समाधान में कहते हैं कि यद्यपि किसी हद तक ऐसा भी कुछ कहना ठीक हो सकता है किन्हीं ऊँचे ज्ञानी पुरुषों के प्रति कि वे किसी भी एक शब्द को सुनकर सब अर्थों का बोध कर लें यों तो श्रुतज्ञान में बड़े-बड़े ऋद्धिधारी योगी ऐसे होते हैं कि किसी भी प्रकरण का कोई भी शब्द सुनकर पूर्वा पर सभी प्रसंगों का ज्ञान कर लेते हैं, लेकिन स्याद्वाद न्याय में शिष्यों की प्रवीणता न हो तो केवल वस्तु के सामर्थ्य मात्र से

अनेकान्त रूप अर्थ का भान न होगा। यों तो कोई पुरुष शब्द जरा भी न बोलें, अर्थ ही निहारे तो पदार्थ को देखते ही अनेकान्त का बोध कर लेंगे पर जहां समझाने की बात है और स्याद्वाद न्याय से समझाया जाने का प्रकरण है वहाँ तो पूरी सजावट पूर्वा पर उपयोगी शब्द के संयोजन में ही बोला जायगा। उन अकुशल शिष्यों को अनेकान्त रूप अर्थ का बोध कराने के लिये वाक्य में स्यात् शब्द कहना अत्यावश्यक है। और शिष्यों की यदि स्याद्वाद में कुशलता पूर्णतया है तो स्यात् शब्द का प्रयोग करना इष्ट ही है। जब प्रमाणादिक से समस्त वस्तु अनेकान्तमय सिद्ध हो जाती है तब स्याद्वाद में जो प्रवीण हो गये हैं ऐसे मनुष्यों को अस्ति घटः ऐसा प्रयोग किया जाय तो वे भी इतने मात्र से यह बोध कर लेंगे कि कथंचित् घट है क्योंकि उन्हें पता है। जिन्हें वस्तुस्वरूप का पूरा परिचय है वे तो वस्तुबोधक वचनों में कोई भी वचन सुन लें तो समग्र वस्तु का ज्ञान कर लेंगे, किन्तु जो स्याद्वाद में कुशल नहीं हैं ऐसे पुरुषों को तो पूरे शब्दों का प्रयोग करने से ही समझाया जा सकेगा। अतएव स्याद अस्ति एव घटः इतने शब्दों का प्रथम भंग में प्रयोग करना आवश्यक है। अन्य तंत्रों में भी ऐसा कहा है कि यदि स्याद शब्द न भी बोला जाये तो भी अनेकान्त के मर्म को जानने वाला पुरुष अर्थ से ही, सामर्थ्य से ही अनेकान्तरूप अर्थ जान लेते हैं। जैसे एव शब्द अयोग आदिक के निराकरण के लिये कहा गया है, अन्य की निवृत्ति करने के लिये एव शब्द का प्रयोग है, लेकिन कुशलजन एव शब्द के बिना भी अवधारण कर लेते हैं। तो एक साधारण पद्धति में प्रयोग इस प्रकार का ही किया जाना चाहिये कि कुशल अकुशल सभी पुरुषों के लिये उपयोगी हो।

स्यात् शब्द के प्रयोग की व्यर्थता की शंका—अब यहां शंकाकार कहता है कि देखिये ! जो घट आदिक पदार्थ है वे सब अपने आधीन द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव के ही हैं न कि अन्य पदार्थ के आधीन द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से हैं। क्योंकि अन्य द्रव्य, क्षेत्र काल आदिक को तो प्रसंग ही नहीं इसलिए अन्य का अभाव तो स्वयं सिद्ध है। तब इस स्थिति में स्यात् शब्द का प्रयोग करना व्यर्थ है। इस शंका का अभिप्राय यह है कि जैसे यहां गया अस्तिघटः तो इतना ही सुनने मात्र से यह समझ में आ गया कि घट, घट में रहने वाले द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से हैं। यह घड़ा अपने ही द्रव्य से है। जो उसमें मौजूद है, जिसमें वजन है। जिसमें रूपादिक है। उस अपने स्वरूप से है। घड़ा अपने प्रदेश से है, अपने परिणमन से है, अपनी भाव शक्ति से है। तो अस्ति घटः इतना कहने मात्र से ही बोध हो गया कि घट अपने स्वरूप से है। बस यहीं जानना था। अब घट पट आदिक के रूप में नहीं है। ऐसा कहने का प्रसंग ही क्या? जो बात वहां पायी गयी उसको समझ लिया अथवा उसे समझाते हीं वह अपने आप सिद्ध हो गया कि घड़ा कपड़ा आदिक के द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव से नहीं है। तो अस्तिघटः इतना कहने मात्र से समस्त

अनेकान्त का बोध हो जाता है। फिर स्यात् शब्द कहने की आवश्यकता ही क्या है? अथवा शंका का दूसरा पक्ष है कि जितने द्योतक शब्द होते हैं। वे किसी शब्द से प्रतिपादित अर्थ के सम्बन्ध में ही कुछ कहते हैं। तो यहां स्यात् शब्द जब द्योतक है तो वह चौज बताओ जो चौज कह चुके हो और फिर उसके सम्बन्ध में कुछ समर्थन सा किया जा रहा हो। तो यहां यह बताना होगा कि यह स्यात् शब्द किस शब्द से प्रतिपादित अर्थ को प्रकाशित करता है?

स्यात् शब्द की अव्यर्थता का व स्यात् शब्द से द्योतित अर्थ का वर्णन—उक्त शंका के समाधान में कहते हैं कि अस्ति एव घटः अपने द्रव्य क्षेत्र आदिक की विवक्षा से घट है ही आदिक वाक्य से द्रव्यत्व अर्थ के आश्रय से अभेद वृत्ति से और पर्याय अर्थ के आश्रय से अभेद के उपचार से जो अनेकान्त स्वरूप अर्थ प्रतिपादित हआ है वही स्यात् शब्द में प्रकाशित हुआ है। प्रथम भंग में अभेद उपचार से कथन किया गया है। द्रव्यरूप से घट की सब दिशाओं में अभेद वृत्ति है। यद्यपि परस्पर में अनेक घटों में भेद हैं लेकिन घटत्व की अपेक्षा से एकत्व है, अतएव सर्वप्रकार के घटों में अभेद का उपचार है। तो अस्तिएव घटः यह है प्रधान शब्द। जो अपने अर्थ का निरूपण करता है, इस वाक्य से ही अनेकान्त अर्थ कथित हो जाता है। उसी अर्थ को स्यात् शब्द से प्रकाशित किया है। चूंकि स्यात् शब्द निपात है अतएव वह प्रधान अर्थ बताना ही होता है जिसके बारे में स्यात् निपात शब्द कुछ विशेषता कर देता है। सकलादेश अर्थात् प्रमाणरूप सप्तभंगी अनेक दृष्टियों से प्रतिपादित अर्थ को अभेदरूप दृष्टि करके बताता है और पर्यायरूप अर्थ से अभेद का उपचार करता है, क्योंकि एक ही समय में पदार्थ में प्रसंग प्राप्त घट में सत्त्व असत्त्वादिक समस्त धर्म स्वरूप है। उनका प्रतिपादन हो रहा है, इसीलिए सकलादेश प्रमाणरूप है। तो जो अभेद की प्रधानता से वर्णन करे उसे कहते हैं सकलादेश। वही कहलाता है प्रमाण सप्तभंगी। और जो भेद की प्रधानता से वर्णन करे वह कहलाता है विकलादेश। वह है नय रूप सप्तभंगी। नयरूप सप्तभंगी क्रम से भेद की प्रधानता का प्रतिपादन करता है अथवा भेद के उपचार का प्रतिपादन करता है। यों विकलादेश नयरूप है। जहां कथन में अभेद की और झुकाव है वहां प्रमाणरूपता है। जहां भेद की और दृष्टि है वहां नयरूपता है।

नयसप्तभंगी व प्रमाणसप्तभंगी के प्रयोजनभूत क्रम व यौगपद्य का स्वरूप—इस समय प्रमाण सप्तभंगी और नयसप्तभंगी के रहस्य को समझने के लिये अब यह जानना आवश्यक हो गया कि वह तत्त्व कौन है जिसका क्रम से प्रतिपादन होने से नयसप्तभंगी होती है। और, जिसका अक्रम से अभेद का ज्ञान करने पर प्रमाण सप्तभंगी बनता है? इस विषय को समझने के लिये पहिले यह ही जान लेना चाहिए कि क्रम मायने क्या है और यौगपद्य मायने क्या है? तो इसका लक्षण

सुनो ! जब अस्तित्व नास्तित्व आदिक धर्मों के देशकाल आदिक के भेद से कथन करने की इच्छा होती है तब अस्तित्व आदिक रूप एक ही शब्द के नास्तित्व आदिक रूप अनेक धर्मों के परिचय कराने में शक्ति नहीं होती। तब नियत जो भाव है, पूर्वा पर कहने योग्य जो तत्त्व है उसका अनुक्रम से निरूपण होता है उसका नाम क्रम है और जब अस्तित्व आदिक धर्मों का काल आदिक में अभेद किया जाता है तब किसी एक भंग का अस्तित्व आदिक शब्द से उपलक्षण से अनेक धर्मों का भी बोध हो जाता है इसलिए प्रमाण में, सकलादेश में नाना धर्म एक समय में सम्भव है। इस ढंग से जो वस्तु का निरूपण है ? उसे यौगपद्य कहते हैं।

काल के द्वारा नाना गुणों की अभेदवृत्ति—वे काल आदिक क्या है सो सुनो। जिसके अभेद का प्रतिपादन करने में प्रमाण सप्तभंगी होता है और जिसके भेद का प्रतिपादन करने में नया सप्तभंगी होता है। वे काल आदिक शब्द ये हैं। काल—इसमें रूप, अर्थ, सम्बन्ध उपकार, गुण, दोष, संसर्ग और शब्द। जैसे काल से अभेदवृत्ति बताना है तो उसका तात्पर्य यह है कि जब प्रथम भंग बोला गया स्याद् अस्ति एव घटः अर्थात् घट इस अपेक्षा से है ही। तो यहां जिस-जिस काल से सहित होकर घट में अस्तित्व बताया जा रहा है उस ही काल से सहित होकर शेष अनन्त धर्म भी घट में है जब घट स्वरूप से है उस ही काल में तो घट पररूप से नहीं है। तो स्वरूप से अस्तित्व जिस काल में है उस ही काल में परस्वरूप से अस्तित्व का अभाव है अथवा पररूप से नास्तित्व है। तो विरुद्ध लक्षण वाले धर्मों में भी एक ही काल में एक ही वस्तु में वर्तना यह तो पदार्थ में देखा ही जा रहा है। धर्मों का स्वरूप है विलक्षण, एक दूसरे से विसद्वश लेकिन एक धर्मों में वे दोनों रह सकते हैं। यही अनेकान्तात्मकता का रहस्य है। घटरूप से है यह स्वरूपास्तित्व धर्म घट में है और उस ही काल में घट अघटरूप से नहीं है, तो अघट का नास्तित्व भी उसी समय मौजूद है यों एक काल में समस्त धर्मों का अभेद करके कथन करने का नाम है काल की अभेद वृत्ति से भंग का प्रतिपादन करना। यह प्रमाण सप्तभंगी में कला है कि एक ही साथ एक भंग बोलने पर भी सब भंगों का सब धर्मों का रहस्य बोध में रहता है और यह सब कृपा है स्याद् शब्द की। स्याद् शब्द की उपकारिता कितनी विशाल है, कैसी एक करेन्ट है कि स्यात् शब्द दृष्टि में आते ही प्रतिपादित धर्म और उसके सिवाय अशेष समस्त धर्म भी एक अधिकरण में देख लिए जाते हैं। यही कहलाता है काल से अभेदवृत्ति। यों अभेद वृत्ति की पद्धति से जब अस्ति घटः निरखा जा रहा है तो यह प्रमाण सप्तभंगी का प्रथम भंग होता है। तो काल आदिक ८ विभागों का यह वर्णन चलता जा रहा है। जिसके भेद से नया सप्तभंगी बनती है। और जिसकी अभेद करके प्रतिपादन करने से प्रमाण सप्तभंगी बनता है उसमें काल से अभेद वृत्ति रूप प्रमाण सप्तभंगी के एक अंग का वर्णन किया। अब इसमें आत्मरूप का अभेद बतायेंगे।

आत्मरूप से नाना गुणों की अभेदवृत्ति—अनन्त गुणों की आत्मरूप से अभेद वृत्ति कैसे है? इसका अब वर्णन करते हैं। देखिये ! एक घट का उदाहरण लेकर कि अस्तित्व का जो ही घट गुणपना स्वरूप है वह ही याने घट गुणपना ही अन्य संगत अनन्त गुणों का स्वरूप है। इस प्रसार से एक स्वरूप ही तो हुआ। घट के जिस किसी भी गुण का घटगुणत्व स्वरूप है जीव के जिस किसी भी गुण का जीवगुणत्व स्वरूप है। यों सभी गुणों का एक स्वरूप है। यों आत्म रूप के द्वारा नाना गुणों में अभेदवृत्ति सिद्ध होती है। द्रव्यार्थिकनय की प्रधानता से निरखने पर प्रयोजनवश विदित कराये गये अनेक गुणों का एक स्वरूप में अभेद है। यों नाना गुणों की आत्मरूप से अभेदवृत्ति प्रसिद्ध हुई जिससे सकलादेश बना और इसी से प्रमाणसप्तभंगी प्रसिद्ध हुई।

अर्थ के द्वार से नाना गुणों की अभेद वृत्ति—अभी तक काल से व आत्मरूप से अभेदवृत्ति का कथन किया गया कि जिस काल में अस्तित्व धर्म है उसी काल में शेष अनन्त धर्म भी घट में है और एक गुण जिस आत्मरूप से है उसी आत्मरूप से सब गुण है। इस तरह के परिचय को प्रमाण सप्तभंगी का रूप दिया है। अब अर्थ से अभेदवृत्ति कैसे होती है इस प्रश्न का उत्तर दिया जा रहा। जहां यह पूछा था कि अभेदोपचार और अभेदवृत्ति कहते किसे है जिसके कारण सकलादेश बनता है और प्रमाण सप्तभंगी निष्पत्त होता है? अर्थ के द्वारा अभेद वृत्ति का मतलब है एक आधार में धर्मों का रहना जैसे कि अस्तित्व का आधार जो ही घटद्रव्यरूप पदार्थ है वही घटद्रव्यरूप पदार्थ घट के अन्य धर्मों का भी आधार है। जैसे स्वरूप से अस्तित्व घट में रहता है तो पररूप से नास्तित्व भी घट में है। जैसे स्वरूप से अस्तित्व घट में रहता है। तो पररूप से नास्तित्व भी घट में है। अथवा अन्य-अन्य प्रकार के धर्म भी घट में मौजूद हैं। यों एक आधार में समस्त धर्मों के रहने को अर्थ से अभेद वृत्ति कहते हैं।

सम्बन्ध के द्वार से नाना गुणों की अभेदवृत्ति—अब सम्बन्ध से अभेद वृत्ति का अर्थ क्या है? जैसे जो भी प्रथकरूप कथंचित् तादात्म्यरूप अस्तित्व का सम्बन्ध है—जैसे घटः अस्ति तो घट में अस्तित्व का सम्बन्ध कथंचित् तादात्म्यरूप से ही तो है उसे भिन्न नहीं किया जा सकता कि घट अस्तित्व शून्य हो और अस्तित्व घट से परे हो। तो जो ही अस्तित्व का संबंध है वही संबंध अनंत धर्मों का भी है। तो एक सम्बन्ध के सहयोगी होना, एक प्रकार के सम्बन्ध वाले होना इनका नाम है सम्बन्ध से अभेदवृत्ति का होना। तो चूंकि सम्बन्ध से अभेद वृत्ति पायी जाती है, स्यात् अस्तिएवघटः तो इस अभेद वृत्ति की पद्धति से इन भंगों का प्रयोग करना सकलादेश है।

उपकार से नाना गुणों की अभेदवृत्ति—अब उपकार की अपेक्षा से अभेद वृत्ति किस तरह है ? तो वस्तु में जो धर्म पाये जाते, देखे जाते, कहे जाते हैं तो इन धर्मों का उपकार क्या है ? उनका उपकार सीधा यह है कि एक तो आने आधार का स्वरूप बनाये रहना। दूसरी बात—अपने आधार को जाहिर कर देना। जैसे कि घटः अस्ति, ऐसा कहने पर घट में जो अस्तित्व धर्म है उसका उपकार क्या है कि अपने से अनुरक्तपना कर देना अर्थात् अपने पदार्थ में कुछ विशिष्टता का सम्पादन कर देना। घट है तो है, इस धर्म ने यह बता दिया कि घट सत्ता सहित है। घट वर्तमान में मौजूद है, तो धर्म अपने विशेष्य को प्रकाशित करता है, यही धर्म का उपकार है। तो जैसे नील, लाल आदिक गुणों का उपकार क्या है ? कोई पदार्थ नील है तो उस नीलत्व का उपकार क्या है कि पदार्थ को नीलरूप से उपरक्त कर देना और जाहिर कर देना—मैं नीलत्व हूं और यह पदार्थ नील है तो नीलपना, रक्तपना आदिक गुणों से सहित बना देना यही नील रक्तादिक गुणों का उपकार है। अस्तित्व का उपकार क्या है? पदार्थ को अपने में से अनुरक्त कर देना अर्थात् अस्तित्व के उपकार से घट विशेष का ज्ञान उत्पन्न कर देना। घट है तो है ने क्या उपकार किया कि घट की बात बना दी। घट का अस्तित्व सिद्ध कर दिया। तो यह अस्तित्व धर्म का उपकार है। तो जैसे अस्तित्व धर्म का घट के प्रति कुछ उपकार है ऐसे ही उपकार नास्तित्व आदिक धर्मों का भी है। घट-घट है, घट का प्रकाश जैसे अस्तित्व धर्म ने कर दिया ऐसे ही घट का अस्तित्व प्रकाशित हुआ। इसी तरह अन्य अशेष धर्मों के द्वारा भी घट का उपकार किया गया है। यों उपकार के द्वारा अभेदवृत्ति होती है जिस कारण जिस पद्धति से इन ७ भंगों का प्रयोग, प्रमाण सप्तभंगी रूप में बनता है।

गुणीदेश से नाना गुणों की अभेदवृत्ति—अब गुणी देश की अपेक्षा से अभेदवृत्ति किस प्रकार है? इसका स्वरूप सुनो ! जिस देश करके सहित रूप से घट आदिक पदार्थ में अस्तित्व है उस ही देश में सहित रूप से घट में नास्तित्व आदिक धर्म है। जैसे- स्यादस्ति घटः घट स्वरूप से है तो घट के अणु-अणु घट के वर्तमान देश अपने स्वरूप से है ना, और घट में नास्तित्व आदिक धर्म भी घट के पूरे देश में है। कहीं ऐसा नहीं है कि घट में अस्तित्व धर्म अर्थात् कहीं ऊपर मुख आदिक पर पाया जाता हो और नास्तित्व धर्म नीचे या अन्य और पाया जाता हो। गुणी के जिस देश में एक धर्म है उस ही देश में गुणी के अन्य धर्म भी है। जैसे ज्ञानगुण आत्मा के प्रदेश में है तो जिन प्रदेशों में याने आत्मा के समस्त प्रदेशों में ज्ञानगुण है तो उन्हीं समस्त प्रदेशों में दर्शन, चारित्र, आनन्द आदिक गुण भी है। कहीं ऐसा नहीं है कि आत्मा में कुछ हिस्से तक ज्ञानगुण हो, उसके बाद कुछ हिस्से तक आनन्द गुण हो, ऐसी बात स्वरूप में नहीं है। तो गुणों के जिस देश में तन्मय होकर अस्तित्व रह रहा है उसी देश में तन्मय होकर नास्तित्व आदिक धर्म भी है

अर्थात् देशभेद उनके नहीं है कि कण्ठ के प्रदेश में अस्तित्व हो और पीठ के प्रदेश में नास्तित्व हो यही है एक देश में रह रहकर अपना अस्तित्व रखना अथवा एक देश से सहित रूप रहना, यह है गुणी देश की अपेक्षा अभेदवृत्ति। जब कहा—स्याद् अस्ति घटः तो ऐसा कहते ही जैसे यह ज्ञान हुआ कि नास्तित्व मायने पर रूप से नास्तित्व घट के सब प्रदेशों में हे। अन्य गुण भी घट के सब देशों में हैं। यों अभेदवृत्ति से जब इन भंगों को बताया गया है तब वह सकलादेश कहलाता है और उससे प्रमाण सप्तभंगी होती है।

संसर्ग की अपेक्षा नाना गुणों की अभेदवृत्ति—अब संसर्ग की अपेक्षा से अभेद वृत्ति किस तरह होती है? जो ही एक वस्त्वात्मक रूप से अस्तित्व का संसर्ग है, मायने एक घट है एक वस्तुरूप से अस्तित्व का संसर्ग है तो वही संसर्ग अन्य धर्मों का भी है। इस तरह एक संसर्ग की प्रतियोगिता होना, एक संसर्ग होना समस्त धर्मों का यही संसर्ग से अभेद वृत्ति कहलाती है। यहां एक जिज्ञासा हो सकती है कि सम्बन्ध और संसर्ग में अन्तर क्या है? सो सुनो ! कथंचित् तादात्म्य लक्षण वाले सम्बन्ध में तो अभेद प्रधान है औद भेद गौण है अर्थात् जहां सम्बन्ध शब्द से कहा जाया वहां कथंचित् तादात्म्य दृष्टि से आता है और जहां संसर्ग कहा जाय वहां अभेद गौण है और भेद प्रधान है याने भिन्न बात की दृष्टि रख करके सम्बन्ध बताया जाय तो उसे संसर्ग शब्द से कहना चाहिए। वहां कथंचित् तादात्म्य अर्थ यह है कि कथंचित् भेदरूप है, कथंचित् अभेदरूप है। कथंचित् उभयरूप है तो उसे कहना चाहिए कि जहां भेद विशिष्ट अभेद सम्बन्ध हो उसे कथंचित् तादात्म्य कहते हैं। अब यहां अभेद की प्रधानता हो गयी ओर भेद गौण हो गया। भेद सहित अभेद कहा ना, तो जिसको सहित में लिया है वह तो हो गया गौण और जिसका मुख्यता नाम लिया है वह हो गया प्रधान। जैसे कोई कहे कि देवदत्त बच्चों सहित आये, तो इसमें प्रधानता किसकी रही ? देवदत्त की ? और जहां सहित लगाया गया तो उसकी प्रधानता न रही। तो सम्बन्ध में भेद विशिष्ट अभेद रहता है ओर संसर्ग में अभेद विशिष्ट भेद रहता है। अर्थात् संसर्ग में प्रधानता भेद की है। और वह अभेद से विशिष्ट रहता है। उसी अभेद वृत्ति के कथन में अब तक काल, आत्मा, रूप अर्थ, सम्बन्ध, उपकार गुणी, दोष और संसर्ग की अपेक्षा से वर्णन किया।

शब्द की अपेक्षा नाना गुणों की अभेदवृत्ति—अब शब्द की अपेक्षा से अभेदवृत्ति किस तरह होती है इसका कथन करते हैं। जैसे अस्ति शब्द अस्तित्व धर्म स्वरूप घट आदिक वस्तु का प्रतिपादक है वैसे ही सब शब्द वाच्यपने रूप से उन सब धर्मों से अवच्छिन्न घटादि के वाचक हैं। सो शब्दों की घट आदिक पदार्थों में अभेद वृत्ति सूचित होती है। जैसे अस्ति कहा तो अस्ति शब्द

से वस्तु ही तो कहा गया। इसी प्रकार अन्य धर्म भी उसमें बोले जायेंगे। तो उन शब्दों से वही पदार्थ ही तो कहा गया। एक शब्द की दृष्टि से अभेद वृत्ति कह रहे हैं। घट में अस्तित्व नास्तित्व आदिक अनेक धर्म हैं। उन सब धर्मों का घट में अभेद वृत्ति किस स्वरूप से है ? तो अन्य चीजें बताकर अन्त में यह बता रहे हैं कि शब्द के माध्यम से भी अभेद वृत्ति है अन्य धर्मों के प्रयुक्त धर्म के साथ। सकलादेश में यह बताया जा रहा है कि हम कोई एक बात तो बोल रहे हैं पर हमारे अभिप्राय में अन्य धर्मों का भी परिचय बना हुआ है। इस पद्धति से इन भंगों के बोलने को सकलादेश कहते हैं। तो घटः अस्ति, यहां अस्ति शब्द कह करके कौन सूचित हुआ ? घट ! क्या कहा गया ? घट तो अन्य-अन्य धर्मों की भी बात यदि कहीं जाय तो उन शब्दों से भी क्या कहा जायगा ? घट ! तो यों शब्द की दृष्टि से घट में अभेद वृत्ति है।

द्रव्यार्थिकनय की प्रधानता में कालादिक की अपेक्षा से गुणों की अभेदवृत्ति के वर्णन का उपसंहार—कालादिक प्रकारों से यह सिद्ध कर दिया गया कि जब पर्यार्थिकनय को गौण कर देते हैं और द्रव्यार्थिकनय को प्रधान करते हैं तो काल, आत्मा, स्वरूप आदिक ८ प्रकार से घट में सब धर्मों के अभेद से स्थिति रहती है जिस धर्म को बताया जा रहा हो जैसे उस धर्म की अभेदरूप से वृत्ति है उस पदार्थ में, उसी प्रकार से अन्य समस्त धर्मों की भी अभेद रूप से वृत्ति है और वह अभेद वृत्ति ८ प्रकार से समझाई गई है। तो यों अभेद वृत्ति होने से अथवा अभेद उपचार होने से सकलादेश का स्वरूप बनता है। यदि द्रव्यार्थिकनय को गौण कर दिया जाय और पर्यार्थिकनय को प्रधान कर दिया जाय तो गुणों की अभेदवृत्ति सम्भव नहीं हो सकती। एक ही पदार्थ में अन्य अशेष धर्म भी अभेद रूप में रहते हैं, यह जब दृष्टि में है तो सकलादेश बनता है और यह बात तभी सम्भव है जब द्रव्यार्थिकनय तो प्रधान बने और पर्यार्थिकनय गौण बने। क्योंकि पर्यार्थिकनय तो देखता है भेद को। एक-एक पर्याय को विषय करता है पर्यार्थिकनय। अब उन पर्यायों को भेदरूप से देखा जाय तो अभेद वृत्ति कहा से बनी ? उन सब पर्यायों का आधारभूत सामान्यतत्व एक है यह बात दृष्टि में आये तब अभेद वृत्ति बनती है। सो इसी दृष्टि को समझने के लिये काल आदिक ८ प्रकारों से गुणों की अभेद वृत्ति बतायी गई है। यहां यह प्रकरण चल रहा है कि प्रमाण सप्तभंगी और नय सप्तभंगी का स्वरूप क्या है ? यह बात भंग के प्रयोग से नहीं समझी जा सकती। क्योंकि भंगों का प्रयोग दोनों सप्तभंगियों में एक समान है। यह अन्तर तो वक्ता श्रोता के अभिप्राय से बनता है। एक धर्म को कहकर सुनकर भी अन्य समस्त धर्मों का परिचय लिए रहना यह आशय जब रहता है तब तो वहां प्रमाण सप्तभंगी बनता है और जब जिस धर्म को कहा गया उस ही धर्म का परिचय हो रहा है। यद्यपि विरोध नहीं है अन्य धर्मों का मगर अभेद पद्धति का लगाव नहीं बन रहो, तब वहाँ नय सप्तभंगी बनता है।

पर्यायार्थिकनय की प्रधानता में उन आठों ही प्रकारों में अभेद वृत्ति सम्भव नहीं है। फिर भी स्यात् शब्द के प्रताप से उनका अभेदोपचार हो जाता है।

पर्यायार्थिकनय की प्रधानता में कालापेक्षया नाना गुणों में परस्पर भेद—अब यह बताते हैं कि कालादि की अपेक्षा से नाना गुणों की वृत्ति कैसे असम्भव है? काल की अपेक्षा से एक ही काल में नाना गुण परस्पर जो कि विरुद्ध है उनका रहना असम्भव है। इस पर्यायार्थिक नय की दृष्टि की और प्रत्येक गुण से उन-उनके पृथक्-पृथक् स्वरूप में देखो तो वे सारे गुण तो परस्पर विरुद्ध हैं। पर्यायार्थिकनय की दृष्टि है नहीं, इसलिए उनका एक जगह रहना देखने का कोई उपाय नहीं। तब परस्पर विरुद्ध उन गुणों को एक जगह होना असम्भव है। अतएव पर्यायार्थिकनय की दृष्टि में उतने काल की अपेक्षा अभेद नहीं हो सकता और यदि काल की अपेक्षा परस्पर विरुद्ध नाना गुणों का भी पर्यायार्थिकनय की दृष्टि में अभेद मान लिया जाय तो जितने गुण है उतने ही आश्रय में भेद पड़ जायेंगे, क्योंकि पर्यायार्थिकनय भेद को निरखता है और भेद वाले गुणों का जो आश्रय हो वह भी भेदरूप ही होगा। यों काल की अपेक्षा से उन नाना गुणों में अभेद वृत्ति सम्भव नहीं हो सकती।

पर्यायार्थिकनय की प्रधानता में आत्मरूपपेक्षया व अर्थपेक्षया गुणों में भेद—अब पर्यायार्थिकनय की प्रधानता में आत्मरूप से भी उन नाना रूपों की अभेदवृत्ति नहीं बन सकती। यह बतलाओ कि चूंकि वे समस्त अपने-अपने भिन्न स्वरूप को रख रहे हैं। जैसे आत्मा में ज्ञानगुण, दर्शनगुण, आनन्दगुण आदिक जितने भी गुण है उन सब गुणों का स्वरूप अपना-अपना जुदा-जुदा है। अब प्रधानता की पर्यायार्थिक नय की तो उसमें भिन्न-भिन्न स्वरूप वाले भी नाना गुण ही दिखें। ऐसे भिन्न स्वरूप वाले नाना गुणों की एक रूप से अभेदवृत्ति नहीं बन सकती। और, अगर ऐसे भिन्न-भिन्न स्वरूप रखने वाले नाना गुणों को भी स्वरूप से अभेद कर दिया जाय तब फिर उन गुणों में परस्पर भेद न रहा। फिर तो पर्यायार्थिकनय की दृष्टि ही न रही। यों स्वरूप की अपेक्षा से भी उन परस्पर भिन्न स्वरूप रखने वाले नाना गुणों के स्वरूप से अभेद वृत्ति नहीं बनती। अब अर्थ की दृष्टि से भी अभेदवृत्ति नहीं बनती इसे समझिये, जब हम उन नाना गुणों के स्वरूप सर्वस्व को निरखते हैं तो वे गुण किसमें हैं? ऐसा कहने पर यही समझ आयेगा कि वे गुण अपने-अपने स्वरूप में हैं। तो यों उन गुणों का आश्रयभूत जो अर्थ है वह भी नाना बन गया अर्थात् उन नाना गुणों की अर्थ से यदि अभेदवृत्ति कर दी जाय, अर्थ को एक मान लिया जाय तो यह स्पष्ट विरोध आता है। नाना गुणों का आश्रय हो और फिर वह एक हो, यह पर्यायार्थिकनय की दृष्टि में नहीं बन सकता। द्रव्यार्थिक नय की प्रधानता में नाना गुणों का

आश्रयभूत एक द्रव्य है, ऐसी अभेद वृत्ति बनती है। सो वह द्रव्यार्थिकनय के प्रकरण में बता ही दिया गया है। अब यहाँ पर्यायार्थिकनय से तो बात कर रहे हैं जो कि भिन्न-भिन्न स्वरूप से निरखते हैं और फिर उस दृष्टि में यह कहा जाय कि इन नाना गुणों का आश्रय भूत कोई एक पदार्थ है यह सम्भव नहीं है।

पर्यायार्थिकनय ही प्रधानता में सम्बन्ध व उपकार की अपेक्षा से गुणों में परस्पर भेद—अब सम्बन्ध की अपेक्षा से भी उन नाना गुणों में अभेद वृत्ति नहीं है यह कहते हैं। सम्बन्ध भी सम्बन्धी के भेद से भिन्न-भिन्न रूप समझना चाहिए। जैसे डंडा और देवदत्त का सम्बन्ध यह एक बात। छाता और देवदत्त का सम्बन्ध यह एक बात। यदि डंडा और देवदत्त का सम्बन्ध और छाता देवदत्त का सम्बन्ध अभेद हो जाय तब तो जो छाता से काम निकलता है पानी बरसने में छाता काम देता है क्या वह काम डंडा भी दे देगा ? क्योंकि तुमने सम्बन्ध एक मान लिया ना, किन्तु ऐसा तो नहीं है। पर्यायार्थिकनय की प्रधानता में जितने सम्बन्धों के भेद है उतने ही सम्बन्ध के भेद है। तो जब सम्बन्ध दृष्टि से पर्यायार्थिकनय के भेद ही रहे तो उन नाना गुणों की अभेदवृत्ति नहीं बन सकती है। अब उपकार की दृष्टि से इन नाना गुणों में अभेद सम्भव नहीं है। बात कह रहे हैं पर्यायार्थिकनय की दृष्टि से। यहाँ नाना गुण निरखे जा रहे हैं। जब प्रत्येक गुणों के द्वारा किया गया उपकार अपना-अपना स्वरूप लिए हुए हैं तब अनेक गुणों के द्वारा किया गया जो उपकार है वह जब अपने-अपने प्रतिनियत स्वरूप रख रहे हैं तो वे उपकार भी अनेक हो गए, और अनेक उपकारियों के द्वारा किया गया उपकार कभी हो ही नहीं सकता। भेद दृष्टि में निरखा जा रहा है। तो जैसे आत्मा में ज्ञान गुण का उपकार क्या है? उपकार के मायने कार्य ! तो जो ज्ञान का कार्य है वह भिन्न है और जो आनंद का कार्य है वह भिन्न है, अन्यथा ये नाना गुण न रहेंगे। तो नाना गुणों के द्वारा जो उपकार बना है वह उपकार एक नहीं हो सकता। द्रव्यार्थिकनय की प्रधानता में उपकार एक माना गया था और उस उपकार का स्वरूप यह था कि प्रत्येक गुण अपने आधार का प्रकाश किया करता है। तो अपने आधारभूत पदार्थ का प्रकाश करना इतने मात्र से सबका उपकार एक ही है लेकिन यहाँ पर्यायार्थिकनय की प्रधानता में भेद रूप से सब देखा जा रहा है। तो गुण अनेक हैं और उनके कार्य अनेक हैं। तो अनेक उपकारी गुणों के द्वारा किया गया उपकार एक नहीं होता तब उपकार से भी अभेद वृत्ति न बनी।

गुणीदेश व संसर्ग की अपेक्षा से भी पर्यायार्थिकनय से नाना गुणों में परस्पर भेद—अब गुणी देश की अपेक्षा से अभेद सम्भव नहीं है इस पर विचार कीजिए। दृष्टि में सब कुछ पृथक-पृथक् निरखा जाता है। तो जब प्रत्येक गुण में भेद है तो उन भिन्न गुणों को निरखने पर गुणों के देश

में भी भेद प्रतीत होगा। यह एक दृष्टि की बात ही पर्यायार्थिकनय का विषय है उस दृष्टि में गुणों के भेद से गुणी देश का भेद होता है अन्यथा पर्यायार्थिकनय में गुण भेद होने पर भी गुणी देश को अभेद मान लिया जाय तो भिन्न-भिन्न पदार्थ के जो अनेक गुण हैं उन सब गुणों का गुणी देश भी एक बन बैठेगा, इस कारण पर्यायार्थिकनय की दृष्टि में गुणी के भेद से भी भेद गुणी देश में मानना होगा। अब संसर्ग की अपेक्षा से भी अभेद नहीं बन सकता। क्योंकि पर्यायार्थिकनय की दृष्टि में संसर्ग के भेद से संसर्ग में भी भेद माना जायगा। जो बात सम्बन्ध के विषय में कहा था वही बात संसर्ग के विषय में है। केवल संसर्ग और सम्बन्ध के स्वरूप में अन्तर है। सम्बन्ध कथंचित् तादात्म्य को लिए हुए हैं, संसर्ग व्यतिरेकियों का सम्बन्ध है। तो जितने संसर्गी हैं, जिन-जिनमें संसर्ग करने की बात कहीं जा रही है उन संसर्गियों के भेद से संसर्ग में भी भेद पड़ जाता है। अन्यथा संसर्गी का भेद होने पर भी संसर्ग में अभेद माना जाय तो जहाँ संसर्ग एक है। वहाँ संसर्गी का भेद कैसे सम्भव है ? उसके विरुद्ध होगा। अतएव पर्यायार्थिकनय की दृष्टि में संसर्ग की अपेक्षा से भी अभेद वृत्ति नहीं कहीं जा सकती।

पर्यायार्थिकनय की प्रधानता में शब्द की अपेक्षा से गुणों में परस्पर भेद व अभेदोपचार के कथन का उपसंहार—शब्द की दृष्टि से भी उन नाना गुणों में अभेद वृत्ति नहीं बनती। पर्यायार्थिकनय की दृष्टि में शब्द अर्थ से भिन्न-भिन्न है। जो शब्द जिस अर्थ का वाचक है वह शब्द अन्य है, भिन्न अर्थ का वाचक शब्द अन्य है तो जितने गुण हैं वे सब भिन्न-भिन्न शब्दों के द्वारा कहे जा रहे हैं। तब उनमें एक शब्द द्वारा वाच्यपना हो ही नहीं सकता। वे गुण नाना हैं तो उनके वाचक शब्द भी नाना हैं। तो शब्द की दृष्टि से उनमें अभेद नहीं बन सकता। यदि नाना गुणों को शब्द के द्वारा वाच्य बन जायें और कदाचित् ऐसा कोई मान ले कि होने दो ऐसे समस्त पदार्थ, एक शब्द द्वारा वाच्य हो जायेंगे तब तो अन्य शब्दों की रचना ही विफल है। शब्द ही अनेक क्यों बन गए ? कोई एक शब्द हो, वह शब्द का वाचक बन बैठेगा। यों पदार्थ को अगर देखा जाय तो पर्यायार्थिकनय की दृष्टि में अभेद वृत्ति सम्भव नहीं है। लेकिन पर्यायार्थिकनय में निरखे गए इन भिन्न-भिन्न नाना गुणों से जो कि काल आदिक गुणों की अपेक्षा से भिन्न-भिन्न है उनका जब पर्यायार्थिकनय की प्रधानता लेकर निरीक्षण करते हैं तो उनमें अभेद का उपचार किया जाता है। यों द्रव्यार्थिकनय की प्रधानता में अभेद वृत्ति का अभेद उपचार है जिसके कारण यहाँ सकलादेश का स्वरूप बनता है जिससे कि प्रमाण सप्तभंगी की निष्पत्ति होती है। द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा से नाना गुणों में भेद है उनका अभेदोपचार किया जा रहा है। इस तरह अभेदवृत्ति और अभेदोपचार के द्वारा किसी एक भंग से किसी एक शब्द से कहे गए जो समस्त धर्मों का समुदाय है तन्मात्र वस्तु है, बस उस ही अनेकान्तस्वरूप का द्योतक है स्यात् शब्द। यों

इन भंगों में स्यात् शब्द कहने की सार्थकता है। यहाँ तक पदार्थ अनेकान्तात्मक है और इन भंगों से उस अनेकात्मक पदार्थ की ही प्रसिद्धि की गई है, यह वर्णन किया गया है।

स्यादस्येव घटः स्यान्नास्येव घटः इन दो वाक्यों के अर्थ का विवरण—अब वाक्यार्थ का निरूपण करते हैं। इसमें वाक्य बोला गया है—स्यात् अस्ति एव घटः स्यात् नास्ति एव घटः। इन दो भंगों के वाक्यों के सम्बन्ध में विचार कर रहे हैं कि वाक्य का अर्थ यह है कि घट में जो कम्बुग्रीवाकार रूप से जो घटपना है अर्थात् घट में जो एक सामान्य आकार पाया जाता है उससे सहित जो अस्तित्व धर्म है उसका आधार हुआ घट, यह बात कहीं गई है पहले वाक्य में अर्थात् घटपन से सहित जो अस्तित्व धर्म है उसका आधार घट है, यह अर्थ हुआ। स्यान्नास्ति एव घटः इस वाक्य से घटत्व आदिक पररूप से सहित नास्तित्व का आधार है घट, यह अर्थ कहा गया, घट है ऐसे वाक्य से उस स्वरूप का भान हुआ, जिस प्रकार से कम्बुग्रीव आकार वाले स्वरूप का भान हुआ। कम्बुग्रीव कहते हैं शंख के आकार जैसे गला से सहित, याने शंख का जो एक द्वार है, छिद्र है, जहाँ से शंख बजाया जाता है उस जगह शंख का जैसा गला आदिक का रूप है उस तरह का जहाँ आकार बनाया जाता है उसे कहते हैं कम्बुग्रीवाकार। घट में चाहे छोटा बड़ा कैसा ही घट बनाया जाय वहाँ कम्बुग्रीवाकार घड़ना ही पड़ता है। तो यह आकार रूप धर्म से सहित जो अस्तित्व है ऐसा यह घट है, यह बात पहिले वाक्य से कहीं गई है। अब जैसे घट का अस्तित्व समझा गया ऐसे ही यह पट आदिक वस्तु नहीं है। यह भी तो समझा गया है। तो इस तरह से अन्य का निषेध भी यहाँ भान में आ रहा है। तब अन्य पदार्थ के रूपादिक से नास्तित्व का आश्रय भी घट है। घट में अस्तित्व भी है नास्तित्व भी है। स्वरूप से अस्तित्व है, पररूप से नास्तित्व है। स्वरूपास्तितत्व का भी आश्रयभूत है घट और पररूप नास्तित्व का भी आश्रयभूत है घट। तो ये दोनों बातें किसी भी कुशल पुरुष को भान में आती है। घट आदिक समस्त वस्तु स्वरूप में अपने रूप से सत्त्व होना और अन्य रूपादिक से असत्त्व होना, यह अवश्य मानना होगा। यदि ऐसा न माना जायगा तो वस्तु का स्वरूप ही न बनेगा। अपने स्वरूप से सत्त्व नहीं है तो फिर बात ही क्या रही? पररूप से असत्त्व नहीं है तो उसका सत्त्व न रहा। वस्तु का ग्रहण होता है वह वस्तुस्वरूप के ग्रहण से और पर के स्वरूप के त्याग से बनता है।

घटपटवाच्य स्वरूप से अस्तित्व व पररूप से नास्तित्व—अब वस्तु के अपने स्वरूप की और पररूप की बात का विस्तार करते हैं। स्वरूप से अस्तित्व का होना, पररूप से नास्तित्व का होना, इसके बिना वस्तु की व्यवस्था ही नहीं बनती। तब यह जानना आवश्यक हो गया कि

स्वरूप कहते किसे हैं ? और पररूप कहते किसे हैं ? तो अब सुनो। घट ऐसा बोलकर घट इस बुद्धि में घट का प्रयोग से भासमान और घटपट की शक्ति से जो कहा गया है उसमें जो घटत्व धर्म रह रहा है वह घट का स्वरूप है। घट सुनकर कहकर जो कुछ भी भासा है वह घट का स्वरूप है और उसके अतिरिक्त पटत्व आदिक ये घट के पररूप हैं। तो घट स्वरूप से जैसे घट का सत्त्व है ऐसे ही पटत्वादिक रूप से भी यदि सत्त्व माना जायगा तो घट पटरूप है और उसके अतिरिक्त पटत्व आदिक ये घट के पररूप हैं। तो घट स्वरूप से जैसे घट का सत्त्व है ऐसे ही पटत्वादिक रूप से भी यदि सत्त्व माना जायगा तो घट पटरूप हो गया, वह स्वयं घट न रहा। क्योंकि जैसे उस घट को घट स्वरूप से माना ऐसे ही उस घट को पटस्वरूप से भी मान लिया। तब घट न रहा और घट से अन्य पट आदिक स्वरूप से जैसे असत्त्व माना है यदि स्वरूप से ही असत्त्व मान लिया तो वहाँ कुछ न रहा। तो घट इस बुद्धि में जो कुछ घटत्व धर्म से सहित पदार्थ बुद्धि में आया है वह तो है उसका स्वरूप और उसके अतिरिक्त पट आदिक समस्त पदार्थ है पररूप। तो ये स्वरूप से सत् है पररूप से असत् है, यह बात सर्वत्र आवश्यक ही है। कोई कहे अथवा न कहे, पदार्थ तब ही अपना अस्तित्व रख पाता है जब कि वह अपने स्वरूप से है और पररूप से नहीं है। है ही ऐसे समस्त। वस्तु समुदाय के प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूप से है पररूप से नहीं है तभी तो उनका सत्त्व है, यह अनादिसिद्ध समस्त पदार्थों में है।

नाम स्थापना द्रव्य भाव में विवक्षित स्वरूप से अस्तित्व व अन्यरूप से नास्तित्व—अब स्वरूप से जो कुछ पहिले समझा गया घट के बारे में उसी में और सूक्ष्म बुद्धि करके स्वरूप पररूप का विभाग करते हैं कि देखिये। जितने पदार्थों के सम्बन्ध में व्यवहार होते हैं वे चार निक्षेपों के द्वारा होते हैं—नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। तब घट भी ४ प्रकार से समझा गया। नाम घट, स्थापनाघट, द्रव्यघट, भावघट। अब इनमें से जिस घट की विवक्षा है वह तो हुआ घट का स्वरूप और जिस घट की विवक्षा नहीं है और भी अन्य चीजें वे सब हैं पररूप। तब यहाँ यह कहा जायगा कि विवक्षित घट रूप से तो यह है और अविवक्षितरूप से यह नहीं है। नामघट स्थापनाघट, द्रव्यघट और भावघट। इनमें से जिस प्रकार के घट को कहने की इच्छा और अन्य है या जिस भी घट को कहने का हम यत्न कर रहे हैं वह तो है स्वरूप और अन्य है पररूप। यदि विवक्षित रूप से भी घट नहीं है तब तो असत्त्व हो जायगा, जिसको हम देख रहे, भान में आ रहे, विवक्षा हो रही उस रूप से भी घट नहीं है तो क्या है? कुछ भी नहीं। खरगोश के सींग की तरह असत्त्व हो जायगा और यदि अविवक्षितरूप से घट मान लिया जाता है तब तो नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव इनमें परस्पर कोई भेद न रहेगा। फिर दूसरे निक्षेप ही क्यों कहे गए ? चार निक्षेपों में चार प्रकार की बुद्धि क्यों बन रही? इससे सिद्ध है कि इन चार निक्षेपों की

दृष्टि में चार प्रकार के घट जाने जाते हैं उनमें से जो विवक्षित स्वरूप हो उसकी अपेक्षा से घट है और जो अविवक्षित स्वरूप है उसकी अपेक्षा से घट नहीं है। उनका तात्पर्य यह है कि घट के गुण आदिक की अपेक्षा निरख कर केवल एक लोक व्यवहार के लिए जो एक नाम बना दिया है उसका नाम है नाम घट। जैसे नाममात्र का घट। उसके बारे में हम और कुछ भी नहीं जानना चाहते, किन्तु एक नाम भर आ गया है—वह हो गया नामघट। अब जो घट जाना जा रहा है जिसमें हम स्थापना कर रहे हैं बुद्धि का संकल्प कर रहे हैं समझ रहे हैं कि यह है घट इस प्रकार की दृष्टि से जो कुछ घट का भान होता है वह कहलाता है स्थापनाघट। द्रव्यघट जो घट बना था जो घट बनेगा ऐसी पर्यायों में भी उस घट शब्द का प्रयोग होता है उसमें जो समझा गया है वह है द्रव्यघट और घट पर्याय में जो वर्तमान है उस पिण्ड दशा में जो घट पाया जा रहा है वह है भावघट। इन चार प्रकार के घटों में से जो घट विवक्षित है उस स्वरूप से घट है और जो अविवक्षित है उस स्वरूप से घट नहीं है। इसी बात को भंगों द्वारा समझाया गया और तर्क द्वारा बताया गया कि विवक्षित स्वरूप से भी घट हो जाय, अविवक्षित का नास्तित्व न हो तब तो इन चार प्रकारों में कोई परस्पर भेद भी न रहेगा।

परिगृहीत घटनिष्ठ स्थौल्यादि धर्म स्वरूप से घट का अस्तित्व व इतरघटादि धर्मरूप पररूप से नास्तित्व—अब उससे भी और सूक्ष्म बात में चलिए। स्वरूप और पररूप का प्रतिपादन घटत्व से सहित घट देखे गए थे, अब उनमें से भी जिस प्रकार का घट ग्रहण में आ रहा उसमें रहने वाला जो मोटापन, रंगादिक है ये धर्म स्वरूप हुए और उस मोटाई आदिक धर्म से भिन्न धर्म वाले अन्य घटादिक व्यक्ति अन्य घट उनमें पाये जाने वाले जो कुछ आकार प्रकार आदिक है वे हैं पररूप। तब यहाँ अस्ति नास्ति की बात घटित की कि उस स्वरूप से जो है वह तो है प्रथम भंग और पररूप से नहीं है यह है द्वितीय भंग। जैसे घट इतना ग्रहण में आये हुए आकार का, जितना मोटाई का बस उस धर्म सहित घट है और उसके अतिरिक्त अन्य मोटाई आदिक की अपेक्षा से नहीं है। यदि स्वरूप से भी घट न रहे तो असत्त्व हो जायगा। और यदि पररूप से भी वह घट बन गया। अन्य घट की अपेक्षा से भी यह घट बन गया तो सारे घट एक हो जायेंगे, फिर व्यवहार का लोप हो जायेगा। बड़े-बड़े घट भी होते हैं—जैसे मटका। छोटे घट होते हैं और बिल्कुल छोटे भी घट होते हैं जिन्हें डबला कहते हैं। अब उनमें से जिस समय जिस आकार को बुद्धि में लेकर घट कहा जा रहा है बस घट तो उस आकार वाला ही है अन्य आकार वाले घट का नास्तित्व है। यह बात यदि न हो तो व्यवहार ही नहीं बन सकता है। फिर सभी घट एक हो गए। यदि कुछ थोड़ा सा पानी खींचना है, ऐसे घट को कोई मंगाये और वह ला दे बड़ा मटका तो उससे काम तो न चला। हर एक व्यक्ति की बुद्धि में यह बात है कि जिस प्रकार के आकार

को लिए हुए घट की बात समझ में आ रही है उस समय में उसी प्रकार के आकार आदिक धर्मों से सहित ही घट है, अन्य सब पररूप है। अब इस तरह से सूक्ष्म से सूक्ष्म की और चलते हुए सूक्ष्म स्वरूप की और आ रहे हैं। उसी प्रसंग में अब उस ही घट विशेष में जिस आकार को लिए हुए घट विशेष देखा गया है उसमें अब स्वरूप और पररूप की बात कह रहे हैं।

पूर्वोत्तरान्तरात्मवर्ति घट पर्यायस्वरूप से अस्तित्व पूर्वोत्तराय पर्याय से नास्तित्व—उस ही घट विशेष भिन्न-भिन्न कालों में रहने वाले जो पूर्वोत्तर परिणमन है। जैसे वह पहिले कुसूल था, एक छोटी सी लम्बी पिण्डीरूप था फिर घटरूप हुआ फिर कपाल रूप होगा। यों जितनी भी अवस्थायें हैं उन सब अवस्थाओं में जो पूर्वोत्तर अवस्थायें हैं तो है पररूप और पूर्व और उत्तर अवस्थाओं के बीच में जो घट पर्याय है वह है स्वरूप। तो घट स्वरूप से है, इसका अर्थ यह है कि घट की इस समय की जो वर्तमान पर्याय है उस पर्याय के रूप से है और पहिले जो पर्याय थी, अब जो पर्याय होगी उस रूप से नहीं है। यहां तर्क की कसौटी पर कसें तो देखिये—यदि कुसूल कपाल आदिक रूप से भी घट है याने घट से पहिले होने वाली पर्याय से और घट सत् है तो घट अवस्था में घट पर्याय की तरह कुसूल आदिक पर्याय की भी उपलब्धि का प्रसंग आ जायगा। और कुसूल आदिक की अवस्था में भी यदि घट का सत्त्व माना जाय याने पररूप से है यह स्वीकार कर लिया जाय तब घट पर्यायकी उत्पत्ति और विनाश के लिए महान प्रयत्न करना विफल है। जैसे घट के पहिले से जो परिणति थी वह कुसूल रूप है, इसी प्रकार कपाल, (खपरियों) के रूप से भी घट है तो जब कभी घट को फोड़ने की आवश्यकता जंची तो यह मनुष्य फोड़ता है तो फोड़ने की क्या जरूरत है ? कपाल रूप से भी तो घट मान लिया गया। इसी प्रकार यदि अन्तराल में रहने वाली जो घट पर्याय है उस पर्याय से भी घट नहीं है, जिसको प्रथम भंग में कहा है कि स्वरूप से है ? यदि अपने घट पर्याय स्वरूप से भी नहीं है तो फिर उस समय में जल भरने, जल खींचने आदि कार्य नहीं बन सकते हैं, क्योंकि वह तो घट पर्याय से भी नहीं है। यों घट अपनी पर्याय से है और पूर्वोत्तरवर्ती पर्याय की अपेक्षा से नहीं है।

वर्तमान क्षणवर्ति घट पर्यायस्वरूप से अस्तित्व व अतीतअनागत घट, पर्याय पररूप से नास्तित्व—अब उस ही में और सूक्ष्मता से निरीक्षण करें। घट में प्रतिक्षण सजातीय परिणमन हो रहा है यह तो सिद्धान्त की बात है। सभी पदार्थों में सर्वत्र परिणमन होता रहता है। जैसे कोई घड़ा १० दिन तक बैसा का ही बैसा है। १० दिन की क्या बात, ५ मिनट भी उयों का त्यों समझ में आ रहा है। लेकिन परिणमन निरन्तर हो रहा है। वहां एक समान परिणमन होते रहने से यह

विदित नहीं हो पाता कि यह परिणम रहा है। जब घट फूट जाय, या बिल्कुल रूप बदल जाय तब पहिचान होती है कि लो अब यह घट की दशा बदल गई लेकिन बदलता है प्रति समय। तो घट आदिक पदार्थों में प्रति समय सजातीय परिणमन होता रहता है। तो ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा से वर्तमान क्षण में रहने वाली जो घट पर्याय है वह तो है घट का स्वरूप और अतीतकाल में अनागत काल में जो घट पर्याय है वह है पर्यायरूप। जैसे यही एक घड़ा महीने भर तक रहेगा। लेकिन जिस समय में जिस पर्यायरूप से घट को देखा जा रहा है। बस उसी क्षण की घट पर्यायरूप से वह घट है और पूर्वोत्तर अन्य क्षणों में घट पर्याय रूप से भी घट नहीं है। अब यहां तर्क पर इसे कसकर देखे कि यदि उस समय के रहने वाले स्वभाव से जिसे कि सत् माना है यदि अन्य क्षणों में रहने वाले घट भाव से भी उसका अस्तित्व हो जाय तो सब कुछ एक क्षण में ही हो जाना चाहिए ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा से वर्तमान एक क्षण में जिसे निरखा जा रहा है और है, और है, उसी स्वरूप से वह है। और पूर्वोत्तर क्षणों में जिसे निरखा जा रहा है और है, उस ही स्वरूप से वह है। और पूर्वोत्तर क्षणों में रहने वाली उस सजातीय पर्याय रूप से वह हो जाय तो सब कुछ एक क्षण में रहने वाला हो जाय। इसी प्रकार यदि क्षण-क्षण में जैसा वह है और अन्य क्षणों में रहने वाले स्वभाव से नहीं है। यहां यदि यों कोई ठान ले कि अन्य क्षणों में रहने वाली पर्याय से जैसे घट का नास्तित्व है इसी प्रकार उस क्षण में रहने वाले घटभाव की अपेक्षा भी नास्तित्व है। तब तो घट के आश्रय से व्यवहार ही नहीं बन सकता। स्वरूप से भी अब घट नहीं रहा तो घट कहेंगे किसको? जैसे जो घट अभी उत्पन्न ही नहीं हुआ ऐसी माटी में कौन घट का व्यवहार करता है? अथवा घट नष्ट हो गया तो उन कपाल टुकड़ों में कौन घट का व्यवहार करता है। तो जैसे नष्ट और अनुत्पन्न घट में घट का व्यवहार नहीं होता इसी प्रकार पूर्वोत्तर पर्यायों में रहने वाले घटों में भी घट का व्यवहार नहीं होता। और अपने क्षण में रहने वाले घट की अपेक्षा से भी यदि अस्तित्व माना जाय तो उसमें भी घट का व्यवहार न होगा।

घट का पृथुबुधोदराद्याकार स्वरूप से अस्तित्व इतराकाररूप पररूप से नास्तित्व—अथवा अब और उससे सूक्ष्म दृष्टि करें तो उस ही क्षणवर्ती घट पर्याय में और स्वरूप पररूप का भेद किया जा सकता है। घट है रूप, रस, गंध, स्पर्श का समुदाय रूप अब उस समय में घट समझने वाले ने निरखा है वह प्रतिबुध में उदररूप आकार अर्थात् बीच में मोटा विशाल और ऊपर नीचे संकुचित ऐसा आकार देखता हुआ वह घट समझ रहा है। तो उस समय में वह आकार स्वरूप है और अन्य आकार पररूप है। तो वहाँ उस प्रतिबुधोदर आकार से तो घट है और अन्य आकार से घट नहीं है। अब यह विचार कर लें कि प्रतिबुधोदर आदिक आकार के सत्त्व आकार से घट नहीं है वह आकार न हो तो घट व्यवहार नहीं होता क्योंकि व्यवहार उस

उस-उस प्रकार के आकार में ही नियत हुआ करता है। अब यहाँ यदि प्रतिबुधोदर आकार से भी घट अस्तित्व न माना जाय तो स्वरूप से सत्त्व न माना जाय तो घट का असत्त्व हो जायगा। यदि अन्य आकार से भी अस्तित्व मान लिया जाय अर्थात् पररूप से अस्तित्व मान लिया जाता तो उस प्रकार के आकार से शून्य घट आदिक में भी घट व्यवहार का प्रसंग हो जायगा। यहाँ दृष्टि हो रही है एक प्रतिनियत आकार की और उसको ही दृष्टि में रखकर घट जाना जा रहा है। तो घट का स्वरूप है यह प्रतिनियत आकार है, अन्य आकार पररूप हैं। तो इस आकार से घट है अन्य आकार से घट नहीं है। मानो कई प्रकार के घट रखे हैं—कुछ लम्बे, कुछ, मोटे, कुछ कलशा जैसे कुछ सुराही जैसे। अब जिस आकार को निरखकर घट समझा रहा है वह स्वरूप भी आकार है और अन्य आकार उसका पररूप है। तब वहाँ यह लगाया जायगा कि वह घट अपने स्वरूप से है और पररूप से नहीं है।

रूप स्वरूप से घट का अस्तित्व व रसादिपररूप से नास्तित्व—अथवा ओर भी सूक्ष्म दृष्टि से आगे चले तो देखिये ! जिसको चक्षु से घट दिखा तो रूप सहित ही तो घट देखा। तो अब उसका इस घट व्यवहार में स्वरूप बना रूप और रसादिक बने पररूप तो वहाँ वह घड़ा रूप मुख से तो है और रसादिक मुख से नहीं है। यद्यपि घट पिण्ड में रूप, रस, गंध, स्पर्श ये चारों ही बातें हैं, एक बात तो कभी रहती भी नहीं। प्रत्येक पुद्दल पिण्ड में चारों ही बातें एक साथ होती है। लेकिन जब चक्षु से देखा तो ग्रहण में रूप ही आया। उस समय घट का स्वरूप रूप है और घट का पररूप रसादिक है। तो कैसे यह घटित होगा कि यह रूप स्वरूप से तो है, क्योंकि चक्षुइन्द्रिय द्वारा ग्राह्य हो रहा है और पररूप से नहीं है। यदि घट पररूप से हो जाय अर्थात् चक्षुइन्द्रिय के द्वारा जो देखा गया है घट वह घट यदि रस रूप से भी अंगीकार कर लिया जाय तब फिर रसना आदिक इन्द्रिय की कल्पना करना व्यर्थ है। आँखों से निरखा और उस घट में मान लिया रसादिक से तन्मय तो फिर अन्य इन्द्रिय की क्या आवश्यकता रही ? चक्षु से ही सब कुछ समझ लिया रूपवान घट रसवान घट आदि तो फिर अन्य इन्द्रिय की कल्पना करना व्यर्थ हो जायगा। किन्तु ऐसा तो नहीं है। प्रत्येक इन्द्रिय अपने-अपने विषय में प्रतिनियत है। तो यों यह घट पररूप से नहीं है, इसी प्रकार जैसे कि घट रस आदिक पररूप से नहीं है यों ही रूपात्मक रूप से भी न रहे तो घट का फिर ग्रहण ही नहीं हो सकता। क्या घट है ? कैसे समझे ? उसमें कुछ भी ग्रहण में नहीं आया, क्योंकि वहाँ तो घट ज्ञान रूपज्ञान में नियत है। तो जिस समय जिस इन्द्रिय के द्वारा देखा जाकर स्वरूप का निर्णय हो रहा है उस समय उस ही विषय रूप से है और पररूप से नहीं है।

घटन क्रियाविषय कर्तृत्व स्वरूप से अस्तित्व कुट्टवादि पररूप से नास्तित्व—अथवा और भी सूक्ष्म दृष्टि लगाकर आगे बढ़े तो देखिये शब्द का भेद होने पर नियम से अर्थ का भी भेद हो जाता है। नाना अर्थों का ग्रहण करने वाला समभिरूद्धनय है। समभिरूद्धनय से मतलब है कि एक शब्द नाना अर्थों का भी वाचक हो लेकिन वह जिस अर्थ में रूढ़ है उस ही अर्थ की बताया। तो नाना अर्थों का ग्रहण करने वाले समभिरूद्धनय की अपेक्षा से घट के पर्यायवाची शब्द जितने हैं उन शब्दों को धर्म भेद है। जैसे कहा घट—तो मतलब निकला जो घड़ा जाये सो घट। और, कहा कुट्ट, तो जिसमें कुटिलता हो सो कुट्ट। यद्यपि घड़ा जाना और टेढ़ापन होना ये दोनों बातें उस घट में पायी जा रही है लेकिन घट शब्द कहकर जो अर्थ भान में आया उसने भिन्न कुट्ट शब्द का अर्थ है। जैसे कि देवताओं के स्वामी का नाम इन्द्र भी है और सक्र भी है, किन्तु इनका अर्थ जुदा-जुदा है। इन्द्र वह जो ऐश्वर्य सहित हो और सक्र वह जो शत्रुओं को पराजित करने में समर्थ हो। यों ही शब्दों के भेद से घट अर्थ में भी भेद हो गया। जब घट शब्द कहा तो घड़ने की क्रिया का विषय बनता है और जब कुट्ट कहा तो उसका अर्थ है कुटिलता। कुटिलता आदिक है पररूप, तब यह कहना होगा कि घट स्वरूप से नहीं है। अर्थात् घड़ने की अपेक्षा से घट है किन्तु कुटिलता की अपेक्षा से घट नहीं है। इस प्रकार स्वरूप और पररूप की भाँति अन्य भी विचार कर लेने चाहिए। यहां तक घट का उदाहरण देकर घट का स्वरूप और घट का पररूप उत्तरोत्तर सूक्ष्म दृष्टि से वर्णन किया गया।

द्रव्यापेक्षा मृदात्मकता स्वरूप से घट का अस्तित्व व सुवर्णाद्यात्मक पररूप से नास्तित्व—अब द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से घट का स्वरूप क्या है और पररूप क्या है ? इस विषय का वर्णन करते हैं। घट का स्वद्रव्य है मिट्टी द्रव्य और परद्रव्य है स्वर्णादिक। तब यों प्रयोग होगा कि घट मिट्टी रूप से तो है, स्वर्णादिक रूपसे नहीं है। यदि घट जैसे स्वद्रव्यरूप से है इसी तरह परद्रव्यरूप से भी हो जाय तो घट मिट्टीमय न रहेगा किन्तु स्वर्णादिक रूप हो जायगा, किन्तु ऐसा नहीं है। यह घट मिट्टी का ही है। स्वर्णादिक में नहीं है, यह तो नियम देखा जा रहा है और जब जैसे घट स्व द्रव्य से है ऐसे ही पर द्रव्य रूप मान लिया जाय तो यह नियम नहीं रह सकता। जब यह नियम न रहेगा तो द्रव्य का प्रतिनियम भी विरुद्ध पड़ जायगा। द्रव्य में प्रतिनियम के विरुद्ध की बात सुनकर शंकाकार कहता है कि देखिये संयोग विभादिक गुण अनेक द्रव्यों के आश्रय रह रहे हैं फिर भी इनमें द्रव्य के नियम का विरोध नहीं आता। जैसे संयोग कहते हैं अनेक द्रव्यों के आश्रय नहीं, जिस पर भी विभाग पृथक् हो जाना इसका भी आश्रय अनेक द्रव्य है। गुण क्या पृथक् हुआ? यों आधार अनेक द्रव्य हुए तिस पर भी यह द्रव्य इससे अलग किया ऐसा नियम देखा ही जा रहा है तो यह कहा कि अनेक द्रव्य रूप

से अगर सत् हो जाय तो द्रव्य का प्रतिनियम न रहेगा। यह बात नहीं कह सकते। संयोग विभाग आदिक में अनेक द्रव्यों का आश्रय होने पर भी द्रव्य का प्रतिनियम विरोध नहीं देखा जा रहा है। इस शंका के उत्तर में कहते हैं कि यह कहना युक्त नहीं है। कारण यह है कि संयोग विभाग आदिक ये अनेक द्रव्य के गुण है। याने एक गुण है और अनेक द्रव्यों के आश्रय है ऐसा नहीं है, किन्तु जितने द्रव्य है उतने ही संयोग विभाग आदिक गुण है। तो उन प्रत्येक गुणों का अपने-अपने आधारभूत द्रव्य ही स्वद्रव्य है। इस कारण अनेक उनका आधार होने से अनेक स्वद्रव्य रूप से उनकी सत्ता युक्त है और अपना जहां आश्रय नहीं है ऐसा द्रव्यान्तर अथवा संयोग विभाग आदि के लिये हम द्रव्य कहलाते हैं। यदि अपने आश्रय वाले द्रव्यात्मक रूप से भी संयोग आदिक की सत्ता बन जाय तो वहां भी अपने अनाश्रयभूत द्रव्य का प्रतिनियम न रहेगा। तो यों संयोग विभाग आदि के स्वद्रव्य कहलाते हैं। देखिये वहां भी तो द्रव्य का प्रतिनियम पड़ा हुआ है कि यह संयोग विभाग इस द्रव्य का है इस संयोग विभाग का स्वद्रव्य यह है। हैं वे अनेक द्रव्य, पर वहाँ भी नियम है और जिसमें संयोग विभाग नहीं है और संयोग विभाग के आश्रय भूत है ऐसा कहलाता है परद्रव्य। तो परद्रव्यात्मक की तरह से स्वद्रव्यात्मक रूप से घट का असत्त्व हो जाय तो समस्त द्रव्यों की अनाश्रयता होगी, फिर उसका कभी भी आश्रय ही न रह सकेगा। तात्पर्य यह है कि घट का स्वद्रव्य मृत्तिका है और परद्रव्य स्वर्णादिक है। यदि घट स्वद्रव्य रूप से जैसा है उस प्रकार यह द्रव्यरूप से भी हो जाये तो वहां द्रव्य में नियम न रहेगा कि यह घड़ा मिट्टी का है और यदि जैसे परद्रव्यरूप से घट का असत्त्व है यों ही स्वद्रव्यरूप से घट का असत्त्व हो जाय तो वहां घट का असत्त्व हो जायगा। कोई आधार न रहा तो घट वस्तु ही न रही, फिर सप्तभंगी क्या लगायी जायगी ? अथवा व्यवहार भी कैसे चलेगा? इस प्रकार स्वद्रव्य की अपेक्षा घट का स्वरूप और पररूप कहा।

घट का स्वक्षेत्र की अपेक्षा से अस्तित्व व परक्षेत्रापेक्षया नास्तित्व—अब क्षेत्र की अपेक्षा से घट का स्वरूप और पररूप क्या है यह बतलाते हैं ? जिस स्थान में घट है वह जमीन अथवा भींट आदिक घट का स्वक्षेत्र है और अन्य भट आदिक जहाँ कि घट नहीं है वह घट का परक्षेत्र है। अब यहां यह घटित कीजिए कि घट अपने क्षेत्र में है पर क्षेत्र में नहीं है। घट की जैसे स्वक्षेत्र में सत्ता है ऐसे ही यदि परक्षेत्र में भी मान लिया जाय तो यह घट अमुक जगह है। अमुक जगह नहीं है, यह विभाग न बन सकेगा, क्योंकि अब तो घट का सत्त्व अपने क्षेत्र में और अन्य क्षेत्र में दोनों जगह मान लिया गया तो घट कहां है, कहां नहीं है, यह विभाग न हो नहीं है, ऐसे ही जहां घट है उस क्षेत्र में भी असत्त्व माने तो घट निराधार हो गया। फिर घट की कोई सत्ता ही न रही। यह बात कहीं गई है पर क्षेत्र के स्वरूप और पररूप को लगाकर। यदि

स्वक्षेत्र में ही स्वरूप पररूप लगाकर घटित किया जाय तो घट जिस देश में है वह घट का स्वक्षेत्र और उनके अतिरिक्त अन्य देश परक्षेत्र है। तो इस स्वक्षेत्र की अपेक्षा से भी यह घटित किया जा सकता है कि घट स्वक्षेत्र से है, परक्षेत्र से नहीं है। यों घट के उदाहरण से क्षेत्र की अपेक्षा से स्वरूप बताये गए हैं।

घट का स्वकाल की अपेक्षा से अस्तित्व व परकाल की अपेक्षा से नास्तित्व—अब काल की दृष्टि से घट का स्वरूप और स्वरूप अथवा स्वकाल और परकाल का निरीक्षण करो। घट का स्वकाल है वर्तमान काल। जिस काल में घट है वह है घट का स्वकाल। और, भूत, भविष्य की स्थितियां परकाल हैं। तो उनमें से स्वकाल में तो घट है और परकाल में घट नहीं है। यदि स्वकाल की तरह परकाल में भी घट का सत्त्व माना जाय तो इस काल में यह घट है इस प्रकार का नियम तो रहेगा नहीं। तब घट नित्य कहलायेगा। घट कितने समय तक रहेगा, बाद में फूट गया। पहिले पता न था, ये सब बातें विरुद्ध पड़ जायेगी। क्योंकि घट का सत्त्व स्वर्ण की तरह परकाल से भी मान लिया गया, किन्तु ऐसा है नहीं, इससे मानना होगा कि घट स्वकाल में है, पर काल में नहीं है। इसी प्रकार जैसे कि परकाल में घट का असत्त्व है यों ही स्वकाल में भी घट का असत्त्व मान लिया जाय तो जब अपने काल में भी घट न रहा तो घट कुछ रहा ही नहीं। फिर घट अवस्तु हो गया क्योंकि काल से सम्बन्धित होने का ही नाम वस्तुपना है। अपने काल से रहे तब तो वस्तु का वस्तुपन है। वह न स्वकाल में रहा न परकाल में। तो जब काल में रहा ही नहीं तो वस्तुतः इसकी कोई स्थिति नहीं, कोई परिणमन नहीं। तब वस्तुपना ही क्या हो सकता है। इस तरह अपने काल से है, परकाल से नहीं है यों काल में भी स्वरूपास्तित्व और पररूपनास्तित्व का वर्णन किया।

भावापेक्षया घट का घटत्व स्वरूप से अस्तित्व व पटत्वादिपररूप से नास्तित्व—अब भाव की अपेक्षा से स्वरूप देखिये ! घट का भाव है घटत्व और पर भाव है अघटत्व, पटल आदिक। तो घट घटत्वरूप से है, पटत्वरूप से नहीं है यों भाव की अपेक्षा से घट में स्वरूप, पररूप होते हैं। यदि घट जैसे घटत्वरूप से है वैसे ही पटत्व रूप से भी हो जाय तो वहाँ भाववान का प्रतिनियम नहीं हो सकता कि यह घटत्व धर्म से अवच्छिन्न पदार्थ है। यह घट है और उस स्थिति में घट का व्यवहार और उपयोग भी न हो सकेगा। जैसे घट पटत्व आदिक रूप से नहीं है ऐसे ही घटत्व रूप से भी न रहे तब घट अवस्तु हो जायगा। इस कारण से भाव की अपेक्षा भी स्वरूपस्तित्व और पररूप नास्तित्व मानना होगा। इस तरह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से और एकदम निर्णय व्यवहार में लेने की दृष्टि में इसका कथन किया जाय तो यों कहना चाहिए

कि घट मिट्टी द्रव्य से है, स्वर्णादिक द्रव्यरूप से नहीं है। घट अपने क्षेत्र से है परक्षेत्र से नहीं है। घट अपने काल से है, परकाल से नहीं है और अपने धर्मरूप से है, पर के धर्म से नहीं है। इस प्रकार घट का अस्तित्व स्वरूप से रहा, पररूप से न रहा।

घटत्वेनास्ति व पटत्वादिना नास्ति इन दो वाक्यों का बोधप्रकार—अब यहाँ पर इन वाक्यों का अर्थ समझना है तो उसका रीतिपूर्वक वर्णन करते हैं। घट घटत्व से है, इस वाक्य का अर्थ है कि घट घटरूप से है। यहाँ पर घटत्वेत ऐसा तृतीय विभक्ति में बता दिया है उसका अर्थ है अवच्छिन्नत्व, सहितपन। घट घटत्वरूप से है इसका अर्थ हुआ घट घटत्व धर्म से सहित है। घट तो एक प्रकृत बात है, जिसके विषय में निर्णय किया जा रहा है और अस्ति शब्द अस धातु से बना है। अस धातु का अर्थ है सत्त्व में होना, उसमें तित् प्रत्यय लगाया गया जिससे कि उसका प्रसिद्धि अर्थ हुआ आश्रय रहना। तब घटः घटत्वेन अस्ति, इस वाक्य का स्पष्ट बोध यह हुआ कि घटत्व का अवच्छिन्न जो अस्तित्व है उसके आश्रयभूत घट है याने घटत्व धर्म से सहित है अस्तित्व। उस अस्तित्व का आधार घट है। जहाँ घट के धर्म पाये जा रहे हैं ऐसा यह घट है। यह घटः घटत्वेन अस्ति, इस प्रथम वाक्य का अर्थ है। यहाँ पटत्वेन नास्ति इसका अर्थ भी एक आधार रूप से बनेगा, क्योंकि अभाव भी अधिकरणात्मक रूप से होता है। अभाव तुच्छाभाव नहीं माना गया है, किन्तु अभाव भी किसी एक का अभाव वाला होता है। जैसे पट का अभाव घट और घट का सद्वाव घट। तो अभाव का अधिकरणात्मक रूप होने से पटत्व से सहित अभाव भी घट स्वरूप रहा। याने पटत्व धर्म का अवच्छिन्न जो अभाव है मायने पटपना न होना, इसका आश्रय भी क्या रहा? घट। घट में पट के धर्म नहीं है। तो यों घटः पटत्वेन नास्ति, इस वाक्य का अर्थ हुआ कि पटत्व का अवच्छिन्न अभाव का आश्रय है घट। इस दूसरे वाक्य में जो नय समास लगाया गया है नास्तित्व, उसका अर्थ है अभाव। तो यों अर्थ लगाना कि अघटत्व अर्थात् पटत्व आदिक धर्मों का अवच्छिन्न अभाव घट है। इससे भी बात सत्य हुई कि घट में घटत्व आदिक का अभाव स्वरूप है। अभाव अधिकरणात्मक माना गया है। तो यों घटः घटत्वेन अस्ति इसका अर्थ हुआ घटत्व धर्म से सहित अस्तित्व का आश्रय है घट घटः पटत्वेन नास्ति इसका अर्थ हुआ कि पटत्व धर्म से सहित अभाव का आश्रय घट है। उक्त दो वाक्यों के बोध प्रकार की तरह घट मृत्तिका द्रव्यरूप से है इत्यादि वाक्यों का भी तत्त्वर्मविच्छिन्नरूप से अर्थ समझ लेना चाहिये।

शंकाकार द्वारा स्वरूप का स्वरूप पररूपान्तर मानने व न मानने में दोषापत्ति का प्रदर्शन—यहाँ शंकाकार कहता है कि सर्व पदार्थों की व्यवस्था स्वरूप चतुष्य से और

पररूपादिक चतुष्टय से मानी गई है। स्वरूपादिक चतुष्टय से अस्तित्व और पररूपादिक चतुष्टय से अस्तित्व माना है पर यह बतलाओ कि स्वरूपादिक की व्यवस्था कैसे बनेगी क्योंकि स्वरूप में स्वरूपान्तर तो होता नहीं, जिससे कि स्वरूप अपने स्वरूप से कहा जाय पररूप से न कहा जाय। यदि उन स्वरूपादिक चतुष्टयों का भी स्वरूप चतुष्टय मान लिया जाय तो अनवस्था दोष होगा फिर तो उस स्वरूप चतुष्ट का भी स्वरूप चतुष्टय होना चाहिए। यों बहुत दूर जाकर भी यदि किसी जगह ऐसा मान लेते हैं कि उसका स्वरूपान्तर नहीं भी है तो भी स्वरूप की किसी जगह ऐसा मान लेते हैं कि उसका स्वरूपान्तर नहीं भी है तो भी स्वरूप की व्यवस्था है तब फिर पहिले से ही किसी पदार्थ से स्वरूप चतुष्टय की अपेक्षा सत्त्व और पररूप चतुष्टय की अपेक्षा से असत्त्व ऐसे समर्थन से क्या फायदा है? वह तो अपने घर की मानी हुई प्रक्रिया है कि प्रतीति के अनुसार वस्तु की व्यवस्था बनती है।

वस्तुस्वरूप प्रतीति द्वारा स्वरूप स्वरूपान्तर के बोध से पूर्ण समाधान की सहजता—उक्त शंका के समाधान में कहते हैं कि स्वरूप चतुष्टय के लिए स्वरूप चतुष्टय दूसरा माना जाय ना माना जाय आदिक विचारों से दोषापत्ति का उपलभ्म करना अयुक्त है, कारण कि अभी आप, (शंकाकार) वस्तु के स्वरूप की परीक्षा से अनभिज्ञ हैं वस्तु स्वरूप की प्रतीति स्वरूप से सहित सत्त्व को विषय करता है और पररूप से सहित असत्त्व का विषय करता है अन्यथा यदि वस्तु में स्वयं ऐसा स्वरूप न माना जाय तो नाना निरंकुश विवाद खड़े हो जायेंगे। वस्तु की बाधारहित जिस तरह प्रतीति हो सकती है उस ही प्रकार स्वरूप की व्यवस्था की जाती है। क्योंकि प्रमेय की सिद्धि प्रमाण के आधीन है ऐसा भगवद् वचन है और इस प्रकार स्वरूपादिक की स्वरूपादि दूसरी प्रतीति होती है या नहीं, इसके स्वरूप आद्यन्तर तो माना ही नहीं गया है, इस प्रकार उनके अस्तित्व और नास्तित्व की व्यवस्था नहीं है इसको अभी बताया है और आगे भी बतायेंगे। हाँ स्वरूपादिक में स्वरूपादि अन्य माने जा सकते हैं प्रतीति के अनुरोध से। कदाचित् स्वरूप के सम्बन्ध में भी विवाद हो गया तो वहाँ पर भी स्याद्वाद सप्तभंगी के ढंग का वर्णन किया जायगा। इस तरह वहाँ अनवस्था नहीं आती। जहाँ पर अन्य स्वरूपान्तर की प्रतीति हो रही है बस वहाँ व्यवस्था बन ही जाती है। वस्तु को निरख कर पहिली बार जो स्वरूप समझ में आया उससे वस्तु की व्यवस्था बन गई अथवा जहाँ स्वरूपाद्यनादि की प्रतीति हुई वही व्यवस्था बन जाती है, फिर अन्य कल्पना करना व्यर्थ है।

उदाहरण द्वारा वस्तुस्वरूप, स्वरूप स्वरूप आदि का निर्णय—जैसे जीव का लक्षण उपयोग कहा गया है। उपयोगी लक्षण ऐसा तत्त्वार्थ महा शास्त्र में कहा भी है। तो जीव का लक्षण उपयोग

है। वह तो है जीव का स्वरूप और अनुपयोग हुआ पररूप। अब उपयोग की दृष्टि से जीव का सत्त्व है, अनुपयोग की दृष्टि से जीवका असत्त्व है अर्थात् जीव का स्वरूप उपयोगमय है, अनुपयोगमय नहीं है। उपयोग सामान्य का भी अगर कोई स्वरूप समझना चाहे कि भाई जीव का लक्षण उपयोग है इस शब्द ने तो बात बता दिया मगर उपयोग सामान्य का भी क्या स्वरूप है? तो उन्हें बताया जा सकता है कि ज्ञान दर्शनरूप है उपयोग का स्वरूप। और, अन्य है पररूप। उपयोग विशेष जो ज्ञान है उसका क्या स्वरूप है? कोई पूछे तो उसका भी स्वरूप कहा जा सकता है कि अपने अर्थ के निश्चयात्मक जो प्रतिभास है वह है ज्ञान का स्वरूप। और, दर्शन का क्या स्वरूप है। तो उसका स्वरूप अन्य किसी आकार रूप से नहीं, किन्तु प्रतिभास सामान्य से जो ग्रहण है वही दर्शन का स्वरूप है। फिर परोक्ष ज्ञान का स्वरूप क्या है? अविषदपना जहाँ स्पष्टता नहीं है, निर्मलता नहीं है वह है ज्ञान का स्वरूप। प्रत्यक्ष का क्या स्वरूप है? निर्मलता। दर्शन का भी क्या स्वरूप है? तो चक्षु और अचक्षु के निमित्त से चक्षु आदिक अन्य पदार्थ का सामान्यतया ग्रहण होना यह दर्शन का स्वरूप है। अवधिदर्शन का क्या स्वरूप है? अवधिज्ञान के विषयभूत अर्थ का सामान्यतया ग्रहण होना सो अवधिदर्शन का स्वरूप है। परोक्षज्ञान, मतिज्ञान, उसका क्या स्वरूप है? इन्द्रिय और मन से उत्पन्न हुआ विषय है श्रुतज्ञान का स्वरूप। प्रत्यक्ष ज्ञान का क्या स्वरूप है? प्रत्यक्षज्ञान होते हैं ८ प्रकार के विकल प्रत्यक्ष और सकल प्रत्यक्ष। तो विकल प्रत्यक्ष का स्वरूप है इन्द्रिय और मन की अपेक्षा न रखकर स्पष्ट रूप से अपने विषयभूत पदार्थ का निश्चय करना यह है विकल प्रत्यक्ष का स्वरूप। सकल प्रत्यक्ष का क्या स्वरूप है वह है केवल ज्ञान। समस्त द्रव्य पर्यायों का साक्षात्कार करना यह है प्रत्यक्ष का स्वरूप। तो स्वयं में भी स्वरूपान्तर होता है। और जहाँ स्वरूपान्तर जानने की जिज्ञासा नहीं रहती है। अपने विषय में स्पष्टीकरण हो जाता है बस वहाँ सम्बन्धित होता है उसे आगे अनवस्था का अवकाश नहीं है। तो यह है उसका स्वरूप और उससे अन्य जो कुछ है वह पररूप है। यों स्वरूप से सत्त्व और पररूप से असत्त्व सभी स्थितियों में घटित होता है। यहाँ पर भी उत्तरोत्तर विशेषों में पहिचाना जाय तो स्वरूप और पररूप निश्चित होते चले जायेंगे क्योंकि जो उनके विशेष है और उनके भी विशेष है वे अनन्त हो सकते हैं। जहाँ तक जिज्ञासा है वहाँ तक ज्ञान चलता जायगा, जहाँ निर्णय हो चुका उसके आगे ज्ञान परिअवसित हो जाता है अर्थात् अब ज्ञान जानता ही रहता है यों सभी पदार्थों में स्वरूप पररूप होता है और उससे ही सत्त्व असत्त्व का निर्णय किया जाता है।

प्रमेय के स्वरूप पररूप के सम्बन्ध में विचार—अब शंकाकार कहता है कि प्रमेय का क्या स्वरूप है और प्रमेय का क्या पररूप है? जिन स्वरूप और पररूप के द्वारा प्रमेय का अस्तित्व

और अन्य का अस्तित्व सिद्ध किया जाय? उत्तर में कहते हैं कि प्रमेय का प्रमेयत्व स्वरूप है और घटत्व आदिक पररूप है। उसका प्रयोग यों होगा कि प्रमेय का प्रमेयत्व रूप से है और घटत्व आदिक रूप से नहीं है। इस विषय में कुछ लोग यह भी कहते हैं कि प्रमेय का स्वरूप प्रमेयत्व है और अप्रमेयत्व पररूप है। इस विषय में कोई ऐसा शंका करे कि प्रमेयत्व पररूप है। इस विषय में कोई ऐसी शंका करे कि प्रमेयत्व नाम तो प्रमेयत्व के अभाव का है और प्रमेयत्व का अभाव अप्रसिद्ध है क्योंकि प्रमेय का अर्थ है कि जो प्रत्यक्ष प्रमाण आदिक से जाना जाय, सो ऐसा कौन सो पदार्थ है जो प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणों से नहीं जाना जाता है तो जाना जाता है तो प्रमेयत्व का अभाव अप्रसिद्ध है। ऐसी शंका नहीं कर सकते। चर्चाकार कह रहे हैं क्यों शंका नहीं कर सकते ? यों कि प्रमेयत्व का अभाव भी शृंगं व अश्वशृंगं आदिक में प्रसिद्ध है याने खरगोश के सींग अप्रमेय है, अवस्तु है। प्रमेय प्रमेयत्वरूप से है और अप्रमेय रूप से नहीं है। चर्चाकार के प्रति शंकाकार कहता है कि खरगोश के सींग आदिक का प्रमेयत्व रूप से लोकव्यवहार है इसलिए खरगोश के सींग आदिक में जो प्रमेयत्व का अभाव है उसका भी प्रमेयत्व हो जायगा। खरगोश के सींग नहीं है इस प्रकार का ज्ञान तो हुआ ना ! तो खरगोश के सींग का दृष्टान्त अत्यन्ताभाव के लिये दिया जाता है ना ! सो जो प्रमेयत्व का अभाव है वह भी प्रसिद्ध है इसलिये वह भी प्रमेय बन जाता है खरगोश के सींग नहीं है इस प्रकार का ज्ञान तो हो ही रहा है। उत्तर में कहते हैं कि यह कह नहीं सकते, क्योंकि प्रमेयत्व के अभाव के जानने में साधक कोई प्रमाण नहीं है इस कारण प्रमेयत्व के अभाव में प्रमेयत्व की सिद्धि नहीं हो सकती। इसका कारण यह है कि प्रमाण से उत्पन्न जो प्रतीतिरूप फल में प्रमिति का विषय है उसको प्रमेय कहते हैं। तो प्रमेयत्व का अभाव इस प्रकार का प्रमाण नहीं बनता कि वह प्रमाण जन्य हो ऐसा प्रमिति का विषय बने यह युक्ति से सिद्ध नहीं है। तो यों प्रमेयत्व स्वरूप से और अप्रमेयत्व पररूप से प्रमेय का अस्तित्व तथा नास्तित्व बराबर सिद्ध है ऐसा कुछ लोग कहते हैं। कि प्रमेय का स्वरूप प्रमेयत्व है और पररूप अप्रमेयत्व है।

षटद्रव्यों के स्वरूप पररूप का विचार—अब यहाँ शंकाकार कहता है—अच्छा, भाई ! यह बताओ कि जीवादिक ६ द्रव्यों का स्वद्रव्य क्या है ? और परद्रव्य क्या है? जिस स्वरूप और पररूप से अस्तित्व और नास्तित्व की व्यवस्था की जाय, क्योंकि जीवादिक ६ द्रव्यों के अलावा अन्य द्रव्य कोई हो ही नहीं सकता। तब ६ द्रव्यों की व्यवस्था करने के लिए स्वरूप और पररूप ये न मिल सकेंगे। इस पर उत्तर देते हैं कि उनकी भी सिद्धि यों है कि शुद्ध सत् द्रव्य की अपेक्षा से तो अस्तित्व है और पररूप से याने अशुद्ध असत् द्रव्य की अपेक्षा नास्तित्व है। यहाँ प्रश्न यह किया गया था कि जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल आदि जो ६ द्रव्य है, इनका स्वद्रव्य

क्या है? और परद्रव्य क्या है? अथवा ७ तत्त्व है—जीव, अजीव, आश्रव, बंध आदिक। इनका स्वरूप क्या और पररूप क्या? इस पर उत्तर यह दिया गया कि इन ६ द्रव्यों का शुद्ध सत् द्रव्य की अपेक्षा से तो अस्तित्व है और अशुद्ध असत् द्रव्य की अपेक्षा से नास्तित्व सिद्ध है। याने ६ द्रव्यों का जो शुद्ध सत् द्रव्य है वह तो स्वरूप है और आगे जो अशुद्ध है, असत् है ऐसा कुछ भी है वह परद्रव्य है, उसकी अपेक्षा से ६ द्रव्यों में नास्तित्व युक्तिपूर्वक सिद्ध है।

महासत्ता के स्वरूप पररूप का विचार—अब यहाँ शंकाकार पूछता है कि यही बतलावों कि महासत्त्व रूप शुद्ध द्रव्य का स्वरूप क्या और पररूप क्या? क्योंकि महासत्ता तो समस्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावात्मक है। समस्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को छोड़कर अन्य द्रव्यादिक नहीं रह सकता, फिर वहाँ तो परद्रव्य कुछ मिलेगा नहीं। उत्तर में कहते हैं कि यह बात नहीं है। महासत्ता का भी सकल द्रव्य, क्षेत्र, काल आदिक की अपेक्षा से सत्त्व है और विकल द्रव्यादिक की अपेक्षा से असत्त्व है याने महासत्त्व समस्त द्रव्यों में व्यापक है ना! तो समस्त द्रव्यों में व्यापक रूप से तो महासत्ता का सत्त्व है और कुछ द्रव्यादिक में रहे इस रूप से असत्त्व है, क्योंकि महासत्त्व का यह स्वरूप ही नहीं कि वह कुछ पदार्थों में रह जाय और कुछ में न रहे। तो महासत्त्व के सम्बन्ध में भी स्वरूप और पररूप सिद्ध होते हैं, क्योंकि कहा गया है कि सत्ता भी प्रतिपक्षसहित होती है। इस तरह महासत्त्व का वर्णन किया है और उसका स्वरूप पररूप बताया है।

आकाश के स्वरूप पररूप का विचार—महासत्ता के वर्णन से आकाश को भी समझ ले! समस्त क्षेत्र, काल में रहने वाला जो आकाश है उसका भी स्वरूप पररूप जान लेना चाहिए अर्थात् समस्त काल, क्षेत्र की अपेक्षा से आकाश का सत्त्व है और कुछ थोड़े क्षेत्र, काल की अपेक्षा से आकाश में असत्त्व है। जिसका भाव यह है कि आकाश तो सदाकाल रहता है और सब क्षेत्रों में रहता है। ऐसा नहीं है कि आकाश कुछ क्षेत्र में रहे और कुछ काल में। तो कुछ क्षेत्र काल में रहना जब आकाश का स्वरूप ही नहीं तो उसकी अपेक्षा से वह सत्त्व नहीं हो सकता। यों आकाश में भी स्वद्रव्य क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से सत्त्व और पररूप की अपेक्षा से असत्त्व सिद्ध होता है। यों किसी भी तत्त्व का वर्णन करते जाये, जो विवक्षित है, जो दृष्टव्य है वह तो है स्वरूप और उससे इतर जो कुछ है वह है पररूप। यों स्वरूप से सत्त्व और पररूप से नास्तित्व की व्यवस्था बराबर सर्वत्र बनती है और स्वरूप में स्वरूपान्तर भी माना जाता है। स्वरूप का निर्णय करने जब चलेंगे तो वहाँ भी कोई स्वरूप और कोई पररूप बनेगा ही। यों सप्तभांगी में स्वरूप से अस्तित्व की सिद्धि है और पररूप से नास्तित्व सिद्ध है और उसी के आधार पर ७ भंग की निष्पत्ति होती है।

अस्तित्व की तरह नास्तित्व की वस्तुस्वरूपता का वर्णन—यहाँ शंकाकार कहता है कि वस्तु का स्वरूप तो अस्तित्व ही है। नास्तित्व वस्तु का स्वरूप नहीं हो सकता, क्योंकि नास्तित्व पररूप के आश्रय है। पररूप से नास्तित्व बताया गया है तो उसमें आश्रय पररूप का ही हुआ। यदि पररूप के अश्रित रहने वाला भी नास्तित्व वस्तु का स्वरूप मान लिया जाय तो पट में प्राप्त हुए रूपादिक भी घट का स्वरूप बन जायेंगे। फिर तो वस्तु की व्यवस्था न रहेगी। इस शंका के उत्तर में कहते हैं कि यह कहना युक्त नहीं है कि वस्तु का स्वरूप नास्तित्व नहीं, क्योंकि वस्तु में अस्तित्व और नास्तित्व दोनों के ही स्वरूप रूप मानने में प्रमाण मौजूद है। देखिये घट के स्वरूपादिक से सहित अस्तित्व जैसे प्रत्यक्ष से ग्रहण में आता है। मायने घट अपने स्वरूप से सहित है यह बात जैसे स्पष्ट विदित है इसी प्रकार पररूपादिक से सहित नास्तित्व भी घट में प्रत्यक्ष से ग्रहण में आता है। अर्थात् यह भी विदित हो रहा है कि घट में पररूप का नास्तित्व है। जैसे घटः घटत्वेन अस्ति, घट घटरूप से है, यह प्रतीति अबाधित है उसी प्रकार घट घटरूप से नहीं है, यह भी प्रतीति निर्वाध हो रही है।

अनुमान प्रयोग से नास्तित्व की वस्तुस्वरूपता का समर्थन—अस्तित्व की तरह नास्तित्व भी वस्तु का स्वरूप है, इस विषय में अनुमान का प्रयोग करके समझा जा सकता है कि अस्तित्व और नास्तित्व ये वस्तु के स्वरूप हैं। प्रयोग है अस्तित्व स्वभाव नास्तित्व स्वभाव से अविनाभूत है विशेषण होने से, साधर्म्य की तरह। जैसे कि साधर्म्य वैधर्म्य से अविनाभूत है अर्थात् साधर्म्य कोई चीज है तब जब कि वह वैधर्म्य भी कुछ चीज है। अविनाभूत का अर्थ है कि एक अधिकरण में रहना। यह न हो तो यह न रहे, ऐसे नियमपूर्वक एक आधार में रहने का नाम है अविनाभूतपना। इस प्रयोग से भी सिद्ध होता है कि घट का अस्तित्व किसी नास्तित्व से अविनाभूत है तब जैसे अस्तित्व घट का स्वरूप है ऐसे ही नास्तित्व भी घट का स्वरूप है।

वैधर्म्य के बिना साधर्म्य हो सकने के कारण नास्तित्व के वस्तुस्वरूपसमर्थनार्थ प्रयुक्त अनुमान में दृष्टान्त की अयुक्तता की शंका—यहाँ शंकाकार कहता है कि यह बात तो युक्त नहीं जंची कि जैसे साधर्म्य वैधर्म्य से अविनाभूत होता है उसी प्रकार अस्तित्व भी नास्तित्व से अविनाभूत होता है क्योंकि कह कहाँ वैधर्म्य न भी हो तो भी साधर्म्य दिख जाता है। देखो यह एक प्रयोग है कि घट अभिधेय है अर्थात् कथन किया जाने योग्य है क्योंकि प्रमेयत्व धर्म होने से। घटः अविधेय प्रमेयत्वात् अब इस अनुमान में देखिये—जहाँ प्रमेत्वादिक हेतु है वहाँ वैधर्म के अभाव में साधर्म है। प्रमेयत्व कहने से सभी चीजें तो आ गयी। जगत में जो भी प्रमेय है वे सब सत् हैं। अब वैधर्म्य तो तब आता कि जो प्रमेयत्व न हो उसे भी ग्रहण करता, पर प्रमेयत्व न हो

उसका ग्रहण तो नहीं होता। तो साधर्म्य वैधर्म्य का साहचर्य तो न रहा। तब साधर्म्य वैधर्म्य के सदृश अस्तित्व नास्तित्व का अविनाभूत है यों कहना अयुक्त है। प्रकृत विषय था कि अस्तित्व नास्तित्व से अविनाभूत है और उसके लिए दृष्टान्त दिया—जैसे कि साधर्म्य वैधर्म्य से अविनाभूत है। लेकिन साधर्म्य तो वैधर्म्य से व्याप न रहा। तब उसका दृष्टान्त देकर अस्तित्व का नास्तित्व से व्याप्य सिद्ध करना अयुक्त है। स्पष्ट अर्थ इसका यह है कि प्रमेय सब पदार्थ है। तो जहां प्रमेयत्व सब पदार्थ है। तो जहां प्रमेयत्व है वहां प्रमेयत्व का अभाव तो न मिला और जो प्रमेय नहीं वह अवस्तु है उसका नाम ही क्या। तो देखिये—जब अभाव का हेतु कहीं न मिला, जो है वह सब प्रमेय है जो नहीं है उसका ग्रहण क्या? तो जब वैधर्म्य न मिल सकेगा तो उसके साधर्म्य तो हो गया। तब यह दृष्टान्त देना युक्त नहीं है।

नास्तित्व के वस्तुस्वरूपसमर्थनार्थ, प्रयुक्त अनुमान में प्रदत्त दृष्टान्त की युक्ता का समाधान—अब उक्त शंका का उत्तर सुनिये ! साधर्म्य के अधिकरणभूत आधार में जिसका रहना निश्चित हो उसको साधर्म्य कहते हैं पहिले साधर्म्य वैधर्म्य का स्वरूप निश्चित कीजिए। साधर्म्य किसे कहते हैं? साध्य के सद्ब्लाव के अधिकरण में रहने को साधर्म्य कहते हैं। और, साध्य के अभाव का अधिकरण में रहने रूप से जो निश्चित हो उसे वैधर्म्य कहते हैं। अब दृष्टान्त से सम्बन्धित अनुमान जो शंकाकार ने लिया, उसमें साध्य है अभिधेयपन। किया था ना अनुमान कि घट अभिधेय है प्रमेयत्व होने से। तो यहां साध्य है अभिधेयपन उसके अभाव का अधिकरण है खरगोश के सींग आदिक अर्थात् जहां प्रमेयपना न हो ऐसी बात कह रहे हैं। खरगोश के सींग नहीं है और उसमें प्रमेयत्व की वृत्ति भी नहीं है। साध्य के अभाव में साधन का न होना, यही बात तो वैधर्म्य में घटायी जायगी। तो देख लीजिए, खरगोश के सींग अभिधेय भी नहीं और प्रमेय भी नहीं तब वैधर्म्य कैसे न मिला? खरगोश के सींग अवस्तु होने से अभिधेय नहीं हो सकते और अवस्तु होने से प्रमेय भी नहीं हो सकते। तो इस अनुमान में भी वैधर्म्य मौजूद है अतएव दृष्टान्त अयोग्य न रहा।

नास्तित्व की अस्तित्व से अविनाभूतता का कथन—नास्तित्व भी अस्तित्व शब्द से अविनाभूत है विशेषण होने से, वैधर्म्य की तरह। इस अनुमान से भी अस्तित्व और नास्तित्व के अविनाभूत की सिद्धि होती है। स्वरूप से अस्तित्व होना, पररूप से नास्तित्व हुए बिना नहीं हो सकता। पररूप से नास्तित्व होना स्वरूप से अस्तित्व हुए बिना नहीं हो सकता। अतएव यह कहना कि वस्तु का स्वरूप अस्तित्व ही है नास्तित्व नहीं है यह बात अयुक्त है। पट आदिक के नास्तित्व का आधार तो घट में बनाया गया है। घट में घट का नास्तित्व है। तो पट का नास्तित्व घट के

आश्रित हुआ, न कि पररूप के आश्रित हुआ। तो जैसे अस्तित्व वस्तु का स्वरूप इसी प्रकार नास्तित्व भी वस्तु का स्वरूप है। अब शंकाकार कहता है कि देखिये! एक यह अनुमान बताया गया कि पृथ्वी जल आदिक से भिन्न है, गंधवान् होने से। एक सिद्धान्त में पृथ्वी को गंधवान माना जाता है, जल को रसवान माना हैं और अग्नि को रूपवान माना है। उस सिद्धान्त के अनुसार चूंकि पृथ्वी गंधवान है और गंध जलादिक में नहीं है अतएव जलादिक से भिन्न पृथ्वी सिद्ध होती है। गंधवान होने से, इस अनुमान में जो-जो हेतु दिया गया है वह केवल व्यतिरेकी है अर्थात् इसके उदाहरण से वैधम्य तो मान लिया जाएगा, याने जिसमें साध्य नहीं, साधन नहीं ऐसा दृष्टान्त तो मिल जायगा, पर साधम्य न मिलेगा। क्योंकि पृथ्वी में तो सब पृथ्वी आ गई और पृथ्वी ही गंधवान है अब और चीज अगर उदाहरण के लिये मिले कि जिसमें साधम्य मिले तब तो अनुमान ठीक हो, लेकिन ऐसा कोई दृष्टान्त नहीं है। तब केवल व्यतिरेकी हेतु में वैधम्य तो मिलेगा पर साधम्य न मिलेगा। तब यह भी दृष्टान्त देना कि नास्तित्व अस्तित्व का अविनाभूत है विशेषण होने से वैधम्य की तरह, यह दृष्टान्त युक्त नहीं बैठता। अब उक्त शंका के उत्तर में कहते हैं कि केवल व्यतिरेकी हेतु में भी साधम्यपना घटादिक में सम्भव ही है। जो अनुमान बताया गया हैं कि पृथ्वी जलादिक से भिन्न है गंधवान होने से इस हेतु में भी साधम्य मिल जायगा घट की तरह पृथ्वी जल आदिक से भिन्न है गंधवान होने से। जैसे कि घट। यह साधम्य कैसे मिल गया कि साधम्य के लिये यह नियम नहीं बन सकता कि जो पक्ष से भिन्न हो वही साधम्य हो, पक्ष नहीं हो। साधम्य के लिए तो इतना देखना है यहां कि जलादिक से भेद का अधिकरण होना चाहिए। याने जो जलादिक से भिन्न हो बस वह साधम्य बन जायगा। जो साध्य का अधिकरण हो, जहा साध्य के सद्वाव पाये जायें वे सब साधम्य कहलाते हैं। तो यहां साध्य बनाया गया है जलादिक से भिन्न होना तो जलादिक से भिन्न होने का अधिकरण तो घट भी है और वहां गंधवत्त्व हेतु निश्चित रूप से पाया जा रहा है। इसलिए साधम्य तो बराबर सही बन रहा है, ऐसा नहीं कह सकते कि यहां वैधम्य साधम्य के बिना रह गया। तो जैसे वैधम्य साधम्य से अविनाभूत है इसी प्रकार नास्तित्व भी अस्तित्व स्वभाव से अविनाभूत है। अतः यह नहीं कह सकते कि वस्तु का अस्तित्व ही स्वरूप हुआ, नास्तित्व न हुआ या नास्तित्व ही स्वरूप हुआ अस्तित्व न हुआ।

नास्तित्व का अस्तित्व से अविनाभूत होने के सम्बन्ध में शंका व समाधान—अब शंकाकार कहता है कि आपका यह कथन कि नास्तित्व अस्तित्व के बिना नहीं हो सकता, अयुक्त है क्योंकि हम आपको ऐसा उदाहरण देंगे जहां नास्तित्व है और अस्तित्व नहीं हैं। जैसे खरगोश के सींग, आकाश के फूल, मेंढक की चोटी तो बतलाओ ! यहां अस्तित्व कहा ? नास्तित्व ही तो

है। तो इन दृष्टान्तों में अस्तित्व के बिना भी नास्तित्व देखा गया, फिर यह व्याप्त कैसे बनाई जा सकती है कि नास्तित्व अस्तित्व का अविनाभावी हैं या अस्तित्व नास्तित्व का अविनाभूत है? इस शंका के उत्तर में कहते हैं कि भाई, खरगोश वगैरह के सींग भी जो उदाहरण में बताये हैं वहां भी अस्तित्व सिद्ध हो सकता है। खरगोश के सींग का नास्तित्व अस्तित्व का अविनाभूत है, वह किस प्रकार ? सो सुनो ! देखिये, सींग तो प्रसिद्ध है ही। अब जो सींग गाय के मस्तक में समवाय रूप से है अर्थात् गाय के तो सींग है ना, और वह सींग गाय के मस्तक में समवाय रूप से है। याने सभी मिलकर तो वह मस्तक है और वहाँ वह सींग है। तो जो सींग गाय के मस्तक के समवाय रूप से प्रसिद्ध है वही सींग खरगोश आदिक के मस्तक में समवाय रूप से नहीं है, यह निश्चित हो जाता है ना ? तो देखो ! उस ही का अस्तित्व बन गया, नास्तित्व बन गया। जैसे कि कछुवा के रोम नहीं होते, लेकिन स्याद्वाद विधि से यहां भी परखियें कि नास्तित्व भी अस्तित्व का अविनाभूत है। मेंढक आदिक के समवाय रूप से जो रोम होना प्रसिद्ध है वह रोम कछुवा आदिक के समवाय रूप से नहीं है, यह बात तो मानोगे ना ? तो देखिये ! नास्तित्व अस्तित्व से अविनाभूत बन गया अथवा जैसे आक्षेप में कहा गया था कि आकाश के फूल में कैसे नास्तित्व अस्तित्व में अविनाभूत रहा ? सो सुनो ! वहां पर भी यह बात है कि जो फूलपना बनस्पति के सम्बन्धी रूप से प्रसिद्ध हैं वह ही फूल आकाश के सम्बन्धी रूप से नहीं है। तो देखो ! उसमें भी नास्तित्व और अस्तित्व से अविनाभावी बन गया तो यों यह बात प्रकट सिद्ध है कि अस्तित्व और नास्तित्व परस्पर में अविनाभूत होकर ही रहा करते हैं। अतएव वस्तु का जैसा अस्तित्व स्वरूप हैं उस ही प्रकार नास्तित्व भी स्वरूप हैं।

नास्तित्व का अस्तित्व से अविनाभूत होने के सम्बन्ध में अन्यवाद—अन्यवादीजन इस सम्बन्ध में ऐसा विचार रखते हैं कि जैसे देवदत्त आदिक शब्द बोला तो देवदत्त शब्द में शक्ति क्या है ? अर्थात् देवदत्त कहने से किसका बोध हुआ है ? तो वह बोध हुआ है देवदत्त के शरीर से सहित आत्मा का। तो देवदत्त कहने से आत्मा का ज्ञान किया गया। कहते भी हैं ऐसा कि देवदत्त जानता है, देवदत्त सुख का अनुभव करता है, इससे सिद्ध है कि देवदत्त शब्द कहकर देवदत्त के आत्मा का बोध किया जाता है। इसी प्रकार मेंढक आदिक शब्द बोलते हैं तो उससे किसका बोध हुआ ? मेंढक आदिक के शरीर में रहने वाले आत्मा का बोध हुआ। तो इस तरह कर्म के आदेशवत नाना जाति सम्बन्ध को प्राप्त हुए जीव का जब यह जीव मेंढक की पर्याय में था तब मेंढक कहकर उस पर्याय के जीव का ग्रहण किया और मानो वही मेंढक का जीव मरकर स्त्री बन गया तो स्त्री का पर्याय में तो बड़ी लम्बी चोटी होती है। अगर यह कहा जाय कि यह मेंढक की चोटी है तो ऐसा कथंचित् कह सकते हैं अर्थात् जो स्त्री पर्याय में जीव है वह जीव पहिले

मेंढक पर्याय में था तो मेंढक कहकर उस जीव को लिया और चोटी कहकर स्त्री भाव की चोटी को लिया तब यह कह सकते हैं कि यह मेंढक की चोटी है। तो प्रत्यभिज्ञान को विषयभूत एक जीव है और एक जीव का ही सम्बन्ध है। मेंढक भी वही था और स्त्री भी वही बना तब जब स्त्री की चोटी का उपचार मेंढक के साथ लगाया गया तो देखो अगर कोई यह कह दे कि मेंढक की चोटी, तो इसका भी अस्तित्व बन गया। मेंढक के शरीर से सहित आत्मा को मेंढक के शरीर के समान काल में यद्यपि चोटी नहीं है उसका वहां नास्तित्व है मगर वह जीव जब स्त्री पर्याय में आया तो उसके चोटी हुई यों कथंचित् मेंढक की चोटी का अस्तित्व है। अब नास्तित्व की बात सुनिये ! कोई जीव स्त्री था तब चोटी थी अब वही मेंढक बना तो अब तो चोटी नहीं है अब इस काल की अपेक्षा से कहिये कि मेंढक के चोटी का नास्तित्व ।

प्राणीनाम से शरीर वाच्य मानकर भी नास्तित्व का अस्तित्व से अविनाभावी होने के उदाहरण—यदि देवदत्त आदिक शब्द मंडूक आदिक शब्द उस शरीर के बोधक माने जायें जीव के बोधक न माने क्योंकि व्यवहार भी ऐसा होता है कि देवदत्त उत्पन्न हुआ और देवदत्त नष्ट हुआ तो वह ही देवदत्त बंध के प्रति एक रूप से बंधवान होने से जीव का बोधक होता है। लेकिन यहां देवदत्तादि शब्द से शरीर वाच्य मानकर सुनिये ! अब देखिये, कि मेंढक का शरीर जब गुजर गया और मेंढक का शरीर मिट्टी में मिल गया और वे ही परमाणु किसी वृक्ष में आ गए और वृक्षों के फलों का मानों स्त्री ने आहार किया और उसके ही परमाणु चोटी रूप बन गए तो कह सकते ना कि मेंढक की चोटी यदि मंडूक शब्द कहकर जीव का बोध करेंगे तो भी मंडूक की चोटी, यह बात बन जाती है। और, मंडूक शब्द कहकर यदि शरीर का बोध करेंगे तो मंडूक की चोटी, वहां भी यह अर्थ बन जाता है। तो यों बंध्या पुत्र अथवा खरगोश के सींग, मनुष्य के सींग, गधा के सींग, कछुवा के रोम, इन सबका भी अस्तित्व कथंचित् सिद्ध कर लिया जाता है। जैसे मान लो आज बंध्या शरीर का धारी जीव है तो इस जन्म में यद्यपि पुत्र नहीं है तो भी उसके शरीर में पुद्धल के अवयव ऐसे हैं कि जब उसके पुत्र हुआ था तो उस दशा को लेकर बंध्या पुत्र का अस्तित्व और बंध्या दशा में पुत्र का नास्तित्व ये दोनों बातें सिद्ध हो जाती हैं। इस प्रकार खरगोश के सींग यह भी कहा जा सकता । कोई जीव खरगोश था और मरकर गाय हुआ तो अब गाय में सींग आये। जीव है वही। तो खरगोश के सींग कहना यह बात युक्त हो सकती है। और मानों कोई गाय था तब तो वह सींग थे अब मरकर खरगोश हुआ तो इस समय सींग नहीं है सो वर्तमान में यह बात युक्त है कि खरगोश के सींग का नास्तित्व है, कोई जीव पहिले कछुवा था, अब वह मरकर मेंढक की पर्याय में आ गया हैं अब उसके रोम हो गए हैं तो कछुवा कहकर लिया पहिले का जीव और रोम हैं इस समय मेंढक की अवस्था में तो कह

सकते कि यह कछुवा के रोम हैं। कोई कहे कि आकाश के फूल का अस्तित्व कैसे बनाओगे ? तो सुनो ! जैसे जहां फूल हैं वहां पेड़ है और वहीं आकाश हैं तो जैसे पेड़ का फूल कहा जा सकता है ऐसे ही आकाश का फूल कहा जायगा क्योंकि पेड़ में भी फूल हैं और आकाश में भी फूल है। तो यह सब कथंचित् दृष्टियों से वर्णन चल रहा है। इन दृष्टियों से कहा जा सकता है कि जो नहीं भी हैं उनका भी कथंचित् अस्तित्व है। यह सब प्रकरण इस बात पर चल रहा है कि शंकाकार ने यह कहा था कि अस्तित्व नास्तित्व से अविनाभावी नहीं है, इस कारण में साधर्म वैधर्म्य का दृष्टान्त देना अयुक्त है। तो सिद्ध किया गया कि जितना नास्तित्व है वह अस्तित्व से अविनाभूत है और जितना अस्तित्व है यह नास्तित्व से अविनाभूत है। इस ही प्रकरण को लेकर पहिले यह बताया गया था कि जैसे घट घटरूप से है। किन्तु पटरूप से नहीं है। तो यहां घट का अस्तित्व पट के नास्तित्व से अविनाभूत हो गया। अब यह कहा जा रहा है कि जो नास्तित्व है वह नास्तित्व भी अस्तित्व का अविनाभूत है। जैसे खरगोश के सींग इनका भी कथंचित् अस्तित्व है अथवा कछुवा के रोम, इनका भी कथंचित् अस्तित्व हैं, तो यह नास्तित्व अस्तित्व का अविनाभाव है।

लतापुष्प व आकाशपुष्प के शब्दों पर कुछ चर्चायें—अब यहां कोई शंका करता है कि जैसे बेला की लता से जो फूल उत्पन्न होता है उसे बेला का फूल कहते हैं, क्योंकि बेला की लता की जड़ों से जल का आहरण हुआ, उससे उसका शरीर वृद्ध हुआ, उससे पुष्प निकले, पुष्प को आहार मिला, इस उपयोग से उसे यह कह सकते हैं कि यह बेला का फूल है, मगर आकाश का फूल यह कैसे कहा जायगा ? तो कथंचित् आकाश के फूल का अस्तित्व बताते हैं। अतः यह कह रहे हैं कि आकाश भी सब कार्यों में अवकाश चूंकि दे रहा है तो कुछ उपकार उसका भी है उसमें आकाश का कारण है। और, जब पुष्प अपने में उत्पन्न हुआ अथवा अपने में बढ़ा तो उस समय उसको साधन भी दिया गया। इसलिए आकाश का फूल ऐसा व्यवहार भी कह सकते हैं। शंकाकार यदि कहे कि आकाश की अपेक्षा से फूल तो बिल्कुल भिन्न पदार्थ है इसलिए आकाश का फूल यह व्यवहार नहीं हो सकता। तो इसका उत्तर यह है कि आकाश की अपेक्षा फूल को कथंचित् भिन्न कहा या सर्वथा ? यदि कथंचित् भिन्न कहते हो तो जैसे आकाश का फूल यह व्यवहार नहीं करते ऐसे ही बेला का फूल यह भी व्यवहार नहीं होता क्योंकि बेला लता की अपेक्षा से फूल भी कथंचित् भिन्न है और यदि कहा कि सर्वथा भिन्न है तो जैसे सर्वथा फूल को आकाश से भिन्न माना तो सर्वथा आकाश से भिन्न है ही नहीं। देखो ! द्रव्यत्व की अपेक्षा आकाश भी द्रव्य फूल भी द्रव्य उसमें अभेद है तो इस तरह कथंचित् आकाश का फूल ऐसा भी कहा जा सकता है। प्रयोजन यह है कि नास्तित्व अस्तित्व से अविनाभूत है। भले ही कोई पदार्थ

अत्यन्ताभावारूप है लेकिन उस अत्यंताभाव वाले पदार्थ का भी किसी न किसी रूप से अस्तित्व का बोध होता ही है। यों नास्तित्व अस्तित्व का अविनाभाव है।

अस्तिशब्द व वाच्यार्थ से जीवशब्द वाच्यार्थ को भिन्न अथवा अभिन्न मानने में शंकाकार द्वारा आपत्ति का प्रदर्शन—यहा शंकाकार कहता है कि अब प्रकृत बात पर आइये ! जैसे कहा—अस्ति एवं जीवः। इसमें अस्ति मायने कथंचित् है इस वाक्य में अस्ति शब्द का वाच्य तो हुआ सत्त्व और जीव शब्द का वाच्य भी हुआ कोई अर्थ। सो इन दोनों का वाच्य भिन्न स्वभाव वाला है अथवा अभिन्न स्वभाव वाला है ? यदि दूसरा पक्ष मानते हैं कि भिन्न स्वभाव है याने अस्तित्व का वाच्य अर्थ दूसरा है और जीव का वाच्य अर्थ दूसरा है तब तो वाक्य न बना, सम्बन्ध न बना, जीव का असत्त्व भी हो गया। यदि अभिन्नता स्वीकार करते तो एक शब्द कुछ भी बोला अन्य शब्द बोलना व्यर्थ है क्योंकि अस्ति शब्द से भी जीव जाना गया और जीव शब्द से अस्ति जाना गया, अब अस्ति और जीव में किसी प्रकार का भेद न रहा। तो भेद मानते हो तब भी बात नहीं बनती। अभेद मानते हो तब भी बात नहीं बनती । अभेद होने से तो समानाधिकरण न बनेगा। विशेषण विशेष्यभाव भी न बनेगा। क्योंकि अभिन्न में ये दोनों बातें नहीं होती। एक आधार में रहने वाली बात न बनेगी, क्योंकि वे दोनों एक हैं। क्या घट और कलश में समानाधिकरण व विशेष्य विशेषणभाव हो सकता है ? एक मानने से भी न बनेगा, भेद मानने से भी न बनेगा। इसी प्रकार दोनों ही दशाओं में विशेष्य विशेषण भाव न बनेगा। जब जीवः अस्ति इनमें जीव और अस्ति का परस्पर में सम्बन्ध क्या है ? सो बताओ ! यह एक इस प्रकरण में अंतिम प्रश्न है। सप्तभंगों में से यह प्रथम और द्वितीय भंग का स्वरूप चल रहा है। घट में स्याद् अस्ति एवं घटः स्याद् नास्ति एव, इसमें सब बातें बतलाकर अन्त में यह पूछा जा रहा है कि अस्ति शब्द से क्या ग्रहण में आया ? और जीव शब्द से क्या ग्रहण में आया ? अगर अस्ति शब्द से भी जीव ग्रहण में आये और जीव शब्द से भी अस्ति ग्रहण में आया ? अगर अस्ति शब्द से भी जीव ग्रहण में आये और जीव शब्द से भी अस्ति ग्रहण में आये तब तो दो प्रयोग करना अनर्थक है और यदि ये भिन्न-भिन्न अर्थ के वाचक हैं, तो अस्ति किसी अन्य अर्थ को कहता है और जीव किसी अन्य अर्थ को कहता है तब तो जीव असत् होगा, क्योंकि वह असत् नहीं, इसमें किसी प्रकार का सम्बन्ध भी नहीं बन सकता। जैसे घट कलश आदिक एक अर्थ के वाचक शब्दों का समानाधिकरण और विशेष्य विशेषण भाव नहीं होता ऐसे ही जीव और अस्ति शब्द का समानाधिकरण और विशेष्य विशेषण भाव न होगा। और, अस्ति और जीव का यदि एक ही अर्थ है तब दोनों में से किसी एक शब्द का प्रयोग ही करना चाहिए, दोनों का न करना चाहिए क्योंकि एक में ही दूसरे का अर्थ आ गया है।

अस्तिशब्दवाच्यार्थ से जीव शब्दवाच्यार्थ को अभिन्न मानने के पक्ष में अन्य दोष का शंकाकार द्वारा प्रतिपादन—अब अभिन्न स्वभाव के पक्ष में दूसरी बात भी देखिये ! कि सम्पूर्ण द्रव्य तथा पर्याय ये सत्त्व के विषय हैं। अर्थात् सब कुछ सत्त्वरूप है, तब अस्ति से तो सत्त्व बोला गया और सत्त्व से अभिन्न स्वभाव जीव मान लिया है तो यह जीव भी सब द्रव्य रूप हो गया और सब पर्यायरूप हो गया। यदि अस्ति और जीव को अभिन्न मानते हो क्योंकि अस्ति से तो सत्ता का बोध हुआ और सत्त्व में समस्त पदार्थ आये और उससे जीव को माना अभिन्न तो जीव सब पदार्थ रूप से हुए अथवा सब पदार्थ जीवरूप बन गया कदाचित् इस दोष के निराकरण के लिए अस्ति शब्द के वाच्य अर्थ सत्त्व से भिन्न ही जीव शब्द का वाच्यार्थ मानते हो तो सत्त्व से भिन्न मानने से जीव का असत्त्व प्राप्त हो गया, क्योंकि अस्ति का वाच्यार्थ हैं सत्ता, फिर जो सत्ता से भिन्न हो वह तो असत् हो गया तो फिर इस अनुमान का प्रयोग भी हो सकता है कि जीव नहीं है क्योंकि वह अस्ति शब्द के वाच्यार्थ से भिन्न है। अस्ति का वाच्यार्थ है सत्ता और सत्ता से भिन्न हुआ यह जीव, अतएव जीव का सत्त्व सिद्ध न होगा। अतः क्या जीव से अस्ति भिन्न है अथवा अभिन्न है यह प्रश्न बराबर ही खड़ा रह गया है। तथा जैसे अस्तित्व जीव से भिन्न है ऐसे ही समस्त पदार्थों से भी अस्तित्व भिन्न हो गया। फिर तो अस्तित्व का कोई आधार ही न रहा। जैसे खरगोश के सींग के अस्तित्व का आधार नहीं है शंकाकार कह रहा है कि ऐसा भी नहीं कह सकते कि जीवादिक से भिन्न भी अस्तित्व समवाय से जीवादिक में रहता है क्योंकि समवाय से अस्तित्व का पदार्थों में रहने का निराकरण किया गया है। यों अस्ति एवं जीवः इससे जीव और अस्ति इन दोनों का अधिकरण नहीं बन पाता है।

अस्तिशब्दवाच्यार्थ से जीव शब्दवाच्यार्थ का कथंचित् भेद व कथंचित् अभेद रूप से वर्णन में समाधान—अब शंकाकार की शंका का समाधान देते हैं कि देखिये ! अस्ति शब्द का जो वाच्य अर्थ है और जीव शब्द से जो वाच्य अर्थ है उन दोनों अर्थों में द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा से अभेद है और पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा से भी भेद है। तब अनेकान्तवादियों को इस सम्बन्ध में कोई दोष नहीं दिया जा सकता। अस्ति शब्द के अर्थ और जीव शब्द के अर्थ में भेद और अभेद हैं, यह बात अच्छी तरह से प्रतीत होती है इस बात का आगे स्पष्ट रूप से निरूपण करेंगे ही, किन्तु यहां इतना निर्णय कर लेना कि अस्ति जीवः इसमें जो जीव के अस्ति की बात कहीं गई है वह बराबर प्रतीति सिद्ध है। यहां तक सप्तभंगी में जो प्रथम दो अंग कहे गए है—स्याद अस्ति एव, स्यादनास्ति एव, इन दोनों भंगों का भली प्रकार से वर्णन किया गया। अब आगे तृतीय भंग के सम्बन्ध में निरूपण करेंगे।

तृतीय भंग के विवरण का उपक्रम—तीसरा भंग है घट स्यात् अस्ति स्यात् नास्ति , घट कथंचित् है और कथंचित् नहीं है। यहां दो धर्मों को घटरूप धर्मों में क्रम से अर्पित किया गया है। इस तृतीय भंग का अर्थ यह हुआ कि घटरूप एक धर्मों को विशेष्य मानकर उसमें क्रम से अर्पित विधि और प्रतिषेध के प्रकार का बोध उत्पन्न कराया गया है। जिसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि क्रम से अर्पित स्वरूप की अपेक्षा से अस्ति और पररूप की अपेक्षा से नास्ति, इन दोनों बातों में तन्मय यह घट है ऐसा अर्थ समझना चाहिए। जिस ज्ञान में पदार्थ तो विशेष्य होवे और क्रम से योजित सत्त्व असत्त्व विशेषण होवे ऐसे ज्ञान का जनक वाक्य तृतीय भंग है।

चतुर्थ भंग के विवरण का उपक्रम—अब चतुर्थ भंग की बात सुनो। एक साथ स्वरूप और पररूप की विवक्षा बनायी जाय तो उसमें स्याद् अस्ति, स्याद् नास्ति इन किन्हीं भी शब्दों में नहीं कहा जा सकता। अतएव वहां स्याद् अवक्तव्य घट है यह चौथा भंग बनता है। इस चौथे भंग का भाव यह है कि यहां पदार्थ तो विशेष्य बना और अवक्तव्यपना विशेषण है। ऐसे बोध के जनक वाक्य को चतुर्थ भंग का लक्षण कहा गया है। याने जिस ज्ञान में कोई पदार्थ तो विशेष्य हुआ और अवक्तव्यपना विशेषण हुआ, उस ज्ञान को उत्पन्न करने वाला वाक्य चतुर्थ भंग है इसी प्रकार कथंचित् अवक्तव्यपने का आश्रयभूत घट है इस चतुर्थ भंग से यह ज्ञान होता है। सीधे शब्दों में इसे यों कह लीजिए कि जब द्रव्यार्थिकनय की दृष्टि से यह बताया गया है कि घट है तो पर्यायार्थिक अथवा भेददृष्टि से पररूप की अपेक्षा से यह बताया गया कि घट कथंचित् नहीं है तो इन दो बातों को सुनकर कोई यह जिज्ञासा करे तो वास्तव में बात है क्या, एक शब्द में बताओ ? तो वहां उत्तर आयगा कि स्यात् अवक्तव्य है घट।

घट की अवक्तव्यता के सम्बन्ध में शंका और समाधान—अब यहां शंकाकार कहता है कि घट को अवक्तव्य कैसे कह दिया ? क्योंकि किसी न किसी रीति से सभी पदार्थ कहे ही जाते हैं। घट अवक्तव्य है, चलो इस रूप से घट की ही बात कहीं। तो अवक्तव्य कैसे हो गया? इस शंका के उत्तर में कहते हैं सभी शब्द एक काल में ही प्रधानता से सत्त्व और असत्त्व दोनों का प्रतिपादन नहीं कर सकते। शब्द में एक ऐसी शक्ति ही नहीं है कि एक काल में प्रधानता से सत्त्व और प्रधानता से असत्त्व दोनों को प्रकट कर दे। एक काल की प्रधानता से एक ही पदार्थ का शब्द विषय बना है इसलिए एक पदार्थ की शक्ति एक ही पदार्थ का विषय करने वाला सिद्ध होता है। यद्यपि कोई शब्द ऐसे भी तो होते कि जिनके अर्थ कई हों। जैसे सैंधव शब्द के दो अर्थ है—नमक और घोड़ा। तथापि एक काल में एक वातावरण में एक ही अर्थ होगा, किसी पुरुष ने जैसे भोजन के समय यह कहा कि सैंधव लाओ तो उस समय तो सैंधव का अर्थ नमक

ही है, न कि नमक और घोड़ा दोनों अर्थ बन गए। यदि वक्ता को दोनों चीजों की जरूरत होती तो वहां केवल सैंधव का प्रयोग न करके सैंधव लाओ और घोड़ा लाओ। दोनों को लाओ। ऐसा कहता, मतलब यह है कि एक बार उच्चारण किया हुआ शब्द एक ही अर्थ को ध्वनित करता है तो शब्द में ऐसी सामर्थ्य नहीं है कि एक ही काल में वह सत्त्व और असत्त्व दोनों को प्रधानता से वर्णन कर दे। जैसे अस्ति, यह पद सत्तारूप अर्थ को ही कहता है न कि असत्त्वरूप अर्थ को। ऐसे ही नास्ति यह पद असत्त्व रूप अर्थ को ही जताता है न कि सत्त्व रूप अर्थ को। यदि अस्ति आदिक में से एक ही पद सत्त्व और असत्त्व दोनों का वाचक बन जाय तब फिर दोनों का प्रयोग करने की आवश्यकता ही क्या है? एक का ही प्रयोग करे एक का ना करें। जब एक ही पद से सत्त्व को जान लिया, असत्त्व को भी जान लिया तो वहां दोनों के निरूपण की आवश्यकता क्या हैं? पर आवश्यकता है उन दोनों से जुदे-जुदे अर्थ का लोगों का बोध होता है। इससे यह बात सिद्ध हुई कि एक शब्द व पद एक काल में प्रधानता से एक ही अर्थ को कह सकता है। तो जब शब्दों में यह शक्ति है वह ही काल में बतायेगा। तो कोई शब्द ऐसा नहीं होता कि जो सत्त्व और असत्त्व दोनों का प्रधानता से एक काल में वर्णन कर दे। इसी कारण स्याद अवक्तव्य नाम का चतुर्थ भंग होना ही पड़ा।

एकपद की एकार्थवाचकता के नियम में शंका और उसका समाधान—अब शंकाकार कहता है कि सभी एक ही अर्थ के वाचक होते हैं अनेक अर्थ के वाचक होते हैं, अनेक अर्थ के नहीं। यदि ऐसा नियम मान लोगे तो नाना अर्थों के वाचक जो शब्द हैं उनका फिर उच्छेद हो जायगा। फिर तो कोई शब्द भी ऐसा न कहलायेगा कि जो नाना अर्थों का बोध कराये लेकिन, कोष में ऐसे अनेक शब्द हैं जो अनेक अर्थों के बोधक होते हैं। इसके उत्तर में कहते हैं कि ऐसी भी शंका न कीजिए ! जहां कोई शब्द जितने अनेक अर्थों का बोधक है तो वहां उतने ही शब्द समझ लेना चाहिए। जैसे कि गौ शब्द को पशु, पृथ्वी, किरण, स्वर्ग आदिक अनेक अर्थों के वाचक रूप से बताया गया है, तो समझिए कि वह गौ शब्द भी यथार्थ में अनेक ही है लेकिन एक प्रकार का उच्चारण है उनका, इस समानता से उनके एकत्व का व्यवहार करते हैं लोक में। मतलब गौ एक सा उच्चारण हो रहा, मगर जितने अर्थों का यह प्रतिपाद है उतनी तरह के विशेषणों से सहित शब्द है। यदि ऐसा न माना जाय तब तो सम्पूर्ण जगत एक ही शब्द से वाच्य हो जायगा। फिर अनेक शब्दों का प्रयोग करना ही व्यर्थ हो जायगा। शब्द के नाते से सब शब्द एक ही है। शब्द समस्त पदार्थों का जनक होगा। फिर किसी शब्द से कुछ भी कह दिया जाय, कोई नियम न रह पायेगा। और भी देखिये ! समभिरूढ़नय की अपेक्षा से जैसे शब्द भेद से अर्थ का भेद माना जा रहा है—शुक्र, इंद्र व पुरन्दर ये तीन शब्द इन्द्र के पर्यायवाची शब्द हैं चूंकि

तीन शब्द हैं तो उस इन्द्र में भी तीन अर्थ रख दिए गए। ऐसे ही अर्थ के भेद से शब्दभेद भी सिद्ध है। जिस शब्द के अर्थ अनेक हैं उन अर्थों के भेद से उस शब्द में अनेक भेद मानने होंगे। यदि ऐसा न माना जाय अर्थात् अर्थ के भेद होने पर भी शब्द का भेद न माना जाये तो वाच्य वाचक का जो नियम है वह नियम न रह पायगा। याने शब्द तो वाचक है और जो पदार्थ कहा गया वह वाच्य है। जैसे गो शब्द में ग् और ओ ये दो शब्द है। यह गौ पद गाय पशु अर्थ को कहता है तो दूसरे पृथ्वी आदिक अर्थरूप वाच्य का वाचक दूसरा है गो शब्द समझा जाता है। अथवा वातावरण और प्रकरण के भेद से एक समान उच्चारण में आया हुआ भी शब्द भिन्न रूप से परख लिया जाता है। यह सिद्ध हुआ कि एक शब्द एक साथ प्रधानता से दो अर्थों का प्रतिपादक नहीं हो सकता, इस कारण स्याद अवक्तव्य ऐसा भंग बोलना युक्त है।

एक पक्ष की एकार्थवाचकता की भाँति एक वाक्य की एकार्थविषयता का निरूपण—जिस प्रकार एक ही अर्थ का वाचक अनेक अर्थों का नहीं इसी तरह एक वाक्य एक साथ अनेक अर्थों का विषय करने वाला नहीं होता। जैसे कहा स्याद अस्ति नास्ति एव घटः अर्थात् स्वरूप चतुष्टय से तो अस्तित्व और पररूप चतुष्टय से नास्तित्व इन दोनों धर्मों का क्रम से विषय किया है और फिर उनका उपचार से एकत्व स्वीकार किया है। याने दो धर्मों की बात क्रम से कहकर उनको किसी एक सीमा में एक संख्या का रूप देना यह उपचार से स्वीकार किया है। अथवा उनमें क्रम से विवक्षित जो दोनों का प्राधान्य है वह एक वाच्य है। वह ही अस्ति और नास्ति शब्द से कहा गया है। उस प्रकार के वाक्य एक अर्थ के कहने वाले होते हैं। यों इनमें एक वाक्यपना है। सभी वाक्य एक क्रिया प्रधान होने से एक अर्थ को ही विषय किया करते हैं, प्रत्येक वाक्य में क्रिया एक ही होती है। क्रिया के अनुसार वाक्यों की संख्या कहलाती है। तो एक क्रिया होने से एक ही वाक्य कहलाता है। और क्रिया में बताया गया है कोई काम। उस दृष्टि से बात एक वाक्य में एक ही सम्भव हुई। यों शब्द में एक अर्थ को ही समझाने की शक्ति सिद्ध होती है। शब्दों में किसको बताने का सामर्थ्य है उसका उल्लंघन करके अन्य अर्थ के प्रतिबोध में उनकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती।

अवक्तव्य भंग की सकारण उपपत्ति का वर्णन—अब यह निर्णय करने के पश्चात् कि शब्द एक काल में एक ही अर्थ का वाचक होता है, निर्णय करे कि इस तृतीय भंग का अर्थ क्या हुआ? इसमें जो अस्ति शब्द हैं उसका सामर्थ्य तो सत्त्व मात्र कहने में है। असत्त्वादिक अनेक धर्मों के कहने की सामर्थ्य नहीं हैं। इसी प्रकार नास्ति जो शब्द कहा गया हैं उसके असत्त्व मात्र की वचन में सामर्थ्य है सत्त्वादिक अनेक धर्मों के कहने में नास्ति का सामर्थ्य नहीं हैं। फिर

इसमें जुड़ा हुआ है स्यात् शब्द। स्यात् निपात शब्द है। अस धातु के लिंग लकार में स्यात् शब्द अव्यय बनाकर निपात शब्द बनाया गया है। जिस स्यात् शब्द का अर्थ किया है—अनेकान्त सामान्य। तो वह स्यात् कहने में ही अपनी सामर्थ्य रखता है। स्यात् शब्द न तो एकान्त का वाचक हैं और न ही अनेकान्त विशेष का। स्यात् शब्द कहने से सामान्यतया अनेकान्त की प्रसिद्धि है। अनेकान्त में जिस किसी प्रसंग की विशेषता उत्पन्न करने के लिए विशेष अनेकान्त बताना होता है सो अन्य शब्द उसके साथ लेना होता है तो स्यात् शब्द अनेकान्त सामान्य का वाचक है। वह न तो एकान्त का वाचक हैं और न अनेकान्त विशेष का स्यात् शब्द निपात है और वह वाचक और द्योतक भी है। निपात शब्द द्योतक तो होते ही है पर कोई निपातवाचक भी होते हैं तो स्यात् शब्द हैं अनेकान्त सामान्य का वाचक। अब द्योतकपने की दृष्टि से स्यात् शब्द की सार्थकता समझे तो समझिये। यह स्यात् शब्द अनेकान्त की सूचना में अपनी सामर्थ्य रखता है। अन्य बातों की सूचना में इसकी सामर्थ्य नहीं है। तो इस तरह शब्दों का प्रयोग है। वे शब्द जिसके वाचक है उसकी सूचना में ही सामर्थ्य रखते हैं। उसका उल्लंघन करके शब्द का प्रयोग अन्य जगह में लगे, ऐसा विद्वानों की गोष्ठी में स्वीकार किया गया है। यहां तक यह बात सिद्ध हुई कि कोई भी शब्द अपने एक अर्थ का ही वाचक है। तब तीसरे भंग में स्याद् अस्ति नास्ति कहा गया है। तो दो धर्मों को क्रम से अर्पित किया गया है। इन दो धर्मों का वाचक कोई एक शब्द नहीं हो सकता इसलिए चौथे धर्म में अवक्तव्य बताया गया है।

शंकाकार द्वारा एक शब्द की नानार्थवाचकता दिखाकर अवक्तव्य भंग की अनावश्यकता का प्रतिपादन—इस प्रसंग में शंकाकार कहता है कि भाई, संकेत के अनुसार ही तो शब्दों की प्रवृत्ति होती है। अब एक काल में सत्त्व और असत्त्व दोनों ही अर्थों का प्रतिपादक कोई शब्द बनें, ऐसे संकेत का निर्णय कर ले, तो देखो ! उस संकेत से दोनों ही अर्थों का बोध हो जायगा ना ? जैसे कि व्याकरण शास्त्रों में एक सन् संज्ञा बताई गई है। कृदन्त के प्रकरण में जहां शत् और शानच दो प्रत्यय का विधान बताया है तो दोनों प्रत्ययों का संकेत एक सन् शब्द से किया गया है। इससे जाहिर होता है कि एक शब्द कई अर्थों का संकेत कर सकने वाला भी माना गया है तब इसी प्रकार एक शब्द कोई सोच लीजिए जैसा कि जो स्याद् अस्ति और स्याद् नास्ति इन दोनों का बोधक हो जायगा। शत् और शानच में जो दो प्रत्यय होते हैं तो यों समझिये कि परस्मैपदी धातु में शत् प्रत्यय जुड़ जाता है, जिससे भवन् गच्छन् आदिक रूप बनते हैं और आत्मनेपदी धातु में शानच् प्रत्यय जुड़ जाता है, जिससे एधमान, वर्द्धमान आदिक शब्द बनते हैं अर्थ दोनों प्रत्ययों का एक है और दोनों प्रत्ययों का बोधक एक सन् शब्द बताया गया है। तो ऐसी पद्धति है कि कई अर्थों का संकेत करने वाला एक शब्द भी हुआ करता है। तो स्याद्

अस्ति नास्ति इन दोनों धर्मों का प्रतिपादक कोई एक शब्द का संकेत कर लीजिए। तब यह बात न रही कि एक शब्द केवल एक ही अर्थ का वाचक हुआ करता है। और भी देखिये ! चन्द्र और सूर्य दोनों का एक साथ बोध होवे उसके लिए एक संकेत शब्द दिया गया है पुष्पवन्त। पुष्पवन्त शब्द से सूर्य और चन्द्रमा इन दोनों का एक साथ बोध होता है। तो उससे भी यह जाहिर होता है कि एक शब्द नाना अर्थों का वाचक हो सकता है। तब यह कहना युक्त नहीं है कि शब्द चूंकि एक ही अर्थ को कहते हैं अतएव स्याद् अस्ति, स्यादनास्ति, इन दोनों का एक साथ शब्द से प्रतिपादन न हो सकने से अवक्तव्य नाम का चौथा अंग बनाया गया है।

एक शब्द की नानार्थ प्रतिपादनाशक्ति होने से अवक्तव्य भंग की आवश्यकता का सयुक्तिक विवरण—अब उक्त शंका के समाधान में कहते हैं कि देखिये ! ऐसा संकेत भी बनता है, जो अनेक अर्थों को बोध कराये, लेकिन वह भी वाक्य वाचक शब्द के अनुसार ही बनता है। वाच्य वाचक शब्द का उल्लंघन करके कहीं भी संकेत की प्रवृत्ति नहीं देखी गई। इस बात को इस दृष्टान्त से समझिए कि जैसे लोहे की सलाई काठ के छेदने और भेदने की सामर्थ्य रखती है, ऐसी वह लोहसलाई बज्र के छेदने भेदने की सामर्थ्य नहीं रखती तब यह सिद्ध हुआ कि एक लोह काठ को छेदने भेदने की शक्ति रखता है उसमें बज्र के लेखने काटने की शक्ति नहीं है। और जैसे उस लोह सलाई में बज्र के लेखने की अशक्ति है उस तरह काठ के छेदन भेदन की अशक्ति नहीं है। इस तरह से भी देखो कि जैसे काष में यह सामर्थ्य नहीं है कि वह लोह लेखनी द्वारा लिखित हो जाय इस तरह की बज्र में सामर्थ्य नहीं है कि वह लोह लेखनी द्वारा लिखित हो जाय और, जैसे बज्र में लोह द्वारा लेख्य होने की अशक्ति है उस तरह काष में लोह लेखनी द्वारा लिखा जाने छेदे भेदे जाने की अशक्ति नहीं है, इसी तरह यहां भी समझिये कि शब्द की भी एक बार एक ही अर्थ में प्रतिपादन करने की शक्ति है। अनेक अर्थों के प्रतिपादन की एक शब्द में शक्ति नहीं हैं। तो यहां तक यह निश्चय हुआ कि एक शब्द एक ही अर्थ का वाचक है अनेक अर्थों का नहीं। और इसी तरह एक अर्थ एक शब्द द्वारा वाच्य है उस प्रत्येक अर्थ में भी एक पद द्वारा वाच्य होने की शक्ति है। अनेक अर्थों के वाच्य होने की शक्ति नहीं है कि एक पद द्वारा अनेक अर्थ वाच्य हो जायें। अब जो एक उदाहरण दिया था पुष्पवंत शब्द का तो पुष्पवंत शब्द क्रम से दो अर्थों के प्रतिपादन की सामर्थ्य रखता है। अतएव इस उदाहरण से प्रकृत बात में कोई दोष नहीं दिया जा सकता। एक शब्द एक ही अर्थ का बोधक होता है और चूंकि धर्म यहां मूल में दो बताये गये अस्ति और नास्ति। तो इन दो धर्मों का प्रतिपादन एक शब्द द्वारा नहीं हो सकता है। अतएव स्याद् अवक्तव्य नाम का चौथा भंग बना है।

एक शब्द द्वारा अनेकार्थ का प्रतिपादन होने की पुनः शंका व उसका समाधान—अब शंकाकार यहां कहता है कि देखिये ! सेना, वन, युद्ध, पंक्ति, माला, पानक, ग्राम, नगर आदिक शब्द तो एक अर्थ के प्रतिपादन करने वाले देखे गये। जब सेना कहा तो उसमें हाथी, घोड़ा, प्यादे आदिक का समूह आ गया। तो एक सेना शब्द न कितने ही अर्थों का प्रतिपादन किया। वन कहा तो वन में जितने प्रकार के वृक्ष हैं, जितने प्रकार के नाले, नदी, पहाड़ आदि हैं, जितने प्रकार के पशु, पक्षी हैं उन सब का बोध हो जाता है। तो एक शब्द अनेक अर्थों का प्रतिपादक हो गया। ऐसे ही पानक (शर्वत) कहा तो उसमें इलायची, शक्कर आदिक अनेक चीजें पड़ती हैं। तो पानक, यह एक शब्द कह देने से उन अनेक रूपों का बोध हो गया। नगर कह देने से कितने ही मकान, कितने ही मनुष्य सभी का बोध हो जाता है। तो एक शब्द में अनेक अर्थों का प्रतिपादन करने का सामर्थ्य देखा गया है ना ? इसके उत्तर में कहते हैं कि भाई, वहां भी सभी शब्द एक अर्थ का प्रतिपादन करते हैं। सेना शब्द के द्वारा हाथी, घोड़े, प्यादे इन सबका समूहरूप कोई एक ही अर्थ कहा गया है। सेना ने अनेक अर्थ को नहीं कहा किन्तु सेना शब्द अन्य अनेक शब्दों का समूहरूप एक अर्थ हो जाता है। वन शब्द के कहने से कहीं अनेक वृक्ष नहीं कहे गये, किन्तु अनेक वृक्षों का समूहरूप एक पदार्थ कहा गया है। माला शब्द से अनेक फूलों को नहीं बताया गया है, माला अनेक फूलों का वाचक नहीं है। किन्तु अनेक फूलों का समूहरूप जो एक पदार्थ है उसका वाचक है। पानक कहा गया तो वह नाना अर्थों का वाचक नहीं है किन्तु इलायची, शक्कर आदिक बहुत से पदार्थों के समूहरूप एक अर्थ का वाचक है। यों ही नगर शब्द ने भी अनेक अर्थों को नहीं बताया, किन्तु मकान आदि के समूहरूप एक ही अर्थ को बताया है। तो इन शब्दों को पेश करके यह कहना कि देखो एक शब्द अनेक अर्थों का प्रतिपादक है सो बात अयुक्त है। इन शब्दों के कहने पर भी प्रत्येक शब्द से एक-एक अर्थ का प्रतिपादन हुआ है। तो यों सिद्ध हुआ कि शब्द एक ही अर्थ का प्रतिपादक होता है अतएव स्याद् अस्ति, स्यादनास्ति, इन दो के बाच्य का प्रतिपादक शब्द न होने से या इसका एक साथ कथन ना करना अशक्य होने से स्याद् अवक्तव्य नाम का चतुर्थ भंग बना है। तृतीय भंग और चतुर्थ भंग में यह अन्तर है कि तृतीय भंग तो उन दो धर्मों का क्रम से अर्पण करके बना है और अवक्तव्य में वे दोनों एक साथ अर्पित होकर अवक्तव्य हो सका तो यों क्रमयोजित दो धर्मोरूप तृतीय भंग हुआ और सहयोजित दो धर्मोरूप यह चतुर्थ भंग हुआ है।

वृक्षो वृक्षाः आदि पदों से अनेक का बोध होने से रूप शंका व समाधान—इस प्रसंग में शंकाकार कहता है कि यदि किसी प्रकार से कह दिया जाय कि एक शब्द एक ही अर्थ का प्रतिपादन करता है तो जब “वृक्षो” यह पद बोला गया तो दो वृक्षों का बोधक कैसे बन गया ?

अथवा वृक्षाः यह पद बोला गया तो यह बहुत से वृक्षों का बोधक कैसे बन जायेगा ? वृक्षों शब्द दो वचन है जिससे दो वृक्षों का बोध होता है तो शब्द तो यहाँ एक है और अर्थ बताया उसने दो वृक्ष, इसी प्रकार वृक्षाः यह बहुवचनान्त शब्द है तो यहाँ शब्द तो एक ही है और अर्थ कराया दो चार आदिक अनेक वृक्ष तो देखो एक शब्द द्वारा अनेक अर्थ कहे गये ना ? इस शंका के समाधान में कहते हैं कि देखिये व्याकरण शास्त्र में दो पञ्चतियां अपनाई गई है एक तो पाणिनी आदि के व्याकरण में दूसरा जैनेन्द्र व्याकरण में। पाणिनी के व्याकरण से एक शेष आरम्भ की बात कहीं गई है। जैसे कि दो वृक्ष कहे हैं तो दो वृक्ष सबसे पहिले लिखे जायेंगे उसके बाद लिंग वचन में औ प्रत्यय आया। द्विवचन के औ प्रत्यय आने पर शेष वृक्ष शब्द हटा दिया और एक शब्द रह गया। तो वृक्षाः ऐसा कहने पर उसमें वृक्ष शब्द न समझना उसमें कई वृक्ष शब्द गर्भित है। जो सप्त शब्द हो गए और बचा हुआ शब्द है वे दोनों एक ही समान हैं। और जिनका अर्थ वृक्ष ही वृक्ष है। तो अर्थ भी समान है इसलिए एकत्व के विचार करने से एक शब्द के प्रयोग की उपपत्ति बन गई, पर वहाँ वस्तुतः अनेक वृक्ष शब्द लिखे गए। अब जैन व्याकरण की दृष्टि से निरखें तो जितने शब्द होते हैं वे सब स्वाभाविक उसे अपना ही अर्थ बोलते हैं। तो वृक्ष शब्द में जब द्विवचन का प्रयोग किया गया तो उसका अर्थ तो एक ही अर्थ है वृक्ष। पर द्विवचन लगने से द्वित्व का अर्थ हुआ। तो यों प्रकृति और प्रत्यय ये दो होने से दो तरह का बोध हुआ। प्रत्यय का जो अर्थ है वह प्रकृति के अर्थ में मिल जाता है। तब अर्थ यह हुआ द्वित्व विशिष्ट वृक्ष। वृक्ष अर्थ में वृक्ष ही है पर जब उसमें द्विवचन शब्द का प्रत्यय लगा दिया तो उसका अर्थ हुआ दुत्व सहित वृक्ष। इसी प्रकार, यह वृक्षा, यह बहुवचन का प्रयोग है तो वहाँ अर्थ यह कि बहुत्व विशिष्ट वृक्ष। प्रकृति का जो शब्द है उसने तो एक ही अर्थ बताया, पर उसमें जो प्रत्यय में गर्भित हुआ है तो दुत्व या बहुत्व अर्थ हो गया। तब शब्द का अर्थ हुआ द्वित्व विशिष्ट वृक्ष। अथवा बहुत विशिष्ट वृक्ष। तो मतलब यह समझना चाहिए कि पाणिनीय व्याकरण के अनुसार एक शब्द जो शेष रह गया है वह लुप्त हुए शब्द अनेक अर्थों का बोधक होता है। और, जैन व्याकरण के अनुसार चूंकि प्रत्यय से सहित यह निकला कि चूंकि एक शब्द एक ही अर्थ का बोधक होता है अतएव किसी शब्द में यह सामर्थ्य नहीं है कि एक साथ दो अर्थ कह सके। इसी कारण इस दृष्टि में स्यात् अवक्तव्य नाम के चतुर्थं भंग की उत्पत्ति होती है।

प्रत्ययवान् प्रकृति शब्द से भी एक शब्द की एकार्थवाचकता के नियम का अभंग—अब वृक्षों, वृक्षाः इन शब्दों के सम्बन्ध में अन्य बातें भी स्पष्ट रूप से समझ लीजिए ! जैनेन्द्र व्याकरण के अनुसार द्विवचन आदिक जो शब्द हैं वे शब्द स्वभाव से ही द्वित्व और बहुत्व संख्या सहित वृक्षादिक के बोधक हैं, यह बात यहाँ सिद्ध की गई है। तो अब अनेक धर्मों से सहित अर्थ इस

वृक्षाः शब्द ने नहीं बताया, क्योंकि वृक्षत्व रूप धर्म तो एक ही है। केवल प्रत्यय सहित वृक्षाः शब्द ने उन समान-समान वृक्षों की संख्या जाहिर की है। धर्म तो एक वृक्षत्व ही है चाहे बहुत वृक्ष कहे गए तब उन वृक्षों में वृक्षत्वरूप धर्म हैं और उस धर्म से सहित एक वृक्षत्व धर्म का ही भान हुआ। कहीं द्विवचन या बहुवचन लग जाने से अन्य-अन्य धर्मों से वृक्ष का भान नहीं होता। इस तरह से अस्ति आदिक पर से अस्तित्वरूप धर्म से सहित पदार्थ का ही ज्ञान एक काल में सम्भव हैं। और नास्तित्व शब्द से नास्तित्व धर्म से सहित पदार्थ का ही ज्ञान एक काल में संभव है। अतएव कोई शब्द ऐसा नहीं है जो दो अर्थों का एक साथ प्रतिपादन कर दें, इसी कारण स्याद् अवक्तव्य नामक चौथा भंग होता ही है।

प्रत्ययवान् प्रकृतिशब्द के प्रयोग में एक शब्द से अनेक धर्म का परिज्ञान होने की शंका—अब यहा शंकाकार कहता है कि देखिये ! जब वृक्षाः शब्द बोला तो यहां हुआ क्या कि जस प्रत्यय सहित प्रकृति वृक्ष है, याने प्रकृति शब्द तो है वृक्ष और उसमें प्रत्यय लगा है जस, तो सुवन्त और तिडन्त शब्द की पदसंज्ञा होती है ऐसा सभी व्याकरणों में बताया गया है। तो वृक्षाः बहुवचनान्त शब्द से जो वृक्षत्वरूप धर्म जाना गया प्रत्यय जस सहित, सो वृक्षत्व धर्म से सहित वृक्षरूप अर्थ का ज्ञान हुआ ना, तब यह सिद्ध हो गया कि एक पद ने अनेक धर्मसहित अर्थ का ज्ञान कराया। देखो ! जहां बोला गया वृक्षाः में दो शब्द पड़े हुए हैं। प्रकृति शब्द और प्रत्यय शब्द। प्रकृति तो है वृक्ष और प्रत्यय है जस तो प्रत्यय का अर्थ है बहुत और प्रकृति का अर्थ है वृक्ष तो अब वृक्षत्व व बहुत्व ये दो इसके धर्म हुए ना ? और शब्द बोला गया एक वृक्षाः । तो देखो ! वृक्षाः इस शब्द ने दो धर्मों सहित पदार्थ का बोध कराया तब यह नियम तो न रहा कि पद एक ही अर्थ का बोधक होता है। देखो ! समंतभद्राचार्य ने भी कहा है कि “अनेकमेकं च पदस्य वाच्यं वृक्षा इति प्रत्ययवत्प्रकृत्या” ऐसा वृहद स्वयंभूमरण स्तोत्र में बताया है कि एक तथा अनेक अर्थ भी पद के वाच्य होते हैं। जैसे- वृक्षाः यहां प्रत्यय सहित वृक्षरूप प्रकृति से बहु संख्या वाले वृक्षरूप अर्थ का ज्ञान हुआ। इस प्रमाण से यह भी समझ लेना चाहिए कि एक पद अनेक अर्थों का भी बोधक हो जाता है।

प्रत्ययवान् प्रकृतिशब्द के प्रयोग में दो धर्मों का प्रधानता व गौणत्वं से परिज्ञान होने से एकशब्द की एकार्थ वाचकता के नियम का अभंग रूप समाधान—अब उक्त शंका के समाधान में कहते हैं कि जो कुछ कहा है वह यद्यपि किसी दृष्टि से यथार्थ है परन्तु एक पद प्रधानता से एक ही काल में अनेक धर्म से सहित पदार्थ का बोधक नहीं होता। यह नियम भी अकाट्य है। देखिये। इस ही प्रकृति प्रसंग में कि वृक्षाः कहने में जो प्रकृति शब्द है वृक्ष, उसने तो एक

वृक्षत्वरूप जाति से सहित वृक्ष का ही ज्ञान कराया। या कहो वृक्षत्वरूप धर्म से सहित वृक्ष पदार्थ का ही ज्ञान कराया। इसके पश्चात लिंग और संख्या का शब्द जन्य ज्ञान हुआ। इसमें बहुवचन शब्द लगा है, इससे बहुत वृक्ष है ऐसा बहुत संख्या का बोध होता है। तो यहां भी यद्यपि प्रकृति और प्रत्यय दो शब्द जुड़े हुए हैं और दो शब्द परस्पर मिल गए हैं। प्रत्यय सहित प्रकृति है लेकिन बोलने के क्रम से भी देख सकते हैं कि जिस समय वृक्षाः बोला तो पहिले वृक्ष प्रकृति के अर्थ का ज्ञान हुआ। उससे तो जाना गया वृक्षत्व धर्म सहित वृक्ष। पश्चात् प्रत्यय का बोध हुआ। उससे जानी गयी बहुत्व संख्या यों प्रत्यय वाली प्रकृति के द्वारा भी उस शब्द के दो अर्थ विदित हुए। तब वहां यह नहीं कहा जा सकता कि देखो! एक पद ने अनेक अर्थों का बोध करा दिया। इसमें भी प्रमाण देखिये। सिद्धान्त में भी कहा है स्वार्थमभिधाय शब्दो निरपेक्षो द्रव्यमाह समवेतम्। समवेतस्य तु वचने लिंग संख्या विभक्ति युक्तः सन्। सबसे पहिले तो शब्द अर्थ को कहते हैं। शब्द में जो प्रकृति है जिस प्रकृति के बाद प्रत्यय मिलाया गया। पहिले तो उस प्रकृति ने अपने अर्थ को बताया जैसे वह निरपेक्ष शब्द होता और जो कुछ बताता गया। अब उसमें वचनों को मिला दिया गया। विभक्ति मिल जाने के कारण अब वचन के अर्थ का उसने बोध किया। तो वृक्षाः इस शब्द के बोलने से क्रम ज्ञान यह निकला कि पहिले तो वृक्ष शब्द ने वृक्षत्व जातियुक्त वृक्ष अर्थ कहा, फिर प्रत्यय लगने से उस प्रत्यय वाले अर्थ का उसने बोध कराया। तो बोध में भी क्रम है और यहां जोड़ में भी क्रम है। अतः यह नियम अबाधित है कि एक पद एक काल में एक ही अर्थ का ज्ञान कराता है। ऐसा जब सिद्धान्त बन गया तो वृक्षाः इस पद से वृक्षत्व धर्म से अविच्छिन्न पदार्थ का बोध तो प्रधानता से हुआ और उसमें जो लिंग है अथवा वचनबोधक प्रत्यय लगा है उससे बहुत्व संख्या अथवा लिंग का ज्ञान गौणरूप से हुआ, इस कारण एक पद एक समय की प्रधानता से एक ही धर्म सहित पदार्थ का ज्ञान सभी जगह कराता है इस सिद्धान्त में किसी भी प्रकार का दोष नहीं है।

एक पद द्वारा एक अर्थ ही वाच्य होना मानने पर अनेकान्त की सिद्धि के अभाव की शंका व उसका समाधान—अब शंकाकार यहां कहता है कि यदि एक पद अथवा वाक्य से प्रधानता से अनेक धर्म सहित वस्तु का बोध नहीं होता, यह पक्ष मानते हो अथवा कहो कि एक पद या वाक्य से अनेक धर्मसहित वस्तु का बोध होता है यह स्वीकार नहीं करते हो तब यह बतलाओ कि प्रमाण वाक्य अनेक धर्मस्वरूप वस्तु का प्रकाशक कैसे हो सकता है? जब यही कहा गया कि एक पद एक ही अर्थ का बोधक होता है, तो फिर अनेकान्त कैसे बनेगा? अनेकान्त में तो अनेक धर्मस्वरूप वस्तु का प्रकाश होता है और यहां आग्रह कर रहे हो यह कि एक पद एक ही धर्मसहित वस्तु का बोधक होता है। तब तो अनेकान्त की सिद्धि न हो सकेगी? उक्त शंका के

उत्तर में कहते हैं कि देखिये ! काल, आत्मा स्वरूप अर्थ आदिक के द्वारा द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा से अभेदोपचार किया जाता है तब उस प्रमाण वाक्य से उस सम्पूर्ण वस्तु का कथन होता है, यह बात तो पहिले प्रसंग में अच्छी तरह बता दी गयी है।

अवक्तव्य शब्द से उभयधर्मात्मक की वाच्यता सिद्ध करने के लिए द्वन्द्व समास की साक्षिता का शंकाकार द्वारा कथन व उसका समाधान—अब शंकाकार यहां कहता है कि ‘सत्त्वासत्त्वे’ इस प्रकार का यदि द्वन्द्व समास में पद कर लिया जाय तो यह पद सत्त्व और असत्त्व दोनों का प्रधानता से बोधक बन जायेगा, कारण यह है कि द्वन्द्व समास में दोनों ही पदार्थ होते हैं। व्याकरण में कहा भी है—‘उभयपदार्थ प्रधानो द्वन्द्वः’ द्वन्द्व समास में जितने पद आये हुए हो वे सभी के सभी पदप्रधान होते हैं। तो इस तरह द्वन्द्व समास में पद के द्वारा जब सभी का प्रधान कथन हो जाता है तब सदसत्त्वात्मक वस्तु को अवाच्य कैसे कहा जायेगा याने वस्तु ही तो बताना है उसे द्वन्द्व समास द्वारा कहा जायगा, फिर अवक्तव्य कैसे कह रहे हो ? इस शंका के समाधान में कहते हैं कि देखिये ! द्वन्द्व समास भी कर दिया जाय, लेकिन वहां भी दो अर्थों का परिज्ञान क्रम से ही कराने में वह समर्थ है। द्वन्द्व समास होने पर जितने शब्दों का समास किया गया है। उन शब्दों का अर्थ क्रम से ही बताने में वह द्वन्द्व समास समर्थ हो सकता है। और दूसरी बात यह है कि इसी कारण द्वन्द्व समास होने पर भी किसी का प्रधानता से कथन, किसी का गौणरूप से कथन सम्भव है याने वहां भी सत्त्व प्रधानता से और गौणता से हुआ करता है। तभी तो यह बताया गया है द्वन्द्व समास में जहां कि अनेक पदों का समास होता है और जहां यह विवाद होता है कि किस पद को पहिले रखना चाहिए ? तो वहां निर्णय होता है कि ‘अभ्यर्हितं पूर्वं’ मायने जो पद पूज्य हो, महत्वशाली हो उसका पहिले स्थापन किया जाता है। तो प्रधानभूत अर्थ का शब्द पहिले रख देना यह बात तब ही संगत है जब कि द्वन्द्व समास में यह निर्णय है कि समस्त पदों का कथन और बोध क्रम से होता है और किसी का प्रधानता से व किसी का गौणता से । भले ही कथन है उसमें प्रधानता से, लेकिन मान भी लो कि द्वन्द्व समास में दोनों पदों का बोध प्रधानता से होता है। हो गया मानो तो भी प्रधानता से अस्तित्व और नास्तित्व दोनों धर्मों से सहित धर्मों का प्रतिपादन करने वाला शब्द नहीं है, इसी कारण अवक्तव्यपना तो ज्यों का त्यों निर्वाध बना।

द्वन्द्वगर्भित तत्पुरुष समास की साक्षिता में भी अवक्तव्य शब्द से उभयात्मक पदार्थवाच्यता की अनुद्भूति—अब शंकाकार कहता है कि देखिये ! एक वाक्य बोला कि सदसत्त्वविशिष्टं वस्तु ! अब यह है द्वन्द्वगर्भित तत्पुरुष समास याने इसमें सदसत्त्व का तो द्वन्द्व समास किया गया, फिर

उसके बाद विशिष्ट शब्द का तत्पुरुष समास किया गया जिसका अर्थ कि सत्त्व और असत्त्व से सहित वस्तु। तो इस पद के द्वारा दोनों धर्मों से सहित वस्तु का बोध तो बन गया तब अवक्तव्यपना कैसे सम्भव रहा ? वक्तव्य तो हो गया, दोनों धर्म एक साथ इस पद के द्वारा कह दिए गए। इस शंका के उत्तर में कहते हैं कि भाई, इस समास में सत्त्व और असत्त्व से विशिष्टपने की प्रधानता है न कि सत्त्व और असत्त्व की प्रधानता है। इस समास में जो कि द्वन्द्वगर्भित तत्पुरुष समास है ? वहां सत्त्व और असत्त्व दोनों की अप्रधानता हैं, प्रधानता तो वैशिष्ट्य की है, क्योंकि व्याकरण में कहा गया है उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषः याने तत्पुरुष समास में उत्तर पदार्थ की प्रधानता होती है जो अन्तिम शब्द हो, उसकी प्रधानता होती है। जैसे बच्चों से सहित देवदत्त तो यहां प्रधान कौन रहा ? जो सहित हो वह देवदत्त प्रधान रहा। तो द्वन्द्व समास में तो उभयपद प्रधान होता है, लेकिन बोध उनका क्रम से होता है और तत्पुरुष समास में उत्तर पदार्थ की प्रधानता होती है। तब यहां भी दो धर्मों का प्रतिपादक कोई शब्द न मिला इस कारण सब धर्मों का एक साथ प्रतिपादन कर सकने वाला कोई पद नहीं हैं। अतएव स्याद् घट यह कहना बिल्कुल सिद्ध हैं याने चतुर्थ भंग युक्तिपूर्ण सिद्ध हो जाता है।

अवक्तव्य शब्द की वाच्यता के सम्बन्ध में शंका और उसका समाधान—अब इस अवक्तव्य धर्म के सम्बन्ध में अन्य भी बात सुनो ! यहां कोई संत जन कहते हैं यह अवक्तव्यरूप अर्थ सर्वथा ही अवक्तव्य नहीं है कि किसी भी तरह न बोला जा सके। क्योंकि देखिये ! अवक्तव्य शब्द तो यही ही कहा जा रहा हैं और जब कहा जा रहा है अवक्तव्य शब्द को तब स्याद् अवक्तव्यः यह चतुर्थ भंग बनता है। इस प्रकार से कोई संतपुरुष कहते हैं तो यहां पर विचार करना चाहिए कि अवक्तव्य शब्द का वाच्य अर्थ क्या है ? याने इस अवक्तव्य शब्द से पदार्थ क्या कहा गया है ? कदाचित् यह कहो कि प्रधानता को प्राप्त सत्त्व और सत्त्व धर्मों से सहित पदार्थ अवक्तव्य शब्द से कहा गया है याने अवक्तव्य शब्द से वह पदार्थ कहा गया, जिस पदार्थ में सत्त्व और असत्त्व दोनों ही धर्म प्रधान हैं। सो ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि प्रधानरूप से रहे सत्त्व और असत्त्व का एक काल में कोई वाचक शब्द नहीं है। प्रधानरूप रहे सत्त्व और असत्त्व ऐसा कुछ किसी भी शब्द द्वारा वाच्य नहीं होता। और, यहां कह रहे हो यह कि वह पदार्थ अवक्तव्य शब्द से कह दिया गया है, तो इसका अर्थ यह होगा कि दोनों प्रधान धर्मों से सहित पदार्थ को कहने वाला अवक्तव्य शब्द बन गया। कोई शब्द वाचक हो गया तब इस नियम का भंग हो जायगा कि सर्व धर्मों को एक साथ कह सकने वाला कोई शब्द नहीं है। तो यों अगर अवक्तव्य शब्द का वाच्य अर्थ लगा दिया जाय कि अवक्तव्य शब्द ने प्रधान समस्त धर्मों सहित एक पदार्थ को कह दिया तो इसमें सिद्धान्त का विघात है। सिद्धान्त में दो नियम कहे गए हैं। एक तो यह

कि सबका एक साथ वर्णन कर दे ऐसा कोई शब्द नहीं है, दूसरा नियम यह कि एक पद एक काल में प्रधान रूप से अनेक धर्म सहित वस्तु का बोधक नहीं होता। अतएव यह बात युक्तिसंगत न जंची कि अवक्तव्य शब्द का वाच्य एक साथ योजित दोनों धर्मों से सहित पदार्थ है।

संकेत सिद्ध मानकर भी अवक्तव्य शब्द से उभयात्मक पदार्थ की वाच्यता का अभाव—यदि यह कहो कि यह तो संकेत शब्द है। किसी भी वाच्य का वाचक कुछ भी संकेत बना लीजिए। संकेत से वही पदार्थ ग्रहण में आये, यही तो संकेत का प्रयोजन है। सो इस अवक्तव्य शब्द को हम संकेत सिद्ध शब्द मान लेंगे कि इस शब्द द्वारा अर्पित अनेक धर्मों से सहित वस्तु का बोध किया जायेगा तो इसके समाधान में कहते हैं कि इस तरह अवक्तव्य संकेत सिद्ध शब्द होने से अवक्तव्य यह शब्द यदि दोनों धर्मों से सहित वस्तु का वाचक मान लिया जाय तो जैसे इस संकेत से उभयधर्म सहित वस्तु वाच्य मान लिया, ऐसे ही संकेत से सिद्ध अन्य संकेत इस पदार्थ के वाचक क्यों नहीं हो जाते ? याने संकेत करने की बात पर जब आ गए तो संकेत अटपट हो जाय या किन्हीं भी संकेत शब्दों से जिस चाहे का अर्थ ज्ञान में लगा दिया जाय, पर ऐसा तो नहीं है। शंकाकार कहता है कि बात वहां यह है कि अन्य जो संकेत सिद्ध पद है वे क्रम से ही सत्त्व असत्त्व से सहित वस्तु के बोधक है। शंकाकार के प्रति यह आक्षेप देने पर कि अगर अवक्तव्य संकेत सिद्ध शब्द से दोनों धर्मों से सहित वस्तु का बोध किया गया तो अन्य भंग भी तो संकेत सिद्ध मान लीजिए। वहां क्यों नहीं दोनों धर्मों से सहित वस्तु का बोध किया जाता ? उसके उत्तर में शंकाकार यहां यह कह रहा है कि अवक्तव्य शब्द को छोड़कर अन्य जो संकेत सिद्ध पद है वे क्रम से सत्त्व असत्त्व धर्म से सहित वस्तु का बोध कराने वाले हैं, इसके उत्तर में कहते हैं कि तब संकेत सिद्ध अन्य पदों के समान संकेत सिद्ध अवक्तव्य यह पद भी एक काल में सत्त्व और असत्त्व धर्म से सहित वस्तु का बोधक हो सकेगा। जैसे कि अन्य संकेत सिद्ध पदों से अनेक धर्म सहित पदार्थ का ज्ञान क्रम से ही हुआ ऐसे ही अवक्तव्य इस पद से भी अनेक धर्मों का ज्ञान क्रम से ही हो सकेगा, क्योंकि दोनों ही संकेत सिद्ध पद हैं। अवक्तव्य को संकेत सिद्ध शंकाकार कह रहा है उसी प्रकार बाकी अन्य शब्द भी तो संकेत सिद्ध ही है। तब किसी एक संकेत सिद्ध शब्द का ही कोई बात मान ली जाय यह विशेषता केसे बन सकेगी ? अतः यहां यों नहीं कह सकते कि अवक्तव्य इस पद से तो दोनों धर्मों से सहित वस्तु का बोध हो जायगा। और अन्य संकेत से न होगा किन्तु इस विषय में अवक्तव्य शब्द का वाच्य यह है कि अवक्तव्य इस शब्द पद से यह कहा गया वक्तव्यपने का अभावरूप धर्म से सहित पदार्थ। अर्थात् ऐसे धर्मों वाला पदार्थ जो वक्तव्य न हो सके यह कहा गया है अवक्तव्य शब्द से, न कि सत्त्व

और असत्त्व दोनों धर्मों सहित पदार्थ कहा गया है। यह तो जो विवेकी होंगे उन सबके अनुभव में उतरने लायक बात है।

स्याद् अवक्तव्य में एकान्त में अवाच्यता के अभाव की ध्वनि—शंकाकार कहता है कि फिर समन्तभद्राचार्य ने आसमीमांसा में यह कहा है कि ‘उक्तिश्चावच्यतैकान्तेनावाच्यमिति युज्यते’ याने आवच्यता का तो कथन है कि वह एकान्तरूप से अवाच्य है ऐसा मानने से अवाच्यपना भी न कहा जा सकेगा, ऐसे समन्तभद्राचार्य के वचन की संगति कैसे रहेगी, क्योंकि आचार्य के इन वचनों के कहने का भावार्थ यह है कि सत्त्व असत्त्व धर्मसहित वस्तु को अवक्तव्य मानोगे तो वह अवक्तव्य इस पद से भी न कहा जा सकेगा और स्यादस्ति किसी शब्द से भी कुछ वक्तव्य न होगा, क्योंकि जब सर्वथा अवक्तव्य हैं तो उसके मायने हैं कि वह बिल्कुल ही अवक्तव्य है, किसी भी पद से नहीं कहा जा सकता। अतः अवक्तव्य का अर्थ कथंचित् वक्तव्य रूप से लेना ही चाहिए। अब इस शंका का उत्तर कहते हैं कि भाई तुमने समन्तभद्राचार्य के वचनों का अर्थ ही नहीं समझा, उस वचन का अर्थ यह है कि सत्त्वादिक धर्मों में से किसी एक धर्म के द्वारा जो पदार्थ कहे जा सकने के योग्य है वही पदार्थ प्रधानतया सत्त्व असत्त्व इन दो धर्मों से युक्त रूप से अवाच्य है। अवाच्य का अर्थ यह है कि दोनों धर्म प्रधानरूप से एक साथ नहीं कहे जा सकते। यदि सत्त्व असत्त्व धर्म सहित पदार्थ को सत्त्वादिक एक धर्म के द्वारा भी अवाच्य मानें तो वाच्यत्व का अभावरूप धर्म है उस अभावरूप धर्म के द्वारा वस्तु को कहने वाले अवाच्य इस शब्द से यह वस्तु वाच्य न बनेगा, स्वामी समन्तभद्राचार्य के वचन का यह अभिप्राय है। कथंचित् अवक्तव्य है इसका अर्थ यह है कि एक धर्म को प्रधानरूप से कहने की दिशा में वह वक्तव्य है। ऐसा शुद्ध अर्थ का व्याख्यान न करके यदि ऐसा व्याख्यान करेंगे कि सत्त्व असत्त्व इस उभयधर्म से अवाच्य जो पदार्थ है वही सत्त्व असत्त्व इस उभय धर्म सहित वस्तु को कहने वाला अवाच्य शब्द है। मायने अवक्तव्य इस शब्द से उभय धर्म सहित वस्तु को कहा गया है। ऐसा व्याख्यान करेंगे तो इससे क्या निष्कर्ष निकलेगा कि जिस रूप से पदार्थ अवाच्य है उसी रूप से वह वाच्य भी हो गया। अब देखिये ! स्याद्वाद का इसमें कितना विघात है कि जिस अपेक्षा से पदार्थ को अवाच्य कहा उसी अपेक्षा से पदार्थ को वाच्य भी कह डाला। और जब यह बात बना ली तब फिर यह प्रसंग आ गया कि जिस रूप से वस्तु का सत्त्व है उसी रूप से उसी वस्तु का असत्त्व भी है। यह उल्टा प्रसंग आ जायगा। पर ऐसा कहीं होता है क्या ? अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से वस्तु असत् हो जायगा ? यदि इस प्रकार मानोगे तो समन्तभद्रस्वामी के इस वचन का विरोध प्राप्त होगा कि विरोधान्त्रौभयैकात्यं स्याद्वादनयवेदिनां अर्थात् विरुद्ध होने से सत्त्व असत्त्व इन उभय धर्म में किसी प्रकार एक धर्म रूप से अवक्तव्यपना स्याद्वाद न्याय के जानने वाले स्वीकार

नहीं करते। विरुद्ध होने से दोनों का एकात्म्य नहीं है इस वचन का फिर विरोध हो जावेगा क्योंकि अब तो इस पद्धति पर आ गए कि जिस अपेक्षा से अवाच्य है उसी अपेक्षा से वाच्य भी बन गया इस कारण अवक्तव्यत्व का यह अर्थ न करना कि अवक्तव्य शब्द से उभय धर्म से युक्त वस्तु कहा जाता है। अवक्तव्य शब्द से तो यह कहा गया है कि दोनों धर्म प्रधानतया एक काल में कहे जा सकने के योग्य नहीं है। इस सम्बन्ध में सिद्धान्तवेदी पुरुष कहते हैं कि अवक्तव्य घट है ऐसा जो चतुर्थ भंग किया गया है तो उसमें घट को सर्वथा अवक्तव्य नहीं कहा। कथंचित् अवक्तव्य है। यदि यह कह देते हैं कि घट अवक्तव्य ही है तो ऐसा कहने से घट का सर्वप्रकार से अवक्तव्यपना आ जाता है। जब सर्वथा अवक्तव्यपना आ जाता है तो इसके मायने यह है कि अस्तिनास्तित्व आदिक प्रथम द्वितीय भंगों के रूप में भी उसका वर्णन न हो सकेगा। इसलिए अवक्तव्य शब्द के पहिले स्यात् इस निपात का प्रयोग किया गया है। और, इस स्यात् निपात के लगने से यह अर्थ हुआ कि सत्त्व आदिक रूप से तो घट वक्तव्य है, किन्तु एक ही समय में प्रधान रूप सत्त्व असत्त्व ये दो धर्म कह दिये जायें इस रूप से अवक्तव्य है। स्याद् अवक्तव्य एवं घटः जितने भी शब्द दिए गए हैं वे शब्द सार्थक है, कथंचित् अवक्तव्य है घट इसके मायने यह है कि स्याद् अस्ति स्याद्नास्ति आदिक अन्य भंगों की अपेक्षा वक्तव्य है ऐसा चतुर्थ भंग का तात्पर्य निकला।

स्यादस्ति अवक्तव्य नाम का पंचम भङ्ग—अब ४ भंगों के बाद तीन भंग और आते हैं वे सब संयोगी है। ५वां भंग स्याद् अस्ति अवक्तव्य। छठा है स्यादनास्ति अवक्तव्य और सातवां स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्य। तो समुदित संयोग रूप से द्रव्य पर्याय का आश्रय करके ये अंतिम ३ भंग बना करते हैं। जैसे कि ५वां भंग बना। उसमें प्रथम तो द्रव्य अर्पित लिया और सह अर्पित द्रव्य पर्याय ली। देखो ! द्रव्य दृष्टि से तो अस्ति है पर्याय दृष्टि से नास्ति है अथवा स्वरूप की अपेक्षा से अस्ति है, पररूप की अपेक्षा से नास्ति है। तो यहां अस्ति तो एक पृथक् रूप से लिया और अस्ति नास्ति दोनों एक साथ लेना चाहा। तो व्यक्त रूप में अस्ति व नास्ति दोनों समस्त एक साथ यों जब आश्रय करते हैं तो बनता है स्यादस्ति अवक्तव्य। इस तरह से तो द्रव्य का और एक साथ अर्पित दोनों को द्रव्य पर्याय का आश्रय करके यह पंचम भंग हुआ स्याद् अस्ति अवक्तव्यएव घटः इसका तात्पर्य यह है कि घटरूप जो एक धर्मी है उसे तो बनाया विशेष्य, क्योंकि उसकी ही बात विशेषता में बतानी है उस एक धर्मी में सत्त्व विशिष्ट अवक्तव्यता के प्रकार के ज्ञान को उत्पन्न करने वाला यह वाक्य हुआ। यहां पर द्रव्य की विवक्षा में तो अस्तित्व की बात आयी, और एक साथ द्रव्य पर्याय की अपेक्षा से अवक्तव्यपने की बात आयी।

स्याद्नास्ति अवक्तव्य एव नाम का छठा भंग—अब छठवां भंग है स्यादनास्ति अवक्तव्यएवघटः। इसमें पृथक रूप से पर्याय तथा मिलाने रूप से द्रव्य पर्याय का आश्रय करके यह भंग बना है। पररूप की अपेक्षा से नास्तित्व कहा है और स्वपर रूप दोनों को एक साथ प्रधानरूप तकने की दृष्टि से अवक्तव्य कहा है। इसमें क्या बोध बना कि घट तो है एक धर्मी विशेष, जिसके विषय में कुछ वर्णन है, जिसकी विशेषता बताते हैं उस विशेष्य में नास्तित्व सहित अवक्तव्यपने के प्रकार वाला ज्ञान उत्पन्न हो। तो यों छठे भंग में दो आश्रय हुए। अलग-अलग रूप से तो पररूप का अथवा पर्याय का आश्रय है और एक साथ प्रधान रूप से द्रव्य पर्याय का आश्रय किया। ऐसी स्थिती में यह बोध उत्पन्न हुआ कि स्यादनास्ति अवक्तव्यएवघटः।

स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्य नाम का सप्तम भंग—अब ७वां भंग कह रहे हैं। ७वें भंग का रूप है स्याद अस्तिनास्ति अवक्तव्य एव घटः। इसमें अलग-अलग क्रम योजित द्रव्य पर्याय का आश्रय किया है। तथा मिले हुए एक साथ योजित द्रव्य पर्याय का आश्रय हुआ है, तब यह बोध बना कि स्याद अस्तिनास्ति अवक्तव्यएव घटः। इस लक्षण में ज्ञान किस प्रकार से हुआ कि घट रूप से तो एक वस्तु विशेष्य है जिसके सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की विशेषता बताते हैं, उस में सत्त्व असत्त्व से विशिष्ट अवक्तव्यपने के प्रकार का बोध उत्पन्न किया जा रहा है। इस तरह सप्तभंग में क्रम से अर्पित द्रव्य पर्याय का आश्रय है और एक साथ अर्पित द्रव्य पर्याय का आश्रय है। तब यह भंग जो कि तृतीय और चतुर्थ भंग का मेल सा दिखता है, सप्तभंग निष्पन्न होता है।

द्रव्यकान्त व पर्यायकान्त का निराकरण—अब इस समय शंकाकार कह रहा है कि द्रव्य ही तत्त्व है। पर्याय तो तत्त्व नहीं है। इसलिए स्याद अस्ति एव यही एक भंग बनेगा, स्याद नास्ति का भंग बनना अयुक्त है। यह शंका सांख्यसिद्धान्त से मिलकर होती है। सांख्यसिद्धान्त तो केवल विधि है, वहां प्रतिषेध का स्थान नहीं। वहां अस्तित्व ही बताया गया है। नास्तित्व का विधान नहीं है। उस दृष्टि से शंकाकार कह रहा है कि स्याद अस्ति ही पदार्थ है, क्योंकि द्रव्य ही तत्त्व है। पर्याय है ही नहीं। पर्याय मानी ही नहीं गई। जो भी सत् है, ब्रह्म अद्वैत, सर्व एक है पररूप तो कुछ है ही नहीं, वह मूल में अपरिणामी है। इस तरह स्याद अस्ति एव यही भंग सत्य है। इसके उत्तर में कहते हैं कि यह कथन करना अयुक्त है, जैसे द्रव्य का सत्त्व प्रतीत होता है, उसी प्रकार पर्याय की भी प्रतीति होती है। कोई भी सत् ऐसा नहीं है कि वह है, पर वहां परिणमता न हो। इस कारण परिणमन शून्य सत् न होने से कोई द्वितीय भंग का निषेध नहीं कर सकता। सत् है और वह परिणमता है। तो यों द्रव्य का प्रतिपक्षी पर्याय है स्वरूप का प्रतिपक्षी पररूप है। तो प्रथम दोनों भंगों का होना आवश्यक हैं और यों ही सीधा समझिये कि कोई कुछ भी कहे उस

सम्बन्ध में यह तो कहना होगा कि जो बात रखी गई है इससे विपरीत नहीं है। जैसे किसी ने कहा कि मैं सच बोलता हूं तो उसका अर्थ तो यही निकला कि मैं झूठ नहीं बोलता हूं। यों ही जब कहा गया कि पदार्थ नित्य है तो दूसरी बात आ ही गई कि अनित्य नहीं है। इस तरह भी भंग चलेगा और द्रव्य पर्याय का सहारा लेकर भी उससे भंग बनता है। यों प्रथम और द्वितीय भंग का अस्तित्व बराबर प्रतीति सिद्ध है। यदि नास्ति नहीं मानते तो अस्ति भी नहीं बन सकता। जैसे कि अस्ति न मानने पर नास्ति नहीं बना करती। तो यों स्याद् अस्ति इस प्रथम भंग के एकान्त वाला सिद्धान्त युक्त नहीं है। जैसे कि कोई क्षणिकवाद में पर्याय ही तत्त्व है इस कारण नास्ति यह भंग नहीं है। ऐसा मानने का सिद्धान्त गलत है, क्योंकि वहां भी द्रव्य की प्रतीति बराबर है। सांख्य तो परिणमन नहीं मानते और क्षणिकवादी द्रव्य नहीं मानते, पर वस्तु द्रव्यपर्याय स्वरूप है अतएव स्याद् अस्ति और स्याद् नास्ति ये दोनों ही भंग युक्तिसिद्ध हैं।

अवक्तव्यैकान्त का निराकरण—जिस प्रकार कोई स्याद् अस्ति यह ही एकान्ततः माने और स्याद् नास्ति यह ही एकान्ततः माने तो वह मानना अयुक्त है, क्योंकि द्रव्य भी प्रतीतिसिद्ध है और पर्याय भी प्रतीतिसिद्ध है, ऐसे अवक्तव्य ही वस्तुतत्त्व है, ऐसा कोई अवक्तव्यपने का एकान्त करे तो वह भी स्ववचनबाधित है, जैसे कि अभी सांख्यमतानुयायिता में यह एकान्त किया गया था कि स्याद् अस्ति यह ही एक भंग है और जैसे क्षणिकवाद में यह एकान्त किया गया था कि स्यादनास्ति यही एक भंग सही है। इसी प्रकार यदि यह एकान्त किया जाय कि अवक्तव्य ही वस्तु सत्त्व है तो यह एकान्त भी उन एकान्तों की तरह बाधित हैं और अवक्तव्य ही वस्तु तत्त्व है। इस तरह का कथन तो स्पष्ट स्ववचनबाधित है। कहते तो जा रहे हैं वक्तव्य तो हो रहा है और कह रहे हैं कि अवक्तव्य ही है। जैसे कोई पुरुष यह कहे कि मैं तो सदा मौन ब्रत में ही रहता हूं तो वह बोलता तो जा रहा है और बताता है कि मैं तो सदा मौन ब्रत में ही रहता हूं। तो जैसे यह स्ववचनबाधित है इसी प्रकार अवक्तव्य ही वस्तु है यह कथन भी स्ववचनबाधित है। इसी प्रकार अन्य जो एकान्त है वे भी प्रतीति द्वारा बाधित हैं। उन एकान्तों के विरुद्ध अनेकान्त स्वरूप वस्तु तत्त्व की प्रतीति होती है। इस कारण अनेकान्तवाद ही युक्तिसिद्ध निर्विवाद प्रतीत होता है।

अनेकान्त में भी सप्तभंगी होने या न होने का प्रश्न—अब शंकाकार यहां कहता है कि भाई ! अनेकान्त में भी तो विधिषेधरूप सप्तभंगी जोड़नी होगी या नहीं ? यदि कहो कि अनेकान्त में भी विधि और प्रतिषेध की सप्तभंगी चलती है तो अनेकान्त का जब निषेध किया तो उस कल्पना में एकान्त ही तो सिद्ध हुआ। फिर एकान्त पक्ष में जो दोष दे रहे हो वह दोष यहां भी आयगा,

क्योंकि अनेकान्त का विधि और प्रतिषेध मानने पर यही तो कहा जायेगा कि स्याद् अनेकान्त है स्याद् अनेकान्त नहीं है। इसका निष्कर्ष यह निकला कि एकान्त है तो एकान्त में जो दोष है वह यहां भी लगेगा। और फिर अनवस्था दोष भी होता है। क्योंकि उस प्रकार के अनेकान्त में भी अन्य अनेकान्त की कल्पना द्वारा विधि और प्रतिषेध वक्तव्य हो जायगा, याने इस प्रकार एकान्त की भी अन्य अनेक कल्पनाएँ करे तो वहां भी विधि और निषेध करते हुए चले जाओ जो जितना अनेकान्त कहेंगे वहां सब जगह ही विश्राम और प्रतिषेध की कल्पना करते जाना होगा। तब कहीं भी विश्राम न मिलेगा। तो यहां अनावस्था दोष आता है तो यदि एकान्त में भी सप्तभंगी चलती है। यह पक्ष मानते हो तो यदि कहो कि अनेकान्त में सप्तभंगी नहीं चलती है तब तो यह कहना कि "समस्त वस्तु समूह सप्तभंगी से व्याप्त है" यह सिद्धान्त फिर न रहेगा।

अनेकान्त में भी सप्तभंगी की पद्धति के वर्णन का उपक्रम—उक्त शंका के समाधान में कहते हैं कि अनेकान्त में भी सप्तभंगी है अथवा नहीं है और दोनों ही पक्षों में कुछ दोष की कल्पना करना सब अयुक्त है क्योंकि प्रमाण और नय की विवक्षा के भेद से अनेकान्त में भी सप्तभंगी की उपपत्ति है। वह किस तरह सो समझिये। एकान्त होता है दो प्रकार का एक सम्यक् एकान्त और दूसरा मिथ्याएकान्त। याने एक सही एकान्त और एक गर सही एकान्त। इसी तरह अनेकान्त भी दो प्रकार होता है एक सम्यक् अनेकान्त और दूसरा मिथ्या अनेकान्त। सम्यक् एकान्त प्रमाण के विषयभूत अनेक धर्मात्मक वस्तु में रहने वाले एक धर्म को विषय करता है और धर्मान्तरों का निषेध नहीं करता है। सम्यक् एकान्त में दो बातें दृष्टि में लानी चाहिए एक तो यह कि प्रमाण के विषयभूत अनेक धर्मात्मक वस्तु में से एक धर्म को विषय कर रहा है याने सम्यक् एकान्त का उपयोग करने वाले ज्ञानी पुरुष के निर्णय में प्रमाण का निर्णय भरा पड़ा है। अब उस प्रमाण से परिगृहीत वस्तु में से एक धर्म को इस समय जान रहा है। दूसरी विशेषता यह है कि सम्यक् एकान्त अकथित अन्य धर्मों का निषेध नहीं करता। अब मिथ्या सिद्धान्त का स्वरूप सुनो ! मिथ्या एकान्त एक धर्म मात्र के ही निश्चय करने से अन्य समस्त धर्मों का निराकरण करने में चतुर रहता है। अर्थात् मिथ्या एकान्त केवल एक धर्म मात्र का निश्चय करता है और उस वस्तु में पाये जाने वाले अन्य धर्मों का निराकरण नहीं करता है। यह तो हुआ सम्यक् एकान्त और मिथ्या एकान्त का स्वरूप। अब सुनो सम्यक् अनेकान्त और मिथ्या अनेकान्त का स्वरूप। एक वस्तु में अस्तित्व नास्तित्व आदिक नाना धर्मों का निरूपण करने में समर्थ और प्रत्यक्ष, अनुमान आगम आदिक से अविरुद्ध सम्यक् अनेकान्त होता है। सम्यक् अनेकान्त का स्वरूप समझने के लिए इन दो बातों पर दृष्टि डालियेगा कि एक तो यह एक वस्तु में नाना धर्मों का निरूपण करता है। दूसरी बात यह कि सम्यक् अनेकान्तनय ने जो कुछ बताया वह न तो प्रत्यक्ष से ही

बाधित होगा, न अनुमान से, न आगम आदिक से । ऐसा निर्वाध समस्त धर्मों का वर्णन करने वाला सम्यक् अनेकान्त होता है और मिथ्या अनेकान्त प्रत्यक्ष आदिक से विरुद्ध अनेक धर्मों की कल्पना करने को कहते हैं। मिथ्या अनेकान्त में ऐसे अनेक धर्मों की कल्पना की जाती है जो प्रत्यक्ष अनुमान, आगम आदिक से विरुद्ध पड़ते हैं। तो इस तरह एकान्त और मिथ्या एकान्त के स्वरूप हुए। अब उन ४ बातों में से पृथक् -पृथक् की विशेषता देखिये कि सम्यक् एकान्त तो नय कहलाता है। और मिथ्या एकान्त नयाभास कहलाता है। याने वास्तविक नय है सम्यक् एकान्त और झूठा नय है मिथ्या एकान्त। इस प्रकार सम्यक् एकान्त अनेकान्त प्रमाण रूप है और मिथ्या अनेकान्त प्रमाणाभास है। याने वास्तविक प्रमाणभूत तो सम्यक् अनेकान्त होता है और जो मिथ्या अनेकान्त है याने प्रत्यक्ष आदिक से विरुद्ध अनेक धर्मों की कल्पना करने रूप जो मिथ्या अनेकान्त है वह झूठा प्रमाण है।

अनेकान्त में सप्तभंगी की विधि—सम्यक् एकान्त, मिथ्या एकान्त, सम्यक् अनेकान्त, मिथ्या अनेकान्त का स्वरूप समझकर अब यह समझिये कि सप्तभंगी की योजना यहां किस प्रकार लगती है ? सम्यक् एकान्त और सम्यक् अनेकान्त का आश्रय लेकर जब प्रमाण और नय की योजना की अपेक्षा की जाती है तो उस अपेक्षा से ये ७ भंग उत्पन्न होते हैं कि कथंचित् अनेकान्त है, कथंचित् एकान्त है, कथंचित् उभय, कथंचित् अवक्तव्य, कथंचित् अनेकान्त अवक्तव्य और कथंचित् एकान्त रूप और अवअवक्तव्य है। इस तरह सप्तभंगी की योजना बन जाती है। अब उनका विवरण सुनो नय की विवक्षा से तो स्यात् एकान्त बनता है, क्योंकि स्यात् नय एक एकान्त को विषय करता है। तो नय की अपेक्षा से स्यात् एकान्त हुआ। और, प्रमाण की अपेक्षा से स्यात् अनेकान्त हुआ, क्योंकि प्रमाण समस्त धर्मों का निश्चयात्मक होता है। प्रमाण से एक वस्तु के सकल धर्मों का निर्णय होता है। अब इन दो भंगों के प्रति परस्पर में ऐसा तर्क बनाये कि देखिये ! यदि अनेकान्त अनेकान्त ही है, एकान्तरूप नहीं है अर्थात् एक अनेकान्त का ही आग्रह किया जाय और एकान्त का निषेध किया जाय तो देखिये, एकान्त का अभाव होने पर एकान्त का समूहरूप ही अनेकान्त था सो अनेकान्त का भी अभाव हो जायेगा। जैसे कोई पुरुष वृक्ष को तो माने और शाखाओं का निषेध करें। कहे—भाई ! वृक्ष ही है, शाखा कुछ भी नहीं है। तो शाखाओं का अभाव होने पर वृक्ष का अभाव हो गया। जहां शाखा, पत्ता, पुष्प आदिक कुछ नहीं हैं वहां वृक्ष ही क्या है? तो अनेकान्त होता है एकान्त का समूहरूप याने सम्यक् एकान्त का जो समुदाय है वही सम्यक् एकान्त है। अब एकान्त का किया जाय सर्वथा निषेध तो अनेकान्त कहां से बनेगा ? तब मानना ही होगा कि स्यात् अनेकान्त है, स्याद् एकान्त है। इस तरह जब ये दो मूल भंग सिद्ध हो जाते हैं कि स्यात् एकान्त और स्याद् अनेकान्त। तब उत्तर भंगों की भी

योजना बन सकती है याने स्यात् एकान्त अनेकान्तरूप, स्यात् उभयरूप याने अवक्तव्यरूपादिक शेष ५ धर्म भी बन जायेंगे। यों प्रमाण और नय की विवक्षा में सप्तभंगी की सिद्धि होती है।

स्यान्त्रित्य आदि के सम्बन्ध में सप्तभंगी का दिग्दर्शन—सप्तभंगी का निरूपण स्यादस्ति स्यादनेकान्त आदि की तरह नित्यत्व, अनित्यत्व, एकत्व, अनेकत्व आदिक धर्मों के सम्बन्धों में भी लगाना चाहिए। जैसे पहिले बताया था स्याद् घटः अस्ति, स्यादनास्ति। अब जरा नियत्व के प्रसंग में भी सप्तभंगी देखो। वहां यों सप्तभंगी चलेगी कि स्याद् नित्य एव घटः स्यादनित्यत्व एव घटः क्योंकि घट द्रव्यरूप से तो नित्य है और पर्यायरूप से अनित्य है। तो द्रव्य की विवक्षा में नित्य हुआ और पर्याय की अपेक्षा से अनित्य हुआ। और जब नित्यत्व के ये दो मूल भंग हो गए तो अब इस के आधार से शेष ५ धर्म भी सिद्ध कर लेना चाहिए। यों ही एकत्व अनेकत्व आदिक धर्मों के सम्बन्ध में भी सप्तभंगी घटित कर लेना चाहिए। पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से नियम से पदार्थ उत्पन्न होते हैं और नष्ट भी होते हैं। इस छंद में एक यह बात बता दी कि द्रव्यार्थिकनय से वह पदार्थ नित्य है और पर्यायार्थिक नय से पदार्थ अनित्य है। तो यों नित्य और अनित्य में सप्तभंगी बनी है। इसी प्रकार एकत्व अनेकत्व आदिक धर्मों में भी सप्तभंगी घटित होती है।

स्यादनित्यः घटः इस तृतीय भंग की उपपत्ति न होने की शंका—अब शंकाकार कहता है कि प्रथम जो भंग कहा गया है कि स्याद् नित्यः घटः नित्य है इस वाक्य में स्याद् शब्द का अर्थ कथंचित् ही है। जो कि सत्पना के संसर्गरूप से प्रति भासित है याने जो नित्यपना है उसे नित्यपने से युक्त घट है यह हुआ प्रथम वाक्य का अर्थ। स्यादनित्यः घटः उसका अर्थ संसर्ग रूप से बना। तो जैसे प्रथम भंग का अर्थ इस तरह संसर्ग रूप से बना कि द्रव्यरूप से सहित है नित्यत्व, उस नित्यत्व से युक्त है घट यह बात स्याद् नित्यः घटः ने बताया। क्योंकि द्रव्यत्व की व्याप्ति नित्यत्व के साथ है और नित्यत्व की व्याप्ति घट में है। तो जैसे प्रथम भंग का अर्थ यह हुआ सो तो ठीक है, पर द्वितीय भंग में तो बात ठीक नहीं बैठती। याने संसर्ग रूप से अर्थ नहीं ठीक बैठता द्वितीय वाक्य में जो अनित्य पद दिया है उसका तो नित्य भेद अर्थ है। याने नित्यत्व का जो छेदन भेदन करे उसे अनित्य कहते हैं। तो इस प्रकार से पर्यायरूप से सहित नित्य भेद वाला घट है ऐसा ज्ञान द्वितीय वाक्य से प्राप्त होता है। जैसे कि पहिले वाक्य का अर्थ है कि द्रव्यमान से सहित नित्यत्व धर्म से युक्त है तो द्वितीय वाक्य का अर्थ है कि पर्यायरूप से सहित नित्य भेदवान् घट है। ऐसा अर्थ तो प्राप्त होता है लेकिन यों वाक्यार्थ होना अयोग्य है क्योंकि जब द्रव्यरूप से घट नित्य है तब उसमें नित्य का भेद बाधित होता है। नित्य है तो नित्य का

भेदन कैसा ? भेद होता है व्याप्ति वाला व्याप्ति। वृत्ति उसे कहते हैं कि जिसकी सत्ता पदार्थ के सर्व देशों में रहे। जैसे तिल में तैल यह व्याप्तिवृत्ति है। जितना अंश तिल का है उतने ही अंश में तैल व्याप्त रहा है। तो भेद होता है व्याप्तिवृत्ति में। इसके मायने यह है कि नित्य का भेद पूरे तरह से रहना चाहिए लेकिन नित्य में नित्य का भेद कैसे रह सकता है? तब स्याद् अनित्यः घट यह द्वितीय भंग ठीक नहीं बन सकता।

भेद की अव्याप्तिवृत्तिता होने स्यादनित्यः घटः इस द्वितीय भंग की उपपत्ति का समाधान—अब उक्त शंका के उत्तर में कहते हैं कि देखिये—जो यह कहा कि भेद व्याप्तिवृत्ति वाला होता है सो यह नियम नहीं बनता। भेद अव्याप्ति वृत्तिक भी होता है। देखो जैसे कहा—“मूले वृक्षः संयोगी न” याने मूल स्थान में वृक्ष मरकट आदिक के संयोग से सहित नहीं है। जैसे वृक्ष पर बन्दर आदिक चढ़ रहे हैं तो शाखाओं तो बंदरों के संयोग से सहित है मगर उस वृक्ष का मूल भाग बन्दर आदिक के संयोग से सहित नहीं है। और यह बात प्रतीति में आ रही है। अनेक पुरुष देखते हैं कि वृक्षों पर बन्दर चढ़ते हैं, पर वृक्ष के जड़ से भी कोई बन्दर चिपकता है क्या? तो देखो वृक्ष मूल में संयोगी न रहा। तो अब यहां भेद की अव्याप्तिवृत्तिता बन गई ना? अर्थात् यहां भेद पदार्थ के एक देश में रहा ना। संयोगी का भेद वृक्ष के मूल में हैं और शाखाओं में नहीं है। वृक्ष एक है तो यहां भेद अव्यावृत्ति वाला हो गया। और जो अव्याप्ति वृत्तिपना है सो इस प्रकृत प्रसंग में प्रतियोगी वृत्तिपना रूप है। प्रतियोगी वृत्तित्व का अर्थ यह है कि जिसका अभाव कहा जाता है। वह प्रतियोगी कहा जाता है। जैसे नित्य भेद का प्रतियोगी नित्य है, संयोगी भेद का संयोगी संयोगवान् वृक्ष है। प्रतियोगी कहते हैं मुकाबले में उल्टे को। तो संयोग के अभाव का उल्टा क्या? संयोग। नित्यपने के अभाव का प्रतियोगी क्या? नित्य। तो जैसे संयोगी भेद का प्रतियोगी क्या हुआ? संयोगवानवृक्ष। तो उसका किसी देश में संयोगी का भेद भी पूर्ण रूप से है। जिस देश में संयोग नहीं है वहां संयोग का अभाव पूर्णरूप से है ना। क्योंकि शाखा आदिक में यद्यपि वृक्ष बंदरों से संयुक्त है लेकिन मूल भाग में संयोग भेद विद्यमान है। वहां अन्य बंदर आदिक नहीं है। इसी रीति से घट में भी घटाओ। घट में पर्यायसहित उस नित्य का भेद भी है। यद्यपि घट द्रव्य दृष्टि से नित्य हैं मगर घट को ही जब पर्याय दृष्टि से देखते हैं तो उसे एक देश में देखा ना, तो उस एक देश में नित्य का भेद भी है। मायने नित्य नहीं है घट। जैसे वृक्ष कहीं संयोग है, कहीं संयोग का भेद है। ऐसे ही घट में द्रव्य दृष्टि में नित्य का संसर्ग हैं और पर्यायदृष्टि में नित्य का संसर्ग नहीं है। यों पर्यायरूप से देखा जाय तो नित्य भेद से युक्त घट है ऐसा द्वितीय वाक्य का अर्थ करने में कोई हानि नहीं है। बात सीधी यह है कि द्रव्य दृष्टि से घट नित्य है। पर्यायदृष्टि से घट अनित्य है। एक ही घट को नित्य कह दिया तो

फिर अनित्य कैसे कहा ? यह शंका न करना चाहिए। नित्यत्व की विवक्षा और है, अनित्यत्व की विवक्षा और है। घट में जो मृत्तिका है वह सदा रहता है। उस द्रव्य से नित्य है और घट की पर्याय नष्ट हो जाती है उस दृष्टि से अनित्य है।

एकत्व धर्म के सम्बन्ध में सप्तभंगी—अब एकत्व और अनेकत्व की सप्तभंगी बताते हैं। प्रथम भंग है स्याद् एक घटः दूसरा है स्याद् अनेक घटः। कथंचित् घट एक है और कथंचित् अनेक हैं ये दो मूल भंग हुए। याने द्रव्यरूप से तो एक ही घट है क्योंकि मृत्तिका रूप द्रव्य पिण्ड में, कोश में, कुशूल में सभी पर्यायों में रहा, याने मिट्टी का लौंधा, मिट्टी का डंडा और मिट्टी की कुठिया फिर बना घट। तो जितनी पर्यायें हुईं उन सबमें मिट्टी जो है वह ऊर्ध्वता सामान्य रूप हुई। ऊर्ध्वता सामान्य कहते हैं कि कलापेक्षया पूर्वोत्तर काल में जो रहे सामान्य। तो मिट्टी में जो पिण्डादिक अनेक पर्यायें हुईं उन सब पर्यायों में मिट्टी रही। तो वह ऊर्ध्वता सामान्यरूप रहा। यों घट स्यात् एक है और पर्याय रूप से अनेक घट हैं? यद्यपि घट तो वह एक है सामने जिसके बारे में बात कर रहे हैं। लेकिन वह घट रूप, रस, गंध, स्पर्श आदिक अनेक पर्यायरूप है। तो जिन-जिन पर्यायरूप से वह भिन्न है उन-उन पर्यायों की दृष्टि से तो भिन्न -भिन्न बन गया। वही घट काला है, बुरी गंध वाला है, यों कितनी ही बातें बोलेंगे। तो उन-उन अपेक्षाओं से घट अनेक हुए। यों जब स्याद् एकः स्याद् अनेकः ये दो मूल भंग निर्बाध सिद्ध हो गये तो स्याद् एक अनेक स्याद् अवक्तव्य, स्याद् अनेकानेक अवक्तव्य ये सब भंग उसमें सिद्ध हो जाते हैं।

“सर्व एक” इसमें सप्तभंगी के संदेह की शंका व समाधान—अब इस प्रसंग में शंकाकार कहता है कि द्रव्यार्थिकनय का और पर्यायार्थिकनय का आश्रय करके एक और अनेक आदिक सप्तभंगी मान भी ली जाय तब भी यह कैसे संगत होगी कि समस्त पदार्थ स्याद् एक हैं स्याद् अनेक हैं। सप्तभंगी तो सब जगह लगाओ। सर्व वस्तु स्याद् एकः स्याद् अनेकः यह बात उसमें संगत हो सकती, क्योंकि किसी प्रकार से सब वस्तुओं की एकता नहीं हो सकती। सारे पदार्थ है, वे एक रूप कैसे हो जायेंगे ? यदि कोई यह कहे कि सत्त्व के रूप से तो सब वस्तु एक है, चाहे जीव हो, है तो सभी सत् ! तो उस सत् की दृष्टि से सब वस्तुओं में एकता हो जायेगी, सो भी बात कह सकते, क्योंकि समस्त वस्तु में व्याप्त करके रहने वाले एक सत्त्व को जैन सिद्धान्त ने अंगीकार नहीं किया जैसे कि मीमांसक सिद्धान्त ने सत्त्व एक है और उसका समवाय सर्व पदार्थों में होता है। यों अलग से कोई एक सत्त्व है और वह सर्व पदार्थों में व्यापक है। यह जैन सिद्धान्त के अनुसार युक्त नहीं है। जैन सिद्धान्त के अनुसार तो सदृश परिणमनरूप प्रति व्यक्ति में रहने वाला सत्त्व जाति अपेक्षा से एक तथा उस व्यक्ति रूप सत्त्व प्रतिव्यक्ति में भिन्न ही सिद्ध है।

याने जिस दृष्टि से सर्व पदार्थों की सदृशता जानी जाय उस दृष्टि से एक सत् कहा है तो वह जाति अपेक्षा से है। मगर प्रत्येक पदार्थ में सत्त्व भिन्न-भिन्न ही सिद्ध हो जैसे जीव का लक्षण उपयोग है पुद्गल का लक्षण मूर्तपना है तो ये सब भिन्न-भिन्न ही तो रहे। हाँ सभी में सत्त्व है, इस जाति से एक सत्ता है, परन्तु परिणमन अनुभव प्रदेश इन सबके जुदे हैं। ऐसा एक सत्त्व समस्त पदार्थों में व्याप करके नहीं रह सकता। फिर यह भंगी सामान्य विशेष की अपेक्षा से बनेगी कि सर्व वस्तु स्याद एक है और स्याद अनेक हैं।

तिर्यक् सामान्य की अपेक्षा से सर्व में एकत्व की प्रसिद्धि—उपयोगी लक्षण इस सूत्र के तात्पर्य में तत्त्वार्थ क्षोकवार्तिक में बताया गया है कि उपचार से एक ही काल में सदृश परिणामरूप अनेक व्यक्ति में व्यापी एक सत्त्व नहीं माना गया है। अर्थात् कोई एक ही सत् नाम का पदार्थ हो और वह फिर समस्त पदार्थों में व्याप करके रहे ऐसा सत्त्व नहीं है किन्तु जो पदार्थ है वह पदार्थ स्वयं सत् है और उन सब सत् पदार्थों के इस पदार्थों के इस सत्त्व धर्म को देखकर कहा जाता है कि सत्त्व की अपेक्षा सब एक है। जैसे अनेक मनुष्यों को कहा जाता है कि मनुष्यत्व की अपेक्षा सब एक है, पर वहां यह बात तो नहीं है कि मनुष्यत्व नाम का कोई पदार्थ है और वह एक है। फिर इन मनुष्यों में प्रवेश करके इन्हें मनुष्य बनाता है, ऐसा तो नहीं है। मनुष्य सब स्वयं स्वतंत्ररूप से पूरे -पूरे मनुष्य है। तो उन सब मनुष्यों में मनुष्यता की समानता है। इस समानता की दृष्टि से उपचार से कहा जाता है कि मनुष्य एक है। तो केवल उपचार कथन हैं। वस्तुतः एक सत्ता सब में व्यापक हो सो बात नहीं है। इस ही संबन्ध में परीक्षामुख सूत्र में भी बताया है कि ‘सदृशपरिणामस्तिर्यक खण्डमुण्डादिषु गोत्ववत्’ खण्डी मुण्डी आदिक अनेक गायों में जैसे गोत्व के सदृश परिणाम है ना, तो वे प्रत्येक गाय से भिन्न-भिन्न हैं। परन्तु सदृश परिणाम है उसे कहते हैं। तिर्यक् सामान्य। अर्द्धता सामान्य तो पूर्वोत्तर कालवर्ती पदार्थों में रहने वाला एक द्रव्य सामान्य ग्रहण में आता है और तिर्यक् सामान्य में पृथक्-पृथक् व्यक्तियों में जिस सदृश धर्म द्वारा समानता बताना है उस धर्म की समानता को कहते हैं तिर्यक् सामान्य। इसके सम्बन्ध में मार्तण्ड में खुलासा किया जाता है कि सदृश परिणामरूप प्रत्येक में भिन्न-भिन्न अनेक सत्त्व तिर्यक् सामान्य है। जैसे अनेक मनुष्यों में यह कहना कि मनुष्यत्व हैं यह तो है तिर्यक् सामान्य और एक ही मनुष्य के बालकपन, जवान, बुढ़ापा आदिक सब दशाओं में मनुष्यत्व बताना यह है अर्द्धता सामान्य। तो प्रकरण में यह बात कहीं जा रही है कि समस्त वस्तु कथंचित् एक है, कथंचित् अनेक है। तो इसमें जो एकपना बताया गया है वह सदृश परिणाम की अपेक्षा कह सकेंगे, पर सभी वस्तुवें वस्तुतः एक हो जायें सो नहीं है। एक तो वह कहलाता है जो अखण्ड होता है, ये दिखने वाले चौकी, र्भींट आदिक अनेक पदार्थ हैं। इनमें से एक चौकी

को ही दृष्टान्त में ले लो तो चौकी भी एक नहीं है। पदार्थ की दृष्टि से चौकी में अनन्त परमाणु हैं और वे एक-एक परमाणु एक-एक पदार्थ हैं। तो यों यह सिद्ध हुआ कि तिर्यक सामान्यरूप सत्त्व प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न-भिन्न है लेकिन उपचार से एक कह दिया जाता है।

सत्ता की सप्रतिपक्षता का वर्णन—अब शंकाकार यहां कहता है कि तब तो तिर्यक सामान्यरूप सत्त्व जबकि प्रत्येक व्यक्तियों में भिन्न है तो सर्व वस्तु में सत्त्व की अपेक्षा से एकता कैसे घटित होगी ? तो इसके उत्तर में सुनो कि सत्ता सामान्य एक अनेक आदिक हैं, ऐसा सिद्धान्त में स्वीकार किया गया है वह किस तरह कि व्यक्तिरूप से यद्यपि सत्त्व अनेक हैं याने जितने पदार्थ हैं। उतने ही सत्त्व है। पदार्थ ही स्वयं सत् है। उनका तो धर्म है सो सत्त्व है। तो प्रत्येक व्यक्ति में उनका अपना सत्त्व है। अतएव अनेक है लेकिन सत्त्व अपने स्वरूप से हैं यों एक है। पूर्व आचार्यों के बचनों से जो सत्ता को स्वीकार किया गया है वह सत्त्व के स्वरूप से एक है न कि प्रति व्यक्ति एक सत्ता ही रहती है। सत्त्व का स्वरूप क्या है ? उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्त सत्। उत्पादव्यय ध्रौव्य से तन्मय होता है यह है सत्त्व। और प्रत्येक सत्त्व का यही स्वरूप है ? यह नहीं है कि किसी पदार्थ के सत्त्व का स्वरूप तो उत्पादव्यय ध्रौव्यमय हो और किसी व्यक्ति में उसका स्वरूप अन्य कुछ हो। ऐसा भिन्न होने से सत्त्व एक कहलाता है। तब जो लोग सत्त्व को सर्वथा एक ही मानते हैं। उनका ही निराकरण है न कि कथंचित् एकत्व का निराकरण है। यदि कोई पुरुष सत्त्व स्वरूप को अनेकपन में ही माने तो पृथक्क एकान्त पक्ष का आदर होगा। अनेक व्यक्तियों में सम्मानरूप से रहने वाले एक धर्म को यदि नहीं स्वीकार करते तब फिर सदृशता की बात कहना भी असम्भव है, क्योंकि सदृशता तो उसे ही कहते हैं कि पदार्थ तो हो भिन्न-भिन्न, किन्तु उनमें रहने वाले धर्म समान हो उसे कहते हैं सादृश्य । जैसे कोई कविजन मुख की कल्पना चन्द्र से करने लगते हैं तो चन्द्र तो भिन्न है, मुख भिन्न है, पर चन्द्र के दो धर्म मुख से उपचारित किये गये हैं। जैसे चन्द्र एक आल्हादकारी है अथवा जैसे उसका गोल आकार है वैसे ही मुख का भी गोल आकार है। ऐसा कुछ धर्मों की सदृशता से सदृशता और उपमा दी जाती है। जहां कहीं किसी भी वस्तु को किसी के भी समान बताया जाय वहां बात क्या सिद्ध होती है कि वे पदार्थ हैं तो परस्पर में भिन्न-भिन्न लेकिन उनमें रहने वाला कोई धर्म सदृश मिल जाया करता है इससे भी यह समझिये कि पदार्थ तो परस्पर वस्तुतः भिन्न होते हैं पर उनमें कई धर्म सदृश हो जाते हैं। इसी तरह घटत्व रूप एक धर्म को लेकर दो घटों में परस्पर साधर्म्य माना गया है, पर प्रत्येक घट में उनका अपना-अपना असाधारण धर्म है। कोई घट कच्चा है, कोई पक्का है। कोई अच्छी मिट्टी का है, कोई साधारण मिट्टी का है। यों उन घड़ों में जितने घड़े हैं उतने ही उनमें अन्तर है। तो वे परस्पर में अत्यंत भिन्न हैं और अपने-अपने उत्पाद व्यय ध्रौव्य

को लिए हुए हैं। किसी भी घड़े का उत्पादव्यय अन्य कोई घड़ा नहीं कर रहा है। यों भिन्न-भिन्न होने पर घटत्व की अपेक्षा वे समान है इसलिए कथंचित् एक भी कहा गया है। वस्तुतः तो वे घट अनेक हैं। अथवा एक ही घट में उनके परखने के साधन भिन्न-भिन्न हैं ना। चक्षु के द्वारा रूप देखा जाता है, धारण के द्वारा गंध जाना जाता है, सो यों परखने के भेद से अनेक घट हो सकते हैं।

साधारण और असाधारण धर्म की अपेक्षा से सबके ऐक्य और अनेक्य की सिद्धि—यहां प्रसंग की बात चल रही है कि शंकाकार ने यह शंका की थी कि समस्त वस्तुवें कथंचित् एक है कथंचित् अनेक हैं। ऐसी भी तो सप्तभंगी लगना चाहिए और तब एक कैसे बन गये समस्त पदार्थ ? उसका उत्तर दिया जा रहा है कि उपचार से एक बन गया है अर्थात् जो धर्म समस्त पदार्थों में समानता से पाया जाय उस धर्म की अपेक्षा से वस्तु सब एक है। यों यदि सदृश धर्म की अपेक्षा एक नहीं माना जाय तो फिर साधारण धर्म और असाधारण धर्म का अन्तर ही क्या ? इसका कथन ही कैसे बन सकेगा ? साधारणपना कहते ही उसे है कि अनेक व्यक्तियों में अन्वरूप से जो रहे। जैसे जितने भी जीव है उन सब जीवों में उपयोग सामान्य साधारण रूप से रह रहा है और उपयोग विशेष यह असाधारण रूप से रह रहा है। अथवा समस्त पदार्थों में साधारणरूप से अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्व, और प्रमेयत्व ये ६ धर्म रहते हैं। इसी कारण इन ६ धर्मों को साधारण धर्म कहा गया है। तो साधारणत्व के कथन से भी यही सिद्ध होता है कि प्रत्येक भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में अनुगत रूप से जो धर्म रहता है उसे साधारण धर्म कहते हैं। यों सत्त्व नामक साधारण धर्म की अपेक्षा से समस्त वस्तुओं को एक ही कहा गया है। और यों सब वस्तुवें कथंचित् एक है और कथंचित् अनेक हैं यह बात सिद्ध हो जाती है अनेक तो हैं ही , इसमें कोई विशेष प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं हैं क्योंकि प्रत्येक वस्तु का अपने आप में जुदा-जुदा परिणमन है। और, वे समर्थ पदार्थ एक है उपचार से अर्थात् जो साधारण धर्म उन सब पदार्थों में है जैसे सत्त्व, द्रव्यत्व, वस्तुत्व आदिक उनकी अपेक्षा से सभी वस्तुयें एक हैं। इसी बात को स्वामी समन्तभद्राचार्य ने आसमीमांसा में बताया है कि “सत्सामान्यात् सर्वेऽकां प्रथग्द्रव्यादिभेदतः। भेदाभेदविवक्षायामसाधारण हेतुवत्”। भेद अभेद की विवक्षा में असाधारण हेतु के समान उस सामान्य से सबकी एकता है और द्रव्यादिक के भेद से पृथक्ता भी है अर्थात् द्रव्य तो पृथक्-पृथक् हैं, उनका उत्पादव्यय ग्रौव्य उनका उनमें ही पृथक्-पृथक् है, इस दृष्टि से तो वे अपनी-अपनी आवान्तर सत्ता लिये हुए हैं, लेकिन सत्ता सामान्य की अपेक्षा से देखा जाय तो सब एक है। तो परमार्थतः विचार करने पर तो यह सिद्धान्त होता है कि जो परिणमन जिसमें अभेदरूप से होता है वह एक पदार्थ है। यों अपने स्वरूप से परिणमने

वाले पदार्थ एक-एक हैं। उनमें सदृश धर्म को निरख करके कहा जाता है कि ये सब पदार्थ एक हैं। यों सब वस्तुओं में भी स्याद् एक स्याद् अनेक इस प्रकार के भंग घटित हो जाते हैं।

‘स्व स्यादेक स्यादनेक’ की उदाहरणपूर्वक सिद्धि—स्याद् एक अनेक के बोध के लिए एक उदाहरण है—हेतुपक्षाधर्मत्व आदिक भेद विवक्षा में अनेक हैं और हेतुपने की अपेक्षा से एक है। हेतु में पक्षधर्मत्व सपक्षसत्त्व और विपक्षव्यावृत्ति ऐसे ३ धर्म माने गए हैं। तो हेतु इन ३ धर्मों को देखा जाय तो पृथक्-पृथक् धर्म के आशय में हेतु पृथक्-पृथक् रूप से विदित होंगे। और, तब हेतु अनेक हो गया। फिर भी वे तीन प्रकार के हेतु जो उदाहरण रूप में कहे हैं जिसमें पक्षधर्मत्व है व जिसमें सपक्ष सत्त्व है व जिसमें विपक्ष व्यावृत्ति हैं, ये तीनों ही हेतु ही तो है। सो वे एक ही तो है। यों हेतु रूप से देखने पर वह एक है। इसी प्रकार सर्वसत् एकं अनेकं, सबको सत्त्व की ओर से देखा तो सत्त्व की अपेक्षा से सारा विश्व एक है, पर जीवद्रव्य, पुङ्गलद्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य यों द्रव्यादिक के भेद से वे अनेक हैं। इस प्रसंग में एक का भेदवान् द्वितीय भंग है, यह भी बात घटित कर सकेंगे कि जैसे स्याद् नित्यः और स्याद् अनित्यः इस प्रयोग में की हुई शंका के समाधान में कहा था। यहां भी यह शंका की जा सकती है कि हेतु कथंचित् एक है और कथंचित् अनेक हैं। इसका अर्थ है एक का भेद हो गया, एकत्व को खत्म कर दिया तो एक का जो भेदन है सो वहां यह बोला जायेगा कि पर्याय से सहित एक भेदवान हेतु है। तो यह अर्थ तो अयुक्त रहेगा, क्योंकि जो एक है उसमें एक का भेद कैसे बनेगा ? क्योंकि भेद तो व्याप्यवृत्ति होती है। जितना एक है उस सबमें ही एक का भेद न रहे तो यह कैसे सम्भव है ? ऐसी शंका का उत्तर पूर्वकत ही यों दिया जायेगा कि पर्याय से सहित हैं, इस रूप से भेद है। जैसे वृक्ष उन शाखा आदिक में संयोगी है। वहां बन्दर आदिक चढ़े हुए हैं और वृक्ष के मूल देश में संयोगी भेद है। तो भेदवान व्याप्यवृत्ति ही हो यह नियम नहीं हैं। वह एक देश में होता, वह एक देश में होता, बल्कि भेद प्रायः अव्यावृत्ति ही होता है। तो यों स्याद् एक के साथ लगा हुआ जो स्याद् अनेक नाम का दूसरा भंग है उसका वाक्यार्थ ठीक ही घटित हो जाता है।

“स्याजीवः स्यादजीवः” सम्बन्धी सप्तभंगी—अब जैसे अब तक अनेक प्रकार की सप्तभंगियाँ दिखाई गई है उनमें से एक सप्तभंगी जीव के सम्बन्ध में भी बताते हैं। यों कहना कि यह कथंचित् जीव है और कथंचित् अजीव है, ये मूल में दो भंग हुए। इनका वाक्यार्थ क्या हुआ ? कि देखो ! उपयोगरूप से तो यह जीव है और अप्रमेयत्वादिक अन्य धर्मों के रूप से यह अजीव है ऐसा अकलंकस्वामी ने भी बताया है कि ‘प्रमेयत्वादिभिर्भैरंगचिदात्मा चिदात्मकः । ज्ञान

दर्शनतस्तस्माचेतनाचेतनात्मकः।' प्रमेयत्वादिक धर्मो से तो जीव अचेतनरूप है और ज्ञानदर्शन उपयोग से जीव अचेतनरूप है। यों यह जीव चेतनस्वरूप और अचेतनस्वरूप दोनों प्रकार से परखा जाता है। तात्पर्य यह है कि जीव एक द्रव्य है। द्रव्य में साधारण गुण और असाधारण गुण रहा करते हैं। तो जीव में जो असाधारण गुण है वह तो है चेतन। उसकी दृष्टि से तो यह पदार्थ जीव है और उसमें जो साधारण गुण है अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व आदिक तो ये धर्म जैसे अचेतन में रहते हैं। ऐसे ही इस जीव में भी रहे। दूसरी बात यह है कि इन धर्मों का स्वयं का स्वरूप चैतन्यात्मक नहीं है। अस्तित्व का स्वरूप सत्ता कायम करना है। वस्तुत्व का स्वरूप स्वद्रव्य से होना, परद्रव्य से न होना। प्रमेयत्व धर्म का स्वरूप ज्ञान में ज्ञेय बन जाना है। तो यह सब स्वयं चिदात्मक नहीं हैं। तो यों इन धर्मों की दृष्टि से देखने पर यही जीव चेतनात्मक विदित न हुआ, तब ये दो भंग हुए कि कथंचित् यह जीव है और कथंचित् यह अजीव है। इस प्रसंग में अजीववृत्ति प्रमेयत्वादिक धर्मों वाला होना, यह तो है अजीवपना याने प्रमेयत्वादिक धर्म अजीव में रहते हैं और उन प्रमेयत्वादिक धर्मों से युक्त यह है तो यह भी अजीव दिख गया। और, जीवत्व के मायने है ज्ञानदर्शनादिक स्वरूप होना तो यों यह पदार्थ कथंचित् जीव है और कथंचित् अजीव है, इस प्रकार मूल के दो भंग सिद्ध होना चाहिए फिर तो शेष ५ भी उसके बन जाते हैं। तब इसकी सप्तभंगी इस प्रकार हुई कि कथंचित् यह जीव है और कथंचित् यह अजीव है। कथंचित् जीव अजीव है। कथंचित् यह अवक्तव्य है।, कथंचित् जीव अवक्तव्य है और कथंचित् अजीव अवक्तव्य है। और कथंचित् यह अजीव अवक्तव्य है।

अनेकान्तवाद में छल के सन्देह का अनवकाश—अब शंकाकार यहां कहता है कि यह अनेकान्तवाद तो हमें कोरा छल ही दिख रहा है। यों बोलना कि वही है, वही नहीं है, वही नित्य है, वही अनित्य है। इस तरह की निरूपणायें की जा रही है अनेकान्तवाद में यह तो छल मात्र जंचता हैं। इसके समाधान में कहते हैं कि अनेकान्तवाद को छल मात्र कहने की बात युक्तिपूर्ण नहीं है क्योंकि इसमें छल का लक्षण घटित नहीं होता। छल का लक्षण यह है कि अन्य अभिप्राय से तो बात कहीं गई और अब उस कथित बात का अर्थ दूसरा रचकर दूषण कर दिया जाये तो वह छल कहलाता है। याने बात कहीं हो किसी न किसी अभिप्राय से और अर्थ लगा देवे अन्य अभिप्राय का, और फिर दूषण देवे तो यह छल है। जैसे किसी ने कहा कि नवकम्बलः अयं देवदत्तः ? जिसका प्रकृत अर्थ यह है कि देवदत्त कोई नया कम्बल ओढ़कर आया हुआ था उसे देखकर किसी ने कहा कि यह देवदत्त नवकम्बल वाला है याने नये कम्बल वाला है नव यहां नव के दो अर्थ होते हैं। एक नव का अर्थ है नया और एक नव का अर्थ है संख्या के ९। तो उसने कहा कि यह नवकम्बल वाला है अर्थात् नये कम्बल वाला है। तो कोई दूसरा उसे

नीचा दिखाने के लिए कह उठता है—वाह रे वाह तुम कैसा असत्य कह रहे हो । देवदत्त तो बेचारा गरीब हैं उसके पास तो दो कम्बल भी नहीं हैं और तुम कह रहे हो । देवदत्त ९ कम्बल वाला है। तो देखो यहां दोनों के अभिप्राय में ही भेद है। एक का अभिप्राय है नव अर्थात् नये कम्बल वाला और एक का अभिप्राय है नव अर्थात् ९ कम्बल वाला। तो यह कहलाया छल कि कहा तो किसी अभिप्राय से कुछ और अर्थ लगाया किसी अन्य अभिप्राय से दूसरा। तो उसे दूसरे अभिप्राय की बात उपस्थित करके उसे दूषित ठहराना यह है छल । लेकिन अनेकान्तवाद में यह पद्धति नहीं है कि किसी अभिप्राय से कोई शब्द बोला जाय और उसका अर्थ दूसरा बनाया जाये। वहां तो केवल स्यात् शब्द लगाकर यह स्पष्ट संकेत कर दिया जाता कि यह अमुक दृष्टि से ऐसा ही है। तो छल का लक्षण अनेकान्तवाद में घटित न होने से इसको छलमात्र नहीं कह सकते। अनेकान्तवाद तो स्पष्ट एक प्रमाणभूत पद्धति है। जिसके बल से पदार्थ का यथार्थ निर्णय होता है। कभी कोई यह कहे कि किसी एक देवदत्त के प्रति यह पिता है। बड़ा हो जाने पर, उम्र में उस लड़के से अधिक होने पर लोग कहते हैं कि अब तो बाप बन गया। तो यह बाप भी है और यह बेटा भी है। यह तो छल की बात है। सो इसमें छल जरा भी नहीं। परिचयी लोग उसका स्पष्ट अर्थ लगा लेते हैं कि उत्पन्न हुए लड़के की अपेक्षा से तो यह पिता है और अपने पिता की अपेक्षा से यह पुत्र है। तो छल की बात वहा नहीं है। इसी प्रकार अनेकान्तवाद में स्यात् शब्द कहकर सब स्पष्ट कर दिया जाता है कि इस अपेक्षा से यह तत्त्व है। तो अनेकान्तवाद में इस छल का कोई अवकाश नहीं है।

अनेकान्त को संशय हेतुता मानने की शंका—अब शंकाकार यहां कहता है कि अनेकान्तवाद तो संशय का कारण है, क्योंकि एक वस्तु में विरोधी अस्तित्व नास्तित्व आदिक धर्म सम्भव ही नहीं है। संशय का लक्षण यह है कि एक वस्तु का विशेष्य करके उसमें विरुद्ध नाना धर्मों के प्रकार का ज्ञान करना तो संशय है। जैसे सुबह कुछ अंधेरे उजाले के समय में कोई पुरुष घूमने गया, उसे बहुत दूर से कोई ऊंची सी चीज दिखी, वह पुरुष जैसी चीज भी हो सकती थी अब वहां उसे इस प्रकार का ज्ञान बन रहा है कि यह ढूँठ है या नहीं, तो यहां देखिये ! कि एक धर्मों को तो विशेष्य बनाया। जो कुछ पदार्थ आंखों दिख रहा है वह तो है विशेष्य जिसको कि यह कहकर बताया है ढूँठ है या नहीं । तो यह कहकर जिसका परिज्ञान किया गया है वह तो एक धर्मी विशेष । अब उसमें स्थानुपना हैं या उसका अभाव है इस तरह का ज्ञान बन रहा है तो यह संशयज्ञान हुआ। एक विशेष्य पदार्थ में विरुद्ध धर्म को विशेषण रूप से ज्ञान करने का नाम संशय ज्ञान है, तो इस प्रकार अस्तित्व नास्तित्व आदिक विरुद्ध धर्म भी हुए तो विशेषण और उन विशेषणों से सहित घट आदिक पदार्थ विशेष्य का ज्ञान किया गया तो यहां इस ढंग

का जो अनेकान्तवाद कहा है वह तो संशय का कारण है। अतः अनेकान्तवाद कोई संयुक्त शासन और पद्धति नहीं है।

अनेकान्त में संशय का लक्षण घटित न होने से संशय हेतु का अभाव—अब उक्त शंका के उत्तर में कहते हैं कि अनेकान्तवाद को संशय हेतु बताना अथवा वह संशय का कारण है, ऐसा संशय करना योग्य नहीं है, क्योंकि संशय का जो विशेष लक्षण है वह यहां नहीं पाया जाता। यहां तो अनेकान्तवाद में निश्चयात्मक विशेष लक्षण पाया जाता है। देखिये ! संशयज्ञान होता कब है कि सामान्य का तो प्रत्यक्ष हो अर्थात् जो उन दोनों विशेषणों में सर्व सम्भव हो उसका तो हो रहा हो प्रत्यक्ष। याने जिन दो तत्त्वों को सन्देह किया गया है उन दो में प्रतिव्यक्ति अलग-अलग जो विशेष धर्म पाये जा सकते हैं उन विशेष धर्मों का ज्ञान हो नहीं रहा। लेकिन उन विशेष धर्मों की स्मृति हो रही है। उस समय में संशय ज्ञान होता है। जैसे उस वस्तु में ठूठ अथवा पुरुष दोनों ही संभव हो सकते हैं। तो जहां न अधिक प्रकाश है न अंधकार है ऐसे मलिन समय में किसी पुरुष को एक ऊंचा सा दिखा तो यह ऊंचापन तो सामान्य हुआ। उतनी ऊंचाई ठूठ में भी संभव है और पुरुष में भी । तो दोनों में संभव हो सकने वाली ऊंचाई तो देख लिया। अब उन दोनों में जो असाधारण धर्म है, जैसे ठूठ के धर्म हैं। कुछ टेढ़ा सा कोटर होना, उसमें पक्षियों का घोसला होना आदिक जो कुछ ठूठ के हो सकते हैं। उनको इस पुरुष ने नहीं देखा। वे जानने में ही नहीं आये। अथवा पुरुष में जो विशेष धर्म हो सकते हैं कि कोई वस्तु धारण किए हो, चोटी हो, हाथ-पैर हो। ऐसे कुछ विशेष भी वहां जानने में नहीं आये लेकिन उन दोनों का स्मरण जरूर है कि ठूठ में यह धर्म होता है। तो ऐसी स्थिती में जहां पुरुष और ठूठ दोनों पाये जाने वाले साधारण धर्म का तो प्रत्यक्ष हो रहा है और दोनों में विशेष पाये जाने वाले लक्षण का वहां ज्ञान नहीं हो रहा किन्तु विशेष लक्षण का स्मरण हो रहा तो वहां संशय ज्ञान बना लेकिन अनेकान्तवाद में तो विशेष लक्षण की उपलब्धि निश्चित रूप से हो रही है संशयज्ञान तो वहां बनता कि सामान्य ज्ञान की उपलब्धि न हो, और दोनों विशेष लक्षणों की स्मृति हो, किन्तु अनेकान्तवाद में तो विशेष लक्षण की उपलब्धि तो स्पष्ट और निर्बाध हो रही है, क्योंकि स्याद्वाद से प्रत्येक अर्थ में अपने स्वरूप और पर के रूप इन विशेषों की स्पष्ट उपलब्धि है। इस कारण अनेकान्तवाद में संशय का कारण नहीं कहा जा सकता। क्योंकि में बिल्कुल स्पष्ट विशेष लक्षण की उपलब्धि है। जब कहा स्यादनित्यः घटः तो निश्चय रूप से यह कहा गया कि द्रव्यदृष्टि की अपेक्षा से घट नित्य ही है। एवकार शब्द से भी प्रयोग हो रहा है। जो निश्चय का सूचक है। स्याद् अनित्यः घटः पर्यायदृष्टि की अपेक्षा से घट अनित्य ही है। अब इसमें संशय का

स्थान क्या ? जो विशेष लक्षण है उनकी स्पष्ट उपलब्धि है और एवकार शब्द देकर उनका पूर्ण निश्चय कराया गया है। इस कारण अनेकान्तवाद में संशय का अवकाश नहीं है।

अनेकान्त में विशेष लक्षण की उपलब्धि मानने पर संशय की दुर्निवारता की आशंका—अब शंकाकार यहां कहता है कि विशेष लक्षण की उपलब्धि भी मान ली जाय अनेकान्तवाद में तब भी संशय का निराकरण करना कठिन है। संशय तो यहां सिद्ध होता है। जैसे बतलाओ घट आदिक पदार्थ में अस्तित्व आदिक धर्मों के साधक प्रतिनियत हेतु है या नहीं ? यदि कहोगे कि घट आदिक में अस्तित्व धर्मों के साधक कोई प्रतिनियत हेतु नहीं है तब तो जिसमें कोई हेतु नहीं, जो विवादग्रस्त है, उसका तो प्रतिपादन ही नहीं हो सकता। और जिसका प्रतिपादन नहीं हो सकता उसके सम्बन्ध में निश्चय चर्चा मार्ग आदिक कुछ नहीं बताया जा सकता। यदि कहो कि घट आदिक पदार्थों का अस्तित्व आदिक कुछ नहीं बताया जा सकता। यदि कहो कि घट आदिक पदार्थों का अस्तित्व आदिक धर्मों के साधक प्रतिनियत हेतु है तो संशय तो अपने आप सिद्ध हो गया। क्योंकि एक वस्तु में परस्पर विरुद्ध अस्तित्व और नास्तित्व आदिक धर्मों के साधक हेतु पाये जा रहे हैं। वस्तु है एक और उसमें अस्तित्व को सिद्ध करने वाला भी हेतु है और आप नास्तित्व को सिद्ध करने वाला भी हेतु । तो परस्पर विरुद्ध धर्म की सिद्धि करने वाले हेतु पाये जा रहे हैं। तब तो संशय दुर्निवार हो गया। जैसे उस विवादापन्न ऊँची चीज में कुछ लक्षण पाये जायें ठूठ के और कुछ लक्षण पाये जा रहे पुरुष के हैं, अथवा ठूठ के लक्षण ज्ञात हो रहे हैं तब तो संशय होगा ही। यों तो एक वस्तु में अस्तित्व धर्म के हेतु भी पाये जा रहे हैं और नास्तित्व धर्म के पाये जा रहे हैं। तब तो संशय होना तो बिल्कुल ही दुर्निवार है। संशय का निवारण नहीं किया जा सकता।

अवच्छेद भेद की अर्पणा में परस्पर विरुद्ध लक्षण वाले धर्मों का एक धर्म में अविरोध होने से अनेकान्तवाद में संशय का अनवकाश—अब उक्त शंका के उत्तर में कहते हैं कि विशेष लक्षण के साधक हेतु बताकर संशय की बात लगाना युक्त नहीं हैं। क्योंकि अस्तित्व और नास्तित्व का पृथक् करने वाले भेद के द्वारा जब उनकी विवक्षा की जाती है तब इनमें विरोध नहीं रहता। जैसे कि एक ही देवदत्त में एक की अपेक्षा से पितापन कहना और अन्य की अपेक्षा से पुत्रपन कहना, ये दोनों ही परस्पर विरोध रहित है। जैसे देवदत्त के पुत्र का नाम हो यज्ञदत्त और पिता का नाम हो सोमदत्त, तो अब यज्ञदत्त की अपेक्षा से तो देवदत्त पिता हुआ और सोमदत्त की अपेक्षा से देवदत्त पुत्र हुआ। अब उस एक देवदत्त में पितापन भी आ जाना और पुत्रपन भी आ जाना इसमें क्या कुछ विरोध है ? कुछ भी विरोध नहीं। क्योंकि पितापन और पुत्रपन को पृथक् करने वाले

भेद उसकी दृष्टि में है अथवा देखिये जो हेतु अन्वय व्यतिरेकी होता है अर्थात् जिस हेतु का अन्वय व्यतिरेकी दृष्टान्त, अन्वय व्याप्ति व्यतिरेकी व्याप्ति बनती है उस हेतु का तो सपक्ष सत्त्व हैं और विपक्ष असत्त्व भी है। तो क्या ये दोनों विरुद्ध हैं? ये परस्पर अविरुद्ध हैं। जैसे अनुमान किया गया कि इस पर्वत में अग्नि होनी चाहिए धुवां होने पर से। तो यहां हेतु दिया गया है धुवा, यह हेतु अन्वय व्यतिरेकी है। इसका अन्वय व्याप्ति में भी दृष्टान्त है और व्यतिरेकी व्याप्ति में भी दृष्टान्त है। अन्वय व्याप्ति भी बन गया जहां-जहां धुवां होता है, वहां-वहां अग्नि होती है जैसे रसोईघर। तो देखो—यहां अन्वय दृष्टान्त याने सपक्ष में हेतु का पाया जाना बनाना। और जब इसकी व्यतिरेकी व्याप्ति बनायी जाती है जहां अग्नि नहीं होती, वहां धुवा भी नहीं होता है। जैसे कि तालाब। वहां अग्नि नहीं धुवा भी नहीं। तो इस विषय हेतु का विपक्ष है तालाब। जहां साध्य का अभाव पाया जाय उसे विपक्ष कहते हैं। तो विपक्ष में धुवा का असत्त्व हैं। तो हेतु का सपक्ष में होना सत्त्व और विपक्ष में होना असत्त्व होना। ये दोनों बातें परस्पर में विरुद्ध हैं। अर्थात् उस हेतु में पाये जा रहे हैं। सपक्ष सत्त्व और विपक्षासत्त्व इन दोनों को पृथक् करने वाला कोई भेद दृष्टि में बताकर मौजूद है। उस अपेक्षा से इन दोनों में परस्पर कोई विरोध नहीं है। इसी प्रकार समझना चाहिए कि अस्तित्व और नास्तित्व में परस्पर कोई विरोध नहीं है। घट अपने स्वरूप से है पर अपने रूप से नहीं है। तो यहां अस्तित्व को सिद्ध किया गया है स्वरूप से और नास्तित्व को सिद्ध किया गया है पररूप से। तो अस्तित्व और नास्तित्व को पृथक् कर देने वाला अर्थात् अस्तित्व से पृथक् हैं नास्तित्व और नास्तित्व से पृथक् हैं अस्तित्व ऐसे। किसने बताया? स्वरूप और पररूप न। अस्तित्व का सम्बन्ध स्वरूप से है पररूप से नहीं। नास्तित्व का सम्बन्ध पररूप से है स्वरूप से नहीं। इस प्रकार दोनों को पृथक् कर देने वाला स्वरूप और पररूप की जब विवक्षा होती है तो उस विवक्षा में अस्तित्व और नास्तित्व एक वस्तु में बराबर सिद्ध हो जाता है। उनमें परस्पर में किसी भी प्रकार का विरोध नहीं है। विरोध की बात तो दूर जाने दो। बल्कि यह बात वहां पायी जाती है कि इन दोनों में से यदि एक न हो दूसरा भी न रहेगा। जैसे घट स्वरूप से है, पररूप से नहीं है। घट घड़े के रूप से है, कपड़ा के रूप से नहीं है। अब इनमें से किसको मना करोगे? यदि कहोगे कि घड़ारूप से है, यह बात गलत है। तो लो घड़ा कहीं कुछ न रहा। यदि कहोगे कि कपड़ा रूप से नहीं है यह गलत है तो अर्थ हुआ कि वह कपड़ा रूप हो गया। फिर वह घड़ा कह रहा तो अस्तित्व और नास्तित्व का विवक्षावश कोई विरोध नहीं। अतः अनेकान्तवाद में संशय के लिए कोई स्थान नहीं है।

शंकाकार द्वारा प्रस्तोतव्य विरोधादि और दोनों में प्रस्तुत विरोध दोष—शंकाकार कहता है कि अनेकान्तवाद में तो विरोध आदिक ८ दोष सम्भव हैं। ये ८ दोष हैं—विरोध, वैयाधिकरण,

अनवस्था, संकट, व्यतिकर, संशय, अप्रतिपत्ति और अभाव। उनमें से विरोध की बात सुनो ! देखिये ! एक वस्तु में विधि और प्रतिषेधरूप अस्तित्व और नास्तित्व धर्म सम्बन्ध नहीं होते हैं, क्योंकि भाव और अभाव का परस्पर विरोध होता है। जैसे कि ठंड और गर्मी का परस्पर विरोध है जहां ठंडा है वहां गर्म नहीं। जहां गर्म है वहां ठंडा नहीं। जैसे ही जिस पदार्थ में अस्तित्व है उस पदार्थ में नास्तित्व नहीं रह सकता, और जहां नास्तित्व हैं वहां अस्तित्व नहीं रहता, क्योंकि अस्तित्व तो है भावरूप, जो कि विधि पद्धति से ज्ञान का विषय होता है, और नास्तित्व है प्रतिषेधरूप जो कि वहां इस शब्द से समझी गई प्रतीति का विषय हैं। तो जहां अस्तित्व का विरोध हैं, वहां नास्तित्व का अविरोध होता है। यों एक पदार्थ में अस्तित्व और नास्तित्व का विरोध है। अतः सप्तभंगी में स्यात् अस्ति, स्याद्नास्ति ये भंग ही नहीं बनते । एक बात कुछ कहना चाहिए। दो धर्म एक वस्तु में सम्बन्ध नहीं हो सकते।

एक वस्तु में सत्त्व असत्त्व आदि नाना धर्मों के विरोध का परिहार—अब उक्त शंका के उत्तर में कहते हैं कि देखिये ! जब किसी अपेक्षा से वस्तु में अस्तित्व और नास्तित्व प्रतिभासमान हो रहे हैं तब उनका विरोध कैसे कहा जा सकता है। सभी जन जानते हैं कि घट अपने स्वरूप से है, पर के स्वरूप से नहीं हैं। तब दोनों बातें बराबर उपयुक्त हो रही है, तो उनका विरोध कैसे कहा जा सकता है? विरोध होता है अनुपलम्भ द्वारा साध्य, अर्थात् वह यदि एक जगह नहीं मिलता है तो समझिये कि विरोध हो रहा है। जैसे जिन जानवरों में विरोध हैं वे एक ही जगह कहां मिलकर रहते हैं ? किन्तु भाव और अभाव ये तो एक वस्तु में प्रतीत हो रहे हैं। घट अपने स्वरूप से पररूप से नहीं है यह बात तब प्रतीत हो रही है, जिस ही समय स्वरूपादिक से वस्तु की सत्ता पायी जा रही हैं। उसी समय पररूपादिक से असत्त्व भी पाया जा रहा है, क्योंकि जैसे स्वरूप से सत्त्व है इसी प्रकार पररूप से असत्त्व है, यह बात प्रतीति सिद्ध है। एक ही समय भाव और अभाव एक वस्तु में पाये जा रहे हैं फिर उनमें विरोध कैसा ? देखिये ! वस्तु सत्तात्मक ही है, भाव भावरूप ही है। यदि वस्तु को सर्व प्रकार से भावरूप मान लिया जाय तो स्वरूप की तरह पररूप से भी उसका भाव बन बैठेगा। जैसे स्वरूप से घट है इसी प्रकार पररूप से भी घट बन बैठेगा। फिर कुछ रहा ही नहीं। इससे दोनों बातें माननी होगी कि स्वरूप से तो अस्तित्व है। पररूप से नास्तित्व है। सर्वथा अस्तित्व ही है, यह बात भी नहीं मान सकते। इसी प्रकार यह भी नहीं माना जा सकता कि वस्तु का सर्वथा अभाव ही है। यदि वस्तु का अभाव कहा जाय तो इसका अर्थ यह होगा कि जैसे घट पररूप से नहीं है। इसी तरह स्वरूप से भी नहीं है। यह बात बन बैठेगी। इस कारण बोला गया कि वस्तु का सर्वथा अभाव ही

स्वरूप नहीं है। वस्तु भाव भावात्मक है और वे दोनों बातें एक पदार्थ में एक साथ पायी जाती हैं। इस कारण उनमें विरोध की बात नहीं कहीं जा सकती।

घट है पटादि नहीं हैं यों प्रयोग का औचित्य बताकर शंकाकार द्वारा द्वितीय भंग को भंग करने का प्रस्ताव—अब शंकाकार यहां कहता है कि देखिये ! पररूप से असत्त्व होने का नाम तो पररूप से असत्त्व है इसका अर्थ क्या है ? पररूप का असत्त्व । सो घट में पटस्वरूप का अभाव होने पर घट नहीं है यह नहीं कहा जा सकता, किन्तु यह समझना चाहिए कि पट नहीं है। जैसे कथंचित् घट है। तो कथंचित् घट नहीं है। इस तरह दूसरी बात न कहनी चाहिए, किन्तु पट नहीं हैं। यों कहना चाहिए। जैसे कि कमरे में घट का अभाव है तो उस समय यह कहा जाता न कि कमरे में घट नहीं हैं। कि यों ही कोई कह बैठता है कि कमरा नहीं हैं। तो जैसे कमरे में घट नहीं है इस तरह के वाक्य की प्रवृत्ति होती है उसी प्रकार घट में पट का स्वरूप नहीं है। तो यों कहना चाहिए कि पट नहीं है। उसको यों क्यों कह रहे हो कि कथंचित् घट है और कथंचित् घट नहीं है। घट है पट नहीं है, इस तरह से प्रयोग होना चाहिए। तो आपके दोनों प्रयोग बन जाते हैं। यों प्रयोग न करके घट है, घट नहीं है, यों दूसरा प्रयोग उचित नहीं बैठता है।

घट में पररूप के नास्तित्व की घटनिष्ठर्धमता होने से द्वितीय भंग के प्रयोग की निर्बाधता—अब उक्त शंका के समाधान में कहते हैं कि यह शंका युक्त नहीं है। क्योंकि विचार करने पर यह शंका निर्मूल हो जाती है। देखिए आपने पूछा है कि घट में जो परमरूप से असत्त्व है कपड़े में जो कपड़े का असत्त्व है। उसका वह असत्त्व है। उसका वहां असत्त्व कपड़े रूप से नह होने की बातरूप असत्त्व है। पट का धर्म है या घट का यह बताओ ? घट में पट का असत्त्व है यों तो समझने की और बोलने की पद्धति है, पर यहां इस सिद्धान्त का निश्चय करे कि घट में पटरूप से जो असत्त्व पाया जा रहा है वह असत्त्व घट का धर्म है या पट का धर्म है, यह तो नहीं कहा जा सकता। क्योंकि पट रूप का असत्त्व पट की अपेक्षा नहीं है। पटरूपता तो पट में पायी ही जाती है अन्यथा पट शून्य हो जायगा। पटरूपता का असत्त्व यदि पट का धर्म माना जाय कि पटरूपता का असत्त्व है पट में, तो पट कोई चीज ही नहीं रही, क्योंकि अपना धर्म अपने में नहीं है। यह तो कहा ही नहीं जा सकता। अब पटरूप से असत्त्व को आप पट का धर्म मानते हो ता याने पटरूपता का असत्त्व पट में रहा, फिर पट ही क्या चीज रही ? पट का असत्त्व यदि घट का धर्म मान लिया जाता है तो पट का असत्त्व पट में है, यह मानना ही पड़ेगा। क्योंकि यदि नहीं मानते तो फिर वह पट का धर्म घट के आधार से रहे,

यह बात नहीं बन सकती। पटरूप से असत्त्व का होना पट का धर्म मान रहे हो तो वह पट में ही होनी चाहिए। स्व का धर्म स्वधर्म के आश्रय ही होता है, पट का धर्म घट के जो वितान आतान प्रकार है, उसका भी आधार घट बन बैठेगा। इस कारण यह नहीं कह सकते कि पटरूप से असत्त्व होना पट का धर्म है। अब यह स्वीकार यदि करते हो कि पटरूप रूप का असत्त्व होना पट का धर्म है तब सारे विवाद शांत हो गये। तब यह हुआ कि घट भावस्वरूप है और घट अभाव स्वरूप है। जैसे कि घट का होना घट का स्वरूप होना घट का धर्म है, ऐसे ही घट के स्वरूप से घट का न होना यह असत्त्व भी घट का धर्म है। यों घट भावस्वरूप और अभावस्वरूप बन गया और इस कारण जब घट भावस्वरूप भी है, अभावस्वरूप भी है, तो घट नहीं है, यह प्रयोग भी युक्तिसिद्धि हो जाता है। अन्यथा अभावरूप धर्म के सम्बन्ध से जैसे घट असत् न होगा, इसी प्रकार भावरूप धर्म के सम्बन्ध से घट सतरूप भी न होगा। घट का स्वरूप से अस्तित्व होना घट का धर्म है, और उसका आधार घट है और इससे ही यह प्रयोग बनता है कि घट है। इसी प्रकार घट का पररूप से ना होना यह भी घट का धर्म है। ऐसा यह पररूप से नास्तित्व घट के आश्रय है। और तभी यह प्रयोग युक्तिसिद्धि हुआ कि घट नहीं है। यों घट भावाभावस्वरूप है इसके विरोधी की कल्पना अयुक्त है।

घटनिष्ठाभावप्रतियोगिता के कारण भी पररूपाभाव की घटधर्मता से अविरोध—अब शंकाकार कहता है कि घट में पररूप के असत्त्व का अर्थ यह है कि घट में रहने वाले अभाव की प्रतियोगिता और जो घट में रहने वाले अभाव की प्रतियोगिता है वह पट का धर्म है। घट में रहने वाले अभाव का प्रतियोगी घट है। प्रतियोगी कहते हैं मुकाबले में एक विरोधी को याने घट का अभाव मायने घट तो घट के अभाव का प्रतियोगी है पट तो पटरूप से असत्त्व होने का जो अर्थ है अर्थात् घट में रहने वाले अभाव का प्रतियोगी होना यह पट का धर्म है। जैसे कि कमरे में घट नहीं है, इस प्रयोग में कमरे में घट नहीं है इसका भाव क्या हुआ कि कमरे में रहने वाले अभाव की प्रतियोगिता है और उस ही का नाम है कमरे में नहीं है। तो कमरे में रहने वाले अभाव की प्रतियोगिता घट का धर्म है। कमरे में जो अभाव है उस अभाव का प्रतियोगी घट हुआ। तो ऐसे ही घट में पटरूप का असत्त्व है। इसका अर्थ हुआ कि घट में रहने वाले अभाव की प्रतियोगिता है और वह प्रतियोगिता पट का धर्म है। उक्त शंका के उत्तर में कहते हैं कि यह भी शंका युक्त नहीं है। भले ही अर्थ यह हुआ कि पटरूप से असत्त्व का नाम है घट में रहने वाले अभाव की प्रतियोगिता। तो इस तरह कहकर भी पररूप का जो अभाव है वह घट का धर्म है, इसमें तो विरोध नहीं आया। जैसे कि कमरे में घट का अभाव है तो ऐसे घट का अभाव कमरे का धर्म है, इसमें भी कोई विरोध नहीं आता। तो अर्थ किसी दंग से ही बनाया जाय पर

यह बात अविरुद्ध है कि वस्तु में पररूप का अभाव है। और, वह पररूप का अभाव उस प्रकृत वस्तु का धर्म है। तो ऐसा सिद्धान्त होने पर यह सिद्ध हुआ कि घट भावाभावस्वरूप है। घट सद्ग्राव स्वरूप है और अभावरूप भी है। स्वरूप से तो सद्ग्रावरूप है और पररूप से अभावरूप है। इस तरह घट भावरूप अभावरूप और उभयरूप सिद्ध हो जाता है। कथंचित् तादात्म्यरूप जो सम्बन्ध है वह सम्बन्धी का ही स्वधर्म है। घट का सद्ग्रावस्वरूप से सत्त्व का होना कथंचित् तादात्म्यरूप से है। घट में पररूप का न होना इस प्रकार का अभाव स्वरूप धर्म घट में कथंचित् तादात्म्यरूप से है। यों भावस्वरूप होना अभाव स्वरूप होना ये घट के धर्म हैं तब उक्त शंका युक्त नहीं ठहरती कि घट में पररूप का असत्त्व पररूप का धर्म है।

द्वितीय भंग में “पट नहीं हैं” इस प्रकार की योजना के औचित्य की पुनः आशंका—शंकाकार कहता है कि ‘चलो इस तरह से घट का भावस्वरूप और अभावस्वरूप यों उभय धर्मत्व सिद्ध कर लो इतने पर भी घट है पट नहीं है, प्रयोग तो ऐसा ही करना चाहिए, क्योंकि पट के अभाव का प्रतिपादन करने में तत्पर जो वाक्य होगा उसकी प्रवृत्ति इस ही तरह होती है। जैसे कमरे में घट नहीं है, इस वाक्य का प्रयोग इस कथन में करने की प्रवृत्ति हो रही है कि घट का अभाव हैं, न कि भूतल नहीं है। इस रीति से प्रयोग होता है। कमरे में घट नहीं है, इसका अर्थ यह है कि कमरे में घट का अभाव है तो इस बात को बताने के लिए प्रयोग यों ही किया जायेगा। कि कमरे में घट नहीं है। यों तो कोई प्रयोग नहीं करता कि कमरा नहीं है। घट में पररूपता का अभाव है। यह बताने के लिए यह ही तो कहना चाहिए कि पट नहीं है। यों तो न कहना चाहिए कि घट नहीं है। लेकिन आप तो सप्तभंगी में घट है और घट नहीं है, इस तरह का प्रयोग करते हैं। अभाव बोधक वाक्य में अभाव का प्रतियोगी ही प्रधान रहता है। याने अभाव का प्रतियोगी वह पदार्थ जिसका कि अभाव कहा जा रहा है और जो अपने में स्वयं सद्ग्रावरूप है तो जब-जब भी अभाव बोधक वाक्य बोला जायगा तो इसमें अभाव का प्रतियोगी ही प्रधान रहता है। जैसे यह प्रयोग किया कि घट का प्रधंसाभाव कपाल है। कपाल कहते हैं खपरियों को। जब घट नष्ट हो जाता है तो खपरियाँ बनती हैं। तो घट प्रधंसाभाव खपरिया है। इसमें प्रयोग होता है घट नष्ट हुआ कोई यों प्रयोग नहीं करता कि कपाल नष्ट हुए। घट का प्रधंसाभाव कपाल है। तो जिसका अभाव है उसकी ही प्रधानता से कथन होता है। याने घट नष्ट हुआ यह प्रयोग होता है। तो इसी प्रकार घट में पट का अभाव है तो जिसका अभाव है उसका ही नाम लेकर प्रयोग करना चाहिए कि पट नहीं है। तो घट का चाहे भाव अभाव उभय स्वरूप सिद्ध कर लिया जाय लेकिन प्रयोग इसी तरह कहना चाहिए कि घट है और पट नहीं है। तब सप्तभंगी में जो द्वितीय भंग का प्रयोग है वह अयुक्त है।

पूर्व पूर्वप्रयोगानुसार घट में पररूप के नास्तित्व के “पररूप से घट नहीं है” इस प्रयोग के औचित्य का समाधान—अब उक्त शंका के उत्तर में कहते हैं कि शंकाकार द्वारा इतना तो मान लिया गया कि घट भाव, अभाव व उभय स्वरूप है। विवाद केवल इस बात में रह गया कि घट है और घट नहीं है। इस प्रकार के भंग बनाकर घट है पट नहीं है, इस रूप से भंग बनाना चाहिए था। तो इस सम्बन्ध में मूल बात पर आइये। जब यह मान लिया कि घट भाव, अभाव, और उभय स्वरूप है, तो बस इतनी सी बात सिद्ध हो जाने पर सब लोगों का सब विवाद समाप्त हो ही गया, क्योंकि सिद्ध करने की बातें यहां वस्तुस्वरूप में थीं कि प्रत्येक द्रव्य भाव, अभाव, और उभयात्मक है अर्थात् अपने स्वरूप से है पररूप से नहीं है। और दोनों प्रकार भाव और अभाव स्वरूप है अब रह गई शब्द प्रयोग की बात घट है स्याद् घट नहीं है, इस तरह से प्रयोग क्यों नहीं किया गया ? सो देखियें ! शब्द का प्रयोग पूर्व-पूर्व प्रयोग के अनुसार होगा। जिस सम्बन्ध में पहिले के विवेकी पुरुष जिस प्रयोग को करते आये हैं उस प्रयोग से ही वाक्य चला करते हैं, क्योंकि शब्द का प्रयोग पदार्थ की सत्ता के आधीन नहीं है, किन्तु प्रयोग करने वाले पुराण पुरुषों के अनुसार होते हैं।

उदाहरणपूर्वक पट में पररूप नास्तित्व के द्वितीय भंग के रूप में प्रयोग करने के औचित्य का समर्थन—जैसे दृष्टान्त में लीजिए ! एक वाक्य बोला गया कि देवदत्तः पचति अर्थात् देवदत्त खाना पकाता है तो यहां पर प्रश्न किया जाय कि देवदत्त शब्द के मायने क्या है? देवदत्त खाना पकाता है, प्रयोग तो यह किया मगर देवदत्त शब्द का अर्थ क्या है ? क्या देवदत्त के मायने है देवदत्त का शरीर। यदि देवदत्त के मायने है देवदत्त का शरीर तो यों प्रयोग करना चाहिए कि देवदत्त का शरीर खाना पकाता है। लेकिन ऐसा प्रयोग कोई नहीं करता है। अच्छा बतलावों—देवदत्त शब्द का अर्थ क्या यह है कि देवदत्त का आत्मा ? याने वहां रहने वाला आत्मा । यदि यह अर्थ है तब तो देवदत्त का आत्मा रसोई बनाता है ऐसा प्रयोग करना चाहिए । पर ऐसा कौन प्रयोग करता है ? तब तो तीसरी बात यह निश्चय किया कि देवदत्त का अर्थ शरीर सहित देवदत्त का आत्मा । तब यों प्रयोग करना चाहिए कि शरीर सहित देवदत्त का आत्मा खाना पकाता है। पर यों भी कोई नहीं बोलता। बोला ही यों जाता हैं कि देवदत्त खाना पकाता है। तो इस उदाहरण से आपने समझ लिया ना कि प्रयोग जो होते हैं वे पूर्व-पूर्व प्रयोग के अनुसार होते हैं। और जैसा प्रयोग करते चले आ रहे हैं उस प्रयोग के अनुसार प्रयोग होता है। और उस प्रयोग में उसका सब भाव समझा जाता है। देवदत्तः पचति इतना कहने से वहां सब भाव आ जाता है। अब उसमें शब्द की जरा- जरा सी बारीकी देखें वाच्य की और उसमें प्रयोग बदले, फिर तो किसी भी प्रकार ठीक न बैठ सकेगा तो समझना यह चाहिए कि वास्तविकता

क्या है ? वस्तु का स्वरूप क्या है? बस उस समझने के लिए ही शब्द प्रयोग है न कि शब्द बोलते जाने के लिए शब्द है। तब इस प्रकरण में भी प्रयोग यह किया गया है कि जो पूर्व-पूर्व संत पुरुषों की धारा से चला आया है। अर्थ उसका क्या है सो शंकाकार ने मान ही लिया है। मानना ही पड़ेगा। जो वस्तु में स्वरूप है उसकी बात तो सबको माननी ही पड़ेगी । प्रयोग की बात रह गयी थी। उसका जैसे देवदत्तः पचति इसमें ३ विकल्प करके ३ प्रकार के शब्द प्रयोग का प्रसंग होना चाहिए, मगर क्यों नहीं किया गया इस का प्रयोग ? तो उसका उत्तर है कि पूर्व-पूर्व पुरुषों के प्रयोग नहीं है, इस कारण देवदत्तः पचति प्रयोग से ही उसका अर्थ बताया गया है। बस यही बात यहां है। पूर्व-पूर्व प्रकार के अनुसार ही प्रयोग की प्रवृत्ति होती है। सो यहां भी घट कथंचित् है। घट कथंचित् ही है, यही प्रयोग युक्त है। जिसका भाव यह है कि घट स्वरूप से है, घट पररूप से नहीं है। समझना है वस्तु का स्वरूप । क्योंकि हमको अपने ज्ञान की सम्हाल करना है, क्योंकि ज्ञान की सम्हाल में ही आनन्द का लाभ है । शान्ति का लाभ है। संकटों से मुक्ति पाने की बात है। वह तो सम्यग्ज्ञान से ही होगा। पदार्थ का जैसा स्वरूप है वैसा जानने का नाम सम्यग्ज्ञान है। अब शब्द प्रयोग की बात रह गयी। शब्द प्रयोग मुख्य चीज नहीं है, क्योंकि उसका उद्देश्य वस्तु स्वरूप का ज्ञान है। अब उस वस्तु स्वरूप के परिचय के लिए जैसा प्रयोग चला आया है बस वही प्रयोग माना जाता है। यों सिद्ध किया गया कि पदार्थ के अस्तित्व का आश्रय लेकर उसका शब्द प्रयोग में आक्षेप करना योग्य नहीं है। सप्तभंगी में जिस प्रयोग का प्रयोग पूर्व-पूर्व संत करते चले आये हैं, वह ही निर्विवाद है और उसमें ही वास्तविकता की झलक हो जाती है क्योंकि ऐसा बोलने में कि घट कथंचित् है, घट कथंचित् नहीं है यह बात सिद्ध होता है। अस्तित्व और नास्तित्व ये दोनों ही घट के धर्म हैं।

घट में पररूपभाव की घट में भिन्नता व अभिन्नता के विचार में द्वितीय भंग के औचित्य का समाधान—अब द्वितीय भंग के प्रयोग के सम्बन्ध में और विचार कीजिए जिससे यह बात और स्पष्ट हो जाय। देखियें घट में रहने वाले पररूप का अभाव क्या घट से भिन्न है अथवा अभिन्न है? इस प्रसंग में ये दो पद्धतिया जानना है? शंकाकार की ओर से तो पुरुष का अभाव समझ लीजिए। सिद्धान्त की ओर से पररूप की अपेक्षा से अभाव। खेर प्रकृत बात में यह पूछा गया है कि घट में रहने वाला जो पररूप का अभाव है। वह घट से प्रकृत है या घट से अभिन्न है? यदि कहो कि घट में पररूप का अभाव जो बताया गया है वह पररूपभाव घट से भिन्न है। तो घट से भिन्न होने के कारण पररूपभाव भी पर हो गया। जो घट से अभिन्न है वह तो होता है घट का स्व और जो घट से भिन्न है वह हो गया पर। अब यहां पररूप का अभाव घट से भिन्न मान लिया तो पररूपभाव भी पर हो गया। जब पर हो गया तो वहां भी अभाव की कल्पना करना

चाहिए। यदि पररूपाभाव घट से भिन्न भी है और वहां पर अभाव की कल्पना करते नहीं हो तो पररूपाभाव घट से पर है यह बात अयुक्त हो जायगी। जो प्रथम पक्ष स्वीकार कर रहे हो, वह प्रथम पक्ष ही न रह पायगा। तो पररूपाभाव के पर न हो पाने से घट आदिक में जो कथंचित् अस्तरूपता अनेकान्त पक्ष में मानी गई है उस अस्तरूपपने की असिद्धि हो जायगी और पररूपाभाव में भी अभाव कल्पना की जाती है। जैसे कि प्रथम पक्ष मानने पर दूषण दिया गया कि पररूपाभाव यदि घट से भिन्न है तो वह पर हो गया, फिर उसके भी अभाव की कल्पना की जाती है। तो अनवस्था दोष आयगा क्योंकि वह अभाव भी पररूप है। फिर उसका भी अभाव मानियेगा। और, फिर पररूपाभाव का अभाव इसका अर्थ क्या है कि पररूप का अभाव नहीं। दो अभाव कहने पर विधि बन जाया करती है। तो अब यहां यह कह रहे हो घट में पररूपाभाव रूप पर का अभाव है। पट में जो आतान, वितान, तंतु आदिक स्वरूप है उनके अभाव का अभाव है। तो इसका अर्थ यह हुआ कि वे सब घटरूप हो गए। अथवा घट-पट आदिक रूप हो गये, क्योंकि दो का निषेध करने से प्रकृत रूप की सिद्धि होती है। घट के अभाव का अभाव, इसका अर्थ क्या होगा? याने घट। दो अभाव होने पर उसकी विधि बन जाया करती है। ऐसे ही घट में पररूपाभाव का अभाव है ऐसा कहने से क्या अर्थ हुआ कि वह सब पर घट स्वरूप हो गया। तो घट का पररूपाभाव घट से भिन्न है। यह बात तो नहीं कह सकते। अब द्वितीय पक्ष मानेंगे याने यह कहेंगे कि घट में पररूप का अभाव घट से अभिन्न है तो बस ठीक है यही तो सिद्ध करना था कि घट में पररूप का अभाव घट से भिन्न है और वह घट का धर्म है याने स्वरूप से अस्तित्व का होना जैसे घट का या वस्तु का धर्म है इसी प्रकार पररूप का नास्तित्व होना, पररूप का अभाव होना यह भी प्रकृत वस्तु का उदाहरण में घट का धर्म है। यही बात सिद्ध करना योग्य था, सो यह द्वितीय पक्ष मानने पर यह सिद्ध हो ही जाता है। तब यहां यह स्वीकार कर ही लेना चाहिए कि अपने से भिन्न अस्तित्वरूप धर्म का जैसे घट में सत्त्व माना है उसी प्रकार अपने से अभिन्न पररूप के असत्त्व को भी घट का धर्म मान लेना चाहिए। यों सप्तभंगी में मूल जो दो भंग कहे गए हैं, घट में स्वरूप से अस्तित्व है, घट में स्वरूप से नास्तित्व है, यों घट भावाभावस्वरूप है, यह बात मान ही लेनी चाहिए।

भाव अभाव स्वरूप और अभाव भावस्वरूप होने से वस्तु के उभयात्मक होने की शंका और उसका समाधान—अब शंकाकार कहता है कि देखिये ! स्वरूप से अस्तित्व का होना ही पररूप का अभाव कहलाता है और पररूप से अभाव होने का नाम ही स्वरूप का भाव होना कहलाता है। तो भाव और अभाव इन दोनों का एक वस्तु में भेद न रहा अर्थात् भाव अभाव स्वरूप है, अभाव भावस्वरूप है। तब इन दोनों में भेद न होने से वस्तु उभयात्मक कहीं गयी। एकात्मक है,

भाव स्वरूप है, उसका भी अर्थ हैं अभाव स्वरूप। अभाव स्वरूप है उनका भी अर्थ भावस्वरूप। याने घट स्वरूप से ही है, इसका अर्थ यह हो गया कि वह पररूप से नहीं है। घट पररूप से नहीं है इसका अर्थ यह हुआ कि घट स्वरूप से है। वह तो अर्थ की बात है। वहां दो बातें कहां पड़ी हैं ? तब घट को उभयात्मक नहीं कह सकते। किसी भी वस्तु को आप उभयात्मक न बता सकेंगे। इस शंका के उत्तर में कहते हैं कि भाई घट में भाव और अभाव दोनों की जो बातें कहाँ गई हैं सो जिस-जिस अपेक्षा से है उस-उस निमित्त का भेद होने से भाव और अभाव दोनों भंग कहे जायेंगे। यद्यपि शंकाकार का यह कथन एक दृष्टि में सही है कि स्वरूप से भाव होने का नाम ही पररूप से अभाव है, लेकिन स्वरूप से भाव होना इस भाव में अपेक्षा की गई है स्वरूप की, पररूप की। तो अपेक्षणीय जो निमित्त है उसका भेद होने से भाव और अभाव का भेद कहा जाता है, क्योंकि स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव रूपनिमित्त की अपेक्षा करके तो भाव का ज्ञान होता है और पर द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा करके अभाव का ज्ञान होता है।

एकत्व द्वित्व संख्या के उदाहरण पूर्वक स्वरूपभाव और पररूपभाव में भेद एवं अभेद की सिद्धि—जैसे एकत्व द्वित्वादिक संख्या में अपेक्षा के भेद से भेद है, इसी प्रकार एक वस्तु में निमित्त की अपेक्षा से भाव और अभाव का भेद है। देखिये। दुत्व संख्या और एकत्व संख्या इन दोनों की अपेक्षा से भेद यह है कि अन्य द्रव्य की अपेक्षा करके तो दुत्व, तृत्व आदिक अनेक संख्याएँ उत्पन्न होती हैं और केवल एक अपने आपकी ही अपेक्षा रखा करके एकत्व संख्या बनती है। याने यह वस्तु एक है ऐसा उसे एक बताने में किसी परद्रव्य की अपेक्षा नहीं करनी पड़ी, किन्तु एक ही उस स्व द्रव्य को ध्यान में रखकर बता दिया गया कि वह एक है, लेकिन जहां दो तीन आदिक कहने पड़ते हैं। जैसा ये केला दो हैं तो यहां अन्य द्रव्य की अपेक्षा रखकर दो संख्या बनी। तो देखियें। संख्याओं में तो परस्पर भेद हो गया अपेक्षा के भेद से। मगर संख्या जिसकी की जा रही है उस वस्तु से संख्या में भेद तो नहीं है कि केला तो अलग पड़े हो और २,३ आदिक संख्यायें अलग पड़ी हों। यों संख्या संख्येय पदार्थ से भिन्न नहीं है। तो जैसे एक द्रव्य में द्रव्यान्तर की अपेक्षा करके तो दुत्व आदिक संख्या प्रकट होती है और स्वकीय निज स्वरूप की अपेक्षा रखकर मात्र अन्य की अपेक्षा किए बिना एकत्व संख्या प्रकट होती है मगर वह दुत्व संख्या एकत्व संख्या से अनन्य नहीं है, भिन्न नहीं है। ऐसा तो प्रतीत नहीं होता, अर्थात् स्पष्ट समझ में आ रहा है कि एक के मायने अलग है और २,३ के मायने अलग है। इतने पर भी यह तो देखिये कि वे २,३ आदिक संख्यायें संख्यावान पदार्थ यदि सर्वथा भिन्न हो जाये तो द्रव्य संख्येय न कहलायेगा फिर उसकी गिनती ही क्या रही ? गिनती भी जुदी हो गई और जिन पदार्थों की गिनती की जा रही वे पदार्थ भी जुदा हो गए। अब गिनती भी न बन सकेगी। तो

जैसा गिनती का द्रव्य भिन्न है फिर भी गिनती का आश्रयभूत जो पदार्थ है वह भिन्न नहीं है। उस ही पदार्थ में गिनती है। ऐसे ही समझना चाहिए कि भाव और अभाव इन दोनों की अपेक्षा के भेद से भेद है। फिर भी भाव और अभाव एक वस्तु में अभिन्नरूप से रह रहे हैं। वस्तु जुदी हो भाव जुदे हो ऐसा नहीं है।

संख्या संख्यावान में सर्वथा अभेद व भेद की असिद्धि की तरह स्वरूप भाव व पररूपभाव में सर्वथा अभेद व भेद की असिद्धि—अब शंकाकार कहता है कि जो दृष्टान्त दिया गया है अभी कि जैसे संख्या परस्पर में भिन्न है। क्योंकि उनका अपेक्षणीय भेद है, द्रव्य संख्या द्रव्यान्तर की अपेक्षा से होती है। एकत्व संख्या निज स्वरूप से होती है और जिस पर भी संख्या, संख्यावाद पदार्थ से भिन्न नहीं है। संख्या संख्यावान में ही तादात्म्य रूप से है सो यह बात युक्त नहीं बैठती कि संख्या संख्यावान से अभिन्न है। संख्या गुण है वह पृथक्, पदार्थ है और द्रव्य-द्रव्य ही है, संख्या का द्रव्य में समवाय सम्बन्ध होने से द्रव्य संख्येय बनता है। यह दोष देना कि संख्या यदि संख्यावान से भिन्न हो जाये तो संख्या अलग हो गयी, संख्यावान पदार्थ अलग हो गया तब तो संशय भी न रहा। उस पदार्थ की संख्या न बन सकेगी। यह बात कहना यों अयुक्त है कि संख्या का जब द्रव्य में समवाय सम्बन्ध होता है। तब द्रव्य संख्येय हो जाया करता है। इस शंका के उत्तर में कहते हैं कि समवाय कथंचित् तादात्म्य से भिन्न कुछ चीज नहीं कहलाती। जिसको समवाय सम्बन्ध कहते हैं। शंकाकार कहता है कि वह सामर्थ्य भी क्या चीज है। दो द्रव्यों के संयोग संबंध की तरह नहीं है। समवाय है कथंचित् तादात्म्यरूप। जैसे पदार्थ में रूप का समवाय है तो पुदगल में रूप तादात्म्य रूप से रह रहा है, यही उसका भाव है। रूप, गुण, अलग है, पदार्थ अलग है, फिर रूप गुण का समवाय होता हो तब पदार्थ रूपी है ऐसी बात नहीं है। तो समवाय सम्बन्ध कथंचित् तादात्म्य रूप ही होता है। इसलिए कथंचित् तादात्म्य से अभिन्न कोई समवाय सिद्ध हो सो नहीं है। तो यों संख्या का संख्येय में कथंचित् तादात्म्य है। तो जैसे संख्या अपेक्षा के निमित्तभूत वस्तु के भेद से परस्पर भेद है फिर भी संख्येय पदार्थ से अभिन्न है। इसी प्रकार भाव और अभाव की अपेक्षा के निमित्त के भेद से भाव और अभाव में भेद है और फिर भी एक पदार्थ में वे भाव और अभाव दोनों रह रहे हैं। भाव और अभाव का यद्यपि स्वरूप भिन्न-भिन्न है। तिस पर भी दोनों का एक पदार्थ में विरोध नहीं है, क्योंकि अपेक्षणीय निमित्त के भेद से भाव और अभाव यहां सिद्ध हो रहा है।

एक वस्तु में सत्त्व और असत्त्व की प्रतीति का कथन—शंकाकार यहां कहता है कि वस्तु में सत्त्व और असत्त्व की प्रतीति मिथ्या है, क्योंकि सत्त्व और असत्त्व ये दोनों कहां विदित होते हैं

? या तो यह देखने में आता है कि इसमें सत्त्व है या जब कभी यह दिखने में आता है कि इसमें असत्त्व है, सत्त्व और असत्त्व दोनों एक वस्तु में नहीं रहते। भिन्न-भिन्न जगह तो सत्त्व कहीं किसी में असत्त्व नजर आता है। पर एक ही पदार्थ में सत्त्व और असत्त्व की प्रतीति होना मिथ्या है। समाधान में कहते हैं कि भाई एक वस्तु में सत्त्व असत्त्व की प्रतीति में कोई बाधक प्रमाण नहीं है। यदि कहो कि विरोध बाधक है चूंकि सत्त्व और असत्त्व का एक वस्तु में विरोध है इस कारण यह बाधक प्रमाण हुआ और उससे फिर प्रतीति मिथ्या सिद्ध हो जायेगी। तो उत्तर में कहते हैं कि ऐसा कहने में तो इतरेतराश्रय आता है, क्योंकि जब पहिले विरोध सिद्ध हो ले तो सत्त्व और असत्त्व का विरोध सिद्ध हो। इस कारण से सत्त्व और असत्त्व में एक साथ वस्तु में पाये जाने की बात मिथ्या नहीं है किन्तु एक पदार्थ में स्यात् सत्त्व स्यात् असत्त्व ऐसा ज्ञान परिज्ञान प्रमाणिक पड़ता है।

एक वस्तु में सत्त्व असत्त्व के रहने में बाध्यघातक भावरूप विरोध कहने के पक्ष में दोनों की अवस्थिति का समर्थन—अच्छा, अगर एक वस्तु में सत्त्व और असत्त्व के विरोध की ही बात कहते हो तो यह बतलाओ कि देखिये—विरोध होते हैं ३ प्रकार से । एक बाध्य घातक भाव से याने एक मारने वाला है, है और मर जाने वाला नष्ट हो जाने वाला है। सो एक तो विरोध हुआ करता है बाध्य घातक भावरूप और एक विरोध हुआ करता है सहानवस्थारूप । याने दोनों बातें एक साथ ठहर नहीं सकती जो एक साथ ठहर न सके। उसका विरोध माना जाता है। तीसरी प्रकार विरोध होता है प्रतिबाध्य प्रतिबाधक रूप याने एक ने रोक रखा और एक रुक गया इस तरह विरोध होता है तो इन तीन प्रकार के विरोधों में से आप किस तरह का विरोध बता रहे हैं ? तीनों ही प्रकार के विरोध एक वस्तु के सत्त्व असत्त्व में सिद्ध नहीं होता। जैसे पहिले विरोध की बात पर विचार करें तो बाध्य घातक भाव के मायने ऐसा ही तो है जैसे सर्प और नेवला का परस्पर बाध्य बाधक है। अथवा जल और अग्नि इनमें परस्पर बाध्य बाधक भाव है। जैसे नेवला सर्प को मार डालता है तो नेवला हुआ बाधक और सर्प हुआ बाध्य, उनका विरोध है। लोक में लोग स्पष्ट जानते हैं कि नेवले और सर्प का विरोध है जैसे बिलाव और चूहे का विरोध है। तो बाध्य बाधक भाव के मायने हैं यह। सो बाध्यबाधक विरोध की पद्धति को देखियें। बाध्यबाधक भाव होता है। जहां एक ही समय में दोनों उपस्थित हो। जैसे सांप और नेवला एक समय मिल जायें, तो उनमें बाध्य बाधक विरोध बन जाता है। एक दूसरे को मार डालता है। तो बाध्यबाधक विरोध बनता ही तब है जब कि दोनों एक ही समय उपस्थित हो। जल कि अग्नि गर्म कर देती है, अग्नि को जल बुझा देती है। यह बात तब होती जब कि एक ही समय दोनों का संयोग होता है। तो जब ये संयुक्त हुए तब ही तो यह विरोध बनेगा, अगर यह असंयुक्त है तो इसमें विरोध

क्या ? एक दूसरे का वध कैसे कर देगा ? तो बाध्यबाधक विरोध बनता ही तब है जब ये एक समय संयुक्त हो जाए। यदि संयोग के बिना ही बाधक अपने बाध्य का विनाश कर दे तब तो सभी जगह साप का, नेवले का, अग्नि का, सब का अभाव हो जायगा, क्योंकि अब तो मान रहे हो यह कि संयोग न होने पर भी इसमें बाध्य बाधक भाव है। लेकिन ऐसा तो नहीं । उनका संयोग होता है तो उत्तरकाल में जो बलवान है वह निर्बल का वध कर देता है। सो बाध्य घातक विरोध की पद्धति देख लीजिए । उसमें यह सिद्ध होता है कि एक साधन में एक ही समय में दोनों उपस्थित हुए हैं। लेकिन आप तो अस्तित्व और नास्तित्व को एक पदार्थ में एक समय में स्थित ही नहीं करते और इस विरोध में तो यह सिद्ध होता है कि यह विरोध उनमें हैं जो संयोगी हैं।

एक वस्तु में सत्त्व और असत्त्व के सहानवस्थारूप विरोध का अभाव—अब यदि कहोगे कि सहानवस्थारूप विरोध है याने सत्त्व और असत्त्व एक साथ उपस्थित नहीं रह सकते तो यह विरोध भी सत्त्व और असत्त्व में सिद्ध नहीं कर सकते, क्योंकि वे एक वस्तु में कालभेद से दोनों विद्यमान होने पर होते हैं। याने सहानवस्था विरोध होता है। किस परिस्थिति में कि वे दोनों एक वस्तु में रहते हैं मगर कुछ रहा, पीछे कुछ रहा वहां भी तो सहानवस्था विरोध है। जैसे आम के फल में हरापन और पीलापन का विरोध। जब कच्चा है तब हरा है, तब पक गया तो पीला हो गया। तो एक ही आम में रह तो गये दोनों ही, हरापन भी और पीलापन भी, पर कालभेद रहा। पहिले हरापन था, पीछे पीलापन हो गया। तो वहां हम कहते हैं कि पीलापन उत्पन्न होकर इस पीलेपन ने हरेपन को नष्ट कर दिया। तो इस तरह सहानवस्था विरोध वहां ही हुआ जहां एक पदार्थ में दोनों का रहना सम्भव है। रहें वे पहिले और पीछे लेकिन एक पदार्थ में रहने की बात तो सिद्ध होती है, इसमें इतना तो कबूल कर लिया गया कि अस्तित्व और नास्तित्व दोनों एक पदार्थ में रह सकते हैं। लेकिन कालभेद से रहे तो क्या आपत्ति है सो सुनो ! यदि अस्तित्व पहिले रहता है तो अस्तित्व के समय में नास्तित्व तो न रहा जैसे घट में अस्तित्व माना। अब पररूप का अस्तित्व है नहीं । सहानवस्था विरोध के पक्ष में, तो इसका अर्थ यह हो गया कि सारा विश्व घटात्मक हो गया। जीव के अस्तित्व के काल में जीव का नास्तित्व नहीं मानते। तो इसके मायने है कि सर्व जीव सत्त्वमात्र ही रह गये, ऐसे ही मानो नास्तित्व के समय में अस्तित्व न रहा। जिस समय पररूप से नास्तित्व की बात कहीं जा रही थी एक एकान्त मान लिया कि यहां तो सर्वथा नास्तिरूप है। अस्तित्व की गुंजाइश नहीं, तब फिर वह चीज रही ही नहीं। नास्तित्व ही रहा। एक नास्तित्वरूप रहा तब फिर घट का जो अर्थ कार्य हुआ था पानी रखना आदिक वह कहां से किया जायेगा? फिर तो सब व्यवहार ही खत्म हो जायेगा। अथवा जीव के

उदाहरण में नास्तित्व ही मानते, अस्तित्व न मानते, यदि यह बात जगा भी अंगीकार नहीं करते तो इसके मायने हुआ कि जब जीव ही नहीं है तो बन्ध मोक्ष आदिक सब व्यवहार खत्म हो जायेंगे। और सर्वथा असत् का अभाव याने नाश अयुक्त न रहा। तब अस्तित्व और नास्तित्व इनका एक साथ सहानवस्था विरोध करना युक्त नहीं है जीव का अस्तित्व ही तब है जब कि उस ही समय उसमें पररूप का नास्तित्व तब ही तो सम्भव है जब कि जीव का अपने स्वरूप से अस्तित्व हो। यों एक वस्तु में सत्त्व और असत्त्व दोनों का सहानवस्थारूप विरोध भी सम्भव नहीं हो सकता।

एक वस्तु में सत्त्व और असत्त्व के रहने में प्रतिबन्ध प्रतिबन्धक भावरूप विरोध का अभाव—अस्तित्व और नास्तित्व का प्रतिबन्ध प्रतिबन्धक भाव विरोध भी नहीं बनता क्योंकि प्रतिबन्ध प्रतिबन्धक भावरूप विरोध किस स्थिती से बनता है सो सुनो ! जैसे अग्नि का काम दाह करना है, किन्तु एक मणि इस प्रकार होती है कि जिसे अग्नि के समीप यदि रख दिया जाये तो अग्नि में दाह नहीं बन पाता, क्योंकि मणि और अग्नि में प्रतिबन्ध प्रतिबन्धक भाव बना हुआ है। बहुत से वनस्पति औषधि ऐसे होते हैं कि यदि पत्ते पर चिपका दिए जाये तो उस पत्ते को अग्नि जला नहीं सकती ऐसे नौसादर चूना जैसी औषधि को पानी में पीसकर पत्ते पर लगा दिया जाये तो उस पत्ते पर बनी तेनिया पर दाल भी पकाई जा सकती है। ऐसा प्रतिबन्ध प्रतिबाधक भाव होता है। तो रहे यों वे दोनों एक साथ ना, और प्रतिबन्ध प्रतिबन्धक की बात कहां रही ? सो मणि और दाह के समान अस्तित्व और नास्तित्व में प्रतिबन्ध नहीं है कि अस्तित्व के समय में नास्तित्व का प्रतिबन्ध हो या नास्तित्व के समय में अस्तित्व का प्रतिबन्ध हो। एक खत्म हो जाय, एक रुक जाये अपना काम करने से ऐसा नहीं है क्योंकि अस्तित्व के समय में अगर नास्तित्व अपना काम करने से रुक जाय अर्थात् पररूप से नास्तित्व की बात न रहे तो इसका अर्थ यह हुआ कि विवक्षित पदार्थमय ही सारा जहान बन गया। अथवा पररूप के नास्तित्व के काल में स्वरूपास्तित्व काम न कर सके तो स्वरूप ही न रहा, पदार्थ ही न रहा, लेकिन दोनों का बराबर रहना और दोनों का काम होना यह अनुभव सिद्ध बात है। तब यों एक वस्तु में सत्त्व और असत्त्व दोनों का एक साथ न रहने की बात सिद्ध नहीं होती।

एक वस्तु में सत्त्व और असत्त्व के विरोध में शंकाकार द्वारा दिये गये उदाहरणों के विरोध की सिद्धि का अभाव—विरोध बताने में जो शीत और उष्ण स्पर्श का दृष्टान्त दिया है वह भी ठीक नहीं है। देखो कोई धूपदानी होती है, उसमें अव्वच्छेदक के भेद से शीत और उष्ण दोनों स्पर्श की उपलब्धि होती है। किसी जगह वह धूपदानी ठण्डी है किसी जगह गर्म। अथवा किसी

घड़े में जैसे धूप जलाई जा रही है तो उसमें उस घड़े में शीत और उष्ण स्पर्श दोनों की उपलब्धि पायी जा रही है। अथवा जैसे एक वृक्ष में चलपना और अचलपना ये दोनों पाये जाते हैं। पत्ते और टहनिया तो चलती रहती है तथा तना अचल रहता है। अथवा जैसे एक घड़े में लालरूप, श्यामरूप दोनों की उपलब्धि है, विरोध नहीं है। या एक ही शरीर में टका हुआ लाल रूप और बिना टका हुआ स्वरूप दोनों ही उपलब्धि सम्भव है कोई विरोध नहीं है। इसी प्रकार एक पदार्थ में सत्त्व और असत्त्व दोनों की स्थिति रह जाने में किसी भी प्रकार का विरोध नहीं है।

एक वस्तु में सत्त्व और असत्त्व के रहने में वैयधिकरण्य दोष का अभाव—अब शंकाकार कहता है कि एक ही पदार्थ में सत्त्व और असत्त्व दोनों को माना जाता वैयधिकरण दोष से युक्त है अतएव यह सप्तभंगी युक्त नहीं हो सकती। वैयधिकरण कहते हैं उसे कि अनेक धर्मों का भिन्न-भिन्न अधिकरण में रहना और फिर उन्हें किसी एक ही अधिकरण में बताना। जैसे यहां अस्तित्व का आधार है अन्य और अस्तित्व का आधार अधिकरण है तो ऐसे भिन्न अधिकरण वाला अस्तित्व और नास्तित्व से एक वस्तु में सद्व्याव बताना यह वैयधिकरण दोष है इसके समाधान में कहते हैं कि एक ही पदार्थ में अस्तित्व नास्तित्व बताने में वैयधिकरण दोष नहीं आता। क्योंकि यह तो हर एक के प्रति सिद्ध है कि सत्त्व और असत्त्व का यहां एक अधिकरण है। घट है और घट पररूप से नहीं है तो यहां अस्तित्व का अधिकरण भी घट है और नास्तित्व का अधिकरण भी घट है। याने अस्तित्व किस में बताया गया? घट में, नास्तित्व, किसमें बताया गया? घट में। तो इन दोनों धर्मों का अधिकरण एक है यह बात प्रतीति से सिद्ध है। इसी कारण इसमें वैयधिकरण नाम का दोष नहीं होता।

एक वस्तु में सत्त्व और असत्त्व के मानने में अनवस्था दोष का अभाव—अब शंकाकार कहता है कि एक पदार्थ में स्वरूप से सत्त्व पररूप से नास्तित्व की बात कहने से अनवस्था का दोष आयगा जिस रूप से अस्तित्व है और जिस रूप से नास्तित्व है उन रूपों में भी प्रत्येक में अस्तित्व और नास्तित्वपना बताना चाहिए। क्योंकि स्याद्वाद शासन की यह टेक है कि हर जगह स्याद्वाद होना चाहिए। जैसे घट का बताना कि स्वरूप से अस्तित्व हैं, तो इस बात को स्याद्वाद से सिद्ध करना होगा। स्वरूप से अस्तित्व है और इसमें भी अस्तित्व और नास्तित्व बताना होगा और अस्तित्व नास्तित्व बतायेंगे किसी स्वरूप की अपेक्षा से, फिर उनमें भी प्रत्येक में जो स्वरूप से अस्तित्व कहा अथवा पररूप से नास्तित्व कहा उस प्रत्येक में भी अस्तित्व नास्तित्वपना बताना होगा। यों उनके लिए फिर तृतीय स्वरूप पररूप लगेगा। वहां भी अस्तित्व नास्तित्वपना कहना होगा। यों स्वरूप पररूप अस्तित्व नास्तित्व इनकी परम्परा बतानी होगी और इसका कभी

विश्राम नहीं हो सकता। तब यह अनवस्था दोष हुआ ना ? अनवस्था कहते हैं उसे कि जहां अप्रमाणिक पदार्थों की परम्परा कल्पित की जाने से विश्राम ही न आये। तो एक वस्तु में जिस रूप से अस्तित्व कहा, उसको सिद्ध करने के लिए फिर अस्तित्व नास्तित्व बताना होगा। फिर उसमें भी प्रत्येक में अस्तित्व नास्तित्वपना बताना होगा। यों अनवस्था दोष सिद्ध हो जायगा। अब इस शंका के समाधान में कहते हैं कि यहां जो अनवस्था दूषण बताया है एक पदार्थ में जिस रूप में सत्त्व है अथवा जिस रूप में असत्त्व है, उनको सिद्ध करने के लिए अन्य अस्तित्व नास्तित्व की कल्पना बताकर जो अनवस्था दोष बताया गया है वह अनेकान्तवाद में नहीं लग सकता। क्योंकि अनन्त धर्मात्मक वस्तु स्वयं प्रमाण से स्वीकार की हुई है। अनवस्था तो वहां आयेगी जहां अप्रमाणिक पदार्थों में परस्पर कल्पित किया जायगा। पर यहां अप्रमाणिकता तो रंच भी नहीं है। स्पष्ट तौर पर देख लो कि प्रत्येक वस्तु सत्त्व और असत्त्व स्वरूप है। तो जो प्रमाणसिद्ध बात है उसमें अन्य अप्रमाणिक तत्वों की कल्पना करना युक्त नहीं है।

एक वस्तु में सत्त्व और असत्त्व के रहने में संकरदोष का अभाव—अब शंकाकार कहता है कि एक वस्तु में सत्त्व और असत्त्व की कल्पना करने में संकर दोष आयगा। संकर कहते हैं उस दोष को जहां सब धर्मों की एक साथ प्राप्ति हो जाय। जहां सब अपेक्षाओं की एक साथ उपलब्धि हो। जिस रूप से यहां सत्त्व कहा जा रहा है। तो जब सत्त्व असत्त्व एक ही वस्तु में तादात्म्य है उनमें आधार भेद नहीं तब जिस रूप से सत्त्व कहा जा रहा उस रूप से असत्त्व भी बन बैठेगा। जिस रूप से यहां असत्त्व कहा गया है उस रूप से सत्त्व का भी प्रसंग हो जायगा। क्योंकि जब एक ही पदार्थ में दोनों रह रहे हैं और एक साथ मिलकर रह रहे हैं तो उनमें स्वरूप का नियम नहीं बनाया जा सकता कि अस्तित्व तो इसी रूप से है और नास्तित्व इसी रूप से है। तो यों सबकी एक साथ प्राप्ति होने से संकर दोष होगा। अब उक्त शंका के उत्तर में कहते हैं कि अनेकान्तवाद में संकर दोष की कल्पना नहीं हो सकती, क्योंकि इन दोनों धर्मों की स्वरूप अपेक्षा स्पष्ट भिन्न रूप से प्रतीत हो रही है। अर्थात् घट अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से है और पर के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नहीं हो सकता। अस्तित्व पर के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से हो ही नहीं सकता। तो जो प्रतीतिसिद्ध है, प्रमाणसिद्ध है उसमें रूप बदलना और उन सबकी जिस किसी भी धर्म में योजना बनी ऐसे संकर दोष वाली बातें सम्भव नहीं हो सकती।

एक वस्तु में सत्त्व और असत्त्व के रहने में व्यतिकर दोष का अभाव—अब शंकाकार कहता है कि एक वस्तु में सत्त्व और असत्त्व की कल्पना करने से तो व्यतिकर दोष हो जायगा। व्यतिकर दोष कहते हैं परस्पर विषयों में गमन करने को। जिस रूप से सत्त्व कह रहे हो उस

रूप से असत्त्व ही रह जाय, सत्त्व न रहे ऐसा भी तो हो सकेगा। जब एक वस्तु में सत्त्व और असत्त्व समान रूप से बिना परदे के साहित्यिक दंग से मान रहे हो तो वहां यह भी तो हो सकता है कि जिस रूप से सत्त्व हो ही न। अथवा जिस रूप से असत्त्व ही कह रहे हो उस रूप से सत्त्व ही रहे, असत्त्व न हो, यों परस्पर के विषयों पर एक दूसरे का अधिकार न बनेगा। एक दूसरे के विषय में पहुंचेगा। यहीं तो व्यतिकर दोष है। इस शंका के समाधान में कहते हैं कि व्यतिकर दोष की कल्पना करना अविवेक है। जो बात अनुभवसिद्ध है प्रतीतिसिद्ध है, सब लोगों का स्पष्ट समझने में आ रहा है, वहां विषय बदलना और व्यतिकर दोष बताना यह कैसे सम्भव है ? सब ही लोग प्रत्यक्षतः जान रहे हैं कि घट का घटत्व घट के रूप से ही है। कहीं घट के रूप से असत्त्व न बन जायगा। घट में नास्तित्व पररूप का ही है। कहीं पर रूप से अस्तित्व न बन जायगा। यह तो साफ बात है। कोई पदार्थ है तो उसमें ये दो बातें न्याय प्राप्त और स्वयंसिद्ध है कि अपने स्वरूप से है, परके स्वरूप से नहीं है। तो यों प्रतीतिसिद्ध वस्तु में व्यतिकर दोष की कल्पना नहीं की जा सकती।

एक वस्तु में सत्त्व और असत्त्व के रहने के विषय में संशय, अप्रतिपत्ति व अभाव दोष का अभाव—अब शंकाकार कहता है कि वस्तु को सत्त्वात्मक मान लिया सतरूप है, असतरूप है, ये दोनों बातें जब कह रहे हैं तो वस्तु में फिर यह निश्चय नहीं किया जा सकता कि वस्तु सतरूप ही है अथवा असत्त्वमय है। वस्तु में यह ही स्वरूप है, ऐसा ही है, ऐसा निश्चय नहीं बन सकता। और जहां, निश्चय नहीं रहता है और अनेक धर्मों का आश्रय किया जाता है, वहां संशयदोष हो जाता है। जैसे किसी पदार्थ में दो धर्म कल्पित किए जा रहे हो कि यह सीप है या चांदी ? तो वहां निश्चय तो हो सका कि यह सीप ही है अथवा चांदी ही है। तो वहां संशय दोष हो गया, और संशय दोष होने से वहां कोई निश्चयरूप का ज्ञान न बना। तो यों अप्रतिपत्ति दोष हो गया। और जब अप्रतिपत्ति दोष है उसके सम्बन्ध में कुछ निर्णय ही नहीं, जानकारी ही नहीं, तो इसका अर्थ यह हुआ कि सत्त्वात्मक वस्तु का अभाव है। तो यों सत्त्व और असत्त्व का एक वस्तु में कल्पना करना संशय अप्रतिपत्ति और अभाव दोष से युक्त है। अब उक्त शंका के उत्तर में कहते हैं कि वस्तु के सत्त्व और असत्त्व स्वरूप में संशय, अप्रतिपत्ति और अभाव की कल्पना करना भी युक्त नहीं है। इस सम्बन्ध में पहिले भी बहुत विस्तार से बताया गया था कि यहां सत्त्व और असत्त्व का संशय नहीं है, पूर्णरूप से निश्चय है कि वस्तु अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से ही है। वह वस्तु पर के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से है ही नहीं। वहां संशय को स्थान नहीं है। पूर्णरूप से निश्चय है और इसी कारण इन भंगों में एव शब्द दिया गया है। इस कारण न उसमें संशय का अवकाश है और न अप्रतिपत्ति का अवकाश है। स्पष्ट ज्ञान हो रहा है कि पदार्थ है तो

है ही अपने रूप से, और यह तब पना तब बन रहा है जब पररूप से नहीं है। तो यों सत्त्व और असत्त्व दोनों का निश्चय हो रहा है तब अप्रतिपत्ति नहीं है, और अप्रतिपत्ति न रहने से स्पष्ट सद्ग्राव सिद्ध हो जाता है। वहां अभाव दोष का अवकाश नहीं है। तो यों वस्तु को सद्ग्रावात्मक मानने में विरोध आदिक आठों ही दोष सम्भव नहीं है।

हेतुवाद में साधकत्व व दूषकत्व की स्थिति की भाँति एक वस्तु में सत्त्व और असत्त्व की सिद्धि—अब वस्तु को सत्त्व असत्त्वमय सिद्ध करने के बाद और इनमें शास्त्र और युक्तियों से सत्त्व बताने के बाद इसमें विरोधादिक कोई भी दोष नहीं है, ऐसा स्पष्ट बताने के बाद अब कुछ उन दार्शनिकों को जो कि मिथ्यादर्शन के आग्रह से तत्त्व का ग्रहण नहीं कर रहे हैं उनको सर्वलोक सिद्ध हेतुवाद का आश्रय करके समझाते हैं तो यह बताते हैं, कि देखो ! हेतुवाद में भी स्वपक्ष और परपक्ष की अपेक्षा से साधकता व बाधकता की बात आती है। जिसको अपने अभीष्ट साध्य की सिद्धि करना है उसे हेतु का प्रयोग अवश्य करना पड़ता है। अनुमान में जिस साध्य को सिद्धि के लिए हेतु अवश्य बोलना पड़ेगा। तो जो भी हेतु बोला जायगा वह भी हेतु अपने पक्ष का साधक हो और परपक्ष का बाधक हो, यह बात तो होनी ही पड़ेगी। अब जब स्वपक्ष साधकता और परपक्ष दूषण ये दोनों बातें हेतु में आ गयी तो अब देखिये ! हेतु इन दो धर्मोरूप हो गया ना ? जैसे कि प्रकृत में वस्तु को सत्त्व असत्त्वमय बताया जा रहा है तो उसके उदाहरण में यही देख लीजिए ना कि हेतु स्वपक्षसाधकता और विपक्ष दूषणता इन दोनों धर्मों से युक्त है तो हेतु कहना जरूरी है, क्योंकि केवल प्रतिज्ञा से साम्य की सिद्धि नहीं होती। कह दिया इतने से क्या ? इस पर्वत में अग्नि कहने मात्र से अग्नि सिद्ध नहीं होगी। उसका हेतु देना पड़ेगा कि धूम होने से। अब जो भी हेतु दिया गया उस हेतु में यह कला होगी ही कि वह हेतु अपने पक्ष को सिद्ध करे, विपक्ष की व्यावृत्ति करे तो ये दो धर्म हेतु के अवश्य होते हैं। अब इसमें यह देख लीजिए कि जिस स्वरूप से हेतु में साधकपना है उस रूप से हेतु में दूषकपना नहीं है। और, जिस रूप से हेतु में दूषकपना है उस रूप से हेतु में साधकपना नहीं है। यों तो साधकता और दूषकता ये दोनों अत्यन्त भिन्न है, लेकिन है तो वे दोनों हेतु के धर्म । सो हेतु की अपेक्षा से वे कथंचित् अभिन्न है। अब इसमें इस दोष की कल्पना करना निराधार है कि कोई कहे कि जब हेतु की अपेक्षा साधकता और दूषकत्व ये दोनों धर्म अभिन्न हैं तो जिस रूप से दूषकता हो जाय यों संकर बन जाय कि जिस रूप से साधकता है उस रूप से दूषकता ही रहे। यों व्यतिकर हो जाय अथवा विरोध आदिक हो, साधकता और दूषकता में विरोध हो। इनका भिन्न अधिकरण माना जाय, यह दोष सम्भव तो नहीं है। सभी दार्शनिक इस बात को स्पष्ट समझ रहे हैं। तो जैसे इस हेतुवाद में विरोध आदिक ८ दोष नहीं आ रहे हैं तो ऐसे ही अनेकान्त क्रिया में सत्त्व

और असत्त्व की भी एक वस्तु में वृत्ति हो सकती है। वहां भी ये विरोध आदिक ८ दोष सम्भव नहीं है। अतः वस्तु सदसदात्मक है। और उनकी अपेक्षा देकर यहां ७ भंग बताना प्रमाणसिद्ध है।

सांख्य सिद्धान्त में अनेकान्त प्रक्रिया के आश्रय का प्रयत्न—यह बात पूर्णतया तथ्यभूत है कि अनेकान्त प्रक्रिया में सभी वादियों की सम्मति है, क्योंकि किसी न किसी रूप में एकानेक स्वरूप वस्तु सबने ही माना है। जैसे कि सांख्य सिद्धान्त में कहा है कि सत्त्व रजो और तमोगुण की साम्य अवस्था को प्रधान कहते हैं। तो इस लक्षण में प्रधान की एकानेकात्मकता स्पष्ट विदित हो जाती है। उनके मत में एक प्रधान ऐसा स्वीकार किया गया है जो प्रसन्नता, लघुता, शोक, संताप, कारूण्य आदिक भिन्न-भिन्न स्वभाव रखते हैं, ऐसे पदार्थों का एक प्रधान स्वरूप स्वीकार किया है, तब यहीं तो स्पष्ट हुआ कि यह प्रधान एकानेक स्वरूप है। तो अनेकान्तवाद में भी यहीं बात कहीं जाती है। वस्तु सत्त्व असत्त्वमय है, एकानेकस्वरूप है, नित्यानित्यस्वरूप है। तो इस प्रकार की अनेकान्त पद्धति सबने ही अपनाई है। यहां शंकाकार कहता है कि प्रधान तो कोई एक वस्तु ही नहीं है, किन्तु साम्य अवस्था को प्राप्त सत्त्व रजो तमो गुण ही प्रधान कहलाते हैं, क्योंकि सत्त्व रजो और तमो गुण के समूह में ही प्रधान पद की शक्ति मानी गई है। इस कारण यहां एकानेक स्वरूप सिद्ध नहीं किया जा सकता है। उत्तर में कहते हैं कि यद्यपि तीनों गुणों का समूह ही प्रधान है तो भी यह बात तो अनेकान्तवाद की पद्धति पर प्रकाश डाला जा रहा है। किसी भी रूप में मान लो। तीन गुणों का समूह प्रधान है। ठीक है, पर जाहिर तो यह होगा ना, कि यह प्रधान एक है और त्रिगुणात्मक है। तो एकानेकात्मकपना तो आ ही गया। समुदाय और समुदायी में भेदभाव नहीं है। तीन गुणों का समूह प्रधान है तो उस प्रधान में और उन तीन गुणों में क्या भेद है ? उनका ही समूह तो प्रधान माना है। समुदाय के अनेक अव्यय वहां तो हुए गुण और समुदायरूप हुई एक वस्तु। इन दोनों में अभेद माना गया है। जहां गुण पर्यायवान द्रव्य कहा है वहां भी तो यहीं बात है। गुण पर्याय का जो समुदाय है सो ही द्रव्य है। यों ही प्रधान को माना। तीन गुणों का जो समुदाय है सो ही प्रधान है। तो एकानेक स्वरूपता तो आ ही गई। अनेकान्तवाद में यहीं तो होता है। तो अनेकान्त की प्रक्रिया में सभी वादियों की सम्मति है सबने ही वस्तु को एकानेकस्वरूप माना है।

नैयायिक सिद्धान्त में अनेकान्त प्रक्रिया के आश्रय का प्रयत्न—और भी सुनो ! नैयायिक सिद्धान्त में द्रव्यत्व आदिक को सामान्य विशेष रूप स्वीकार किया है। क्यों है द्रव्यत्व आदिक सामान्य और विशेष स्वरूप की वहां अनुवृत्ति और व्यावृत्ति स्वभाव पाया जाता है, याने अनेक पदार्थों में यह भी द्रव्य है। यह भी द्रव्य है, इस प्रकार का अनुवृत्त ज्ञान पाया जाता है। सबकी

ही बुद्धि में जो इस प्रकार का उस पदार्थ में विषय है इस कारण तो वह सामान्य स्वरूप हुआ और व्यावृत्त स्वभाव वाले हैं याने जो अन्य को पृथक् करे, जैसे कभी द्रव्य नहीं है, द्रव्य कर्म नहीं है तो लो इसमें व्यावृत्त स्वभाव आ गया ना। तो यह विशेषरूप हो गया। यों पदार्थ सामान्य विशेषरूप है यह उनके सिद्धान्त से ही जाहिर होता है। अनेकान्त प्रक्रिया में भी यही बात है—वस्तु एकानेकात्मक है, सदसदात्मक है, नित्यानित्यात्मक है, सामान्य विशेषात्मक है। जो अनेकान्तवाद की प्रक्रियायें हैं उनका ही अनुसरण सबको करना ही पड़ा है। देखिये जितने भी द्रव्य होंगे—जैसे आत्मा, पृथ्वी, जल आदिक द्रव्य माने हैं, यह भी द्रव्य है, सभी उन पदार्थों में द्रव्यपने का ज्ञान अनुगत है। यह अनुवृत्त परिज्ञान है। यह भी द्रव्य है, यह भी द्रव्य है अर्थात् मानते हो कि द्रव्यत्व सामान्य स्वरूप है और जब द्रव्य गुण कर्म ये सब पदार्थ सामने रखे हैं तो वहां व्यावृत्ति का ज्ञान होता है। द्रव्य गुण नहीं है। द्रव्य कर्म नहीं है आदिक व्यावृत्ति का ज्ञान होता है। तो ऐसी दो प्रकार की पद्धतियों के विषय होने से देखो द्रव्यत्व आदिक सामान्य और विशेषरूप है। तो सिद्ध हुआ ना, कि यह द्रव्य सामान्य विशेषात्मक है। यों ही गुणों में लगा लो। गुण भी अनेक होते हैं। उन अनेक गुणों में यह भी गुण है यह तो हुआ अनुवृत्त बुद्धि का विषय। याने सामान्य और गुणकर्म आदिक में परस्पर कर्म गुण नहीं है यह हुआ व्यावृत्ति बुद्धि का विषय। तब यह विशेषस्वरूप हुआ। तब देख लिया ना कि एक ही पदार्थ में सामान्य विशेषात्मक इस सिद्धान्त ने भी माना है। कर्म में भी इसी तरह लगा लीजिए। जितने प्रकार के कर्म है—५ प्रकार के माने गए उत्क्षेपण, अवक्षेपण आदिका इन सब कर्मों में यह कर्म है यों तो होता है अनुगत बुद्धि का विषय। सो सामान्यस्वरूप और गुण कर्म नहीं है, द्रव्य कर्म नहीं है यह हुआ पृथक् करने की बुद्धि का विषय अर्थात् यह विशेष स्वरूप हुआ। तो यों सभी पदार्थ सामान्यविशेषात्मक है, यों नैयायिक सिद्धान्त में भी अनेकान्त प्रक्रिया मानी गई है।

सौगत सिद्धान्त में अनेकान्त प्रक्रिया के आश्रय का यत्न—अब सौगत सिद्धान्त की बात सुनो। वहां माना गया है कि एक मेचक ज्ञान चित्रज्ञान अनेकाकार है। जैसे पञ्चवर्ण स्वरूपरत्न मेचक होता है। जब ज्ञान किया तो वह एक प्रतिभासात्मक ही तो नहीं हुआ मगर एक प्रतिभास स्वरूप है। पंचवर्ण वाले मेचक रत्न का ज्ञान यदि एक प्रतिभासात्मक है तो भी चित्रज्ञान न रहा। यों तो हुआ यह अनेकाररूप और नील पीत आदिक नाना आकारों का जो ज्ञान है वह चित्रज्ञान है, एकाकार ही न रहा। यों तो चित्रज्ञान अनेकाकार स्वरूप है, फिर भी मेचकज्ञान अनेक नहीं है। तभी तो उसमें एक-एक वचन का प्रतिबोध किया जाता है कि यह है मेचकज्ञान। तो वह मेचक ज्ञान, चित्र ज्ञान तो एक ही है। तब देखो ना, कि यह ज्ञान अनेकानेक स्वरूप हो गया। अनेक स्वरूप तो यों है कि उसमें प्रतिभास नाना है। और, वह मेचक ज्ञान एकस्वरूप यों है कि

वह परिणमन है, ज्ञान है और इसी रूप में अनुभव होता है कि यह मेचक ज्ञान है, ऐसा किसी को अनुभव नहीं होता कि यह सब मेचक ज्ञान है। एक ज्ञान में एक ही ज्ञान की बात कहीं जाती है। तात्पर्य यह है कि इस सुगत सिद्धान्त में भी चित्रज्ञान को अनेकात्मक कहा गया है। तो अनेकान्त की प्रक्रिया बिना कोई भी दर्शनिक अपना मन्तव्य सिद्ध नहीं कर सकता।

चार्वाकमन्तव्य में अनेकान्त प्रक्रिया के आश्रय का यत्न—और भी देखिये ! चार्वाक ने माना है—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये चार तत्त्व हैं और उन तत्त्वों से चेतन होता है। जैसे कि कोदो आदिक से मद शक्ति प्रकट होती है। ऐसा चार्वाक के गुरु वृहस्पति का सिद्धान्त है। उनके सूत्र में कहा गया है। तो यहां विचार करें कि यह सही है या नहीं ? यह तो अन्य प्रकरण की बात है। यहां प्रकरण केवल अनेकान्त प्रक्रिया का बताया जा रहा है तो यहां उस चैतन्य को पृथ्वी आदिक भूत चतुष्टय परिणाम माना। तो यहां देखो ! उसने एकानेकात्मक स्वीकार कर लिया ना ? वह चेतन एक है जो कि उन चारों से उत्पन्न होता है और वह अनेक रूप है क्योंकि पृथ्वी आदिक चारों से अतिरिक्त अन्य एक कुछ नहीं माना गया है। कहीं वे ५ होते हैं कि ४ तो पृथ्वी आदिक और १ चेतन। अगर इस तरह मान लें तो चेतन एक दूसरा तत्त्व बन जायगा। फिर ४ भूत है इस तरह का सिद्धान्त न रहेगा। तो देखिये। उस एक को उन्होंने अनेक स्वरूप माना। अब और भी विचार करिये ! चार्वाक सिद्धान्त में पृथ्वी आदिक एक-एक पदार्थ चेतन नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने से घट पट आदिक सभी पदार्थ चेतन बन जायेंगे। उनका सिद्धान्त यह है कि पृथ्वी आदिक अनेक स्वरूप यह एक चेतन है। यहां प्रक्रिया पर दृष्टि डालिए कि एक अनेकात्मक विधि से ही वे ऐसा बोल सकें। अनेकान्त की प्रक्रिया बिना न तो कोई किसी बात को सिद्ध कर सकेगा। वह मिथ्या हो या समीचीन हो यह तो एक निर्णय की बात है। अगर वचन व्यवहार सिद्धान्त की स्थापना यह अनेकान्त की प्रक्रिया नहीं हो सकता। दर्शनिकता की बात तो यह है ही लेकिन लोक व्यवहार भी बिना अनेकान्तवाद की प्रक्रिया का अनुसरण किए बन नहीं सकता। सब जीव ये नित्यानित्यात्मक है। तो है अथवा वे अब नहीं रहे ये दोनों बातें प्रत्येक मनुष्य में लोग समझते हैं तभी व्यवहार चल रहा है। किसी को कुछ उधार दिया तो उसी से क्यों मागते हैं ? अटपट किसी अन्य से क्यों नहीं मागते ? इससे सिद्ध है कि नित्यपना है, जिसे दिया था वही है यह, तब उधार देने लेने की प्रक्रिया बनी और यदि पूर्णतया उस ही समय की अवस्थावान हो तो भी नहीं बन सकता। परिणाम तो होता ही है। काल का परिणमन हुआ, अवस्थाभेद हुआ, दिन भी कुछ गुजरे। तभी उसकी सूद भी कुछ बना। यों इन सभी बातों से अनित्यता भी जाहिर होती है। तो यों नित्यानित्यात्मक माना तब यह लोक व्यवहार बन सका।

तो इस तरह अनेकान्त की प्रक्रिया बिना कोई भी दार्शनिक न अपना सिद्धान्त स्थापित कर सकता और न कुछ लोक व्यवहार ही बन सकता।

मीमांसक सिद्धान्त में अनेकान्त प्रक्रिया के आश्रय का यत्न—मीमांसक सिद्धान्त में ज्ञान के सम्बन्ध में यह बताया गया है कि प्रमाता, प्रमिति एवं प्रमेयाकार एक ही ज्ञान होता है। प्रमाता का अर्थ है जानने वाला आत्मा। प्रमिति का अर्थ जानन किया। और प्रमेय का अर्थ है, ज्ञान के विषयभूत अनेक पदार्थ। तो जो ज्ञान नहीं होता है वह ज्ञान एक है और प्रमाता प्रमिति तथा प्रमेयाकार ही है। इसका हेतु यह है कि अनुभव ही इस प्रकार होता है—मैं घट को जानता हू। यहां मैं तो हुआ प्रमाता और घट हुआ प्रमेय और जानता हू यह है प्रमिति। यहां अनुभव एक है और उस एक अनुभव में सम्बन्ध है इन तीन का। याने ज्ञान की जो मुद्रा बनी वह मुद्रा उस प्रमाता, प्रमिति और प्रमेय के विषयरूप से बनी। ज्ञान कोई ऐसा नहीं है कि जो केवल एक प्रमाता के ही आकार हो—अहं ! इससे ज्ञान किया और यदि ज्ञान होता है तो मैं अपने को जान रहा हू। तो वहां तीन बातें आ ही गई। मैं हूं प्रमाता, अपने को हुआ प्रमेय और जानता हूं यह है प्रमाण। तो ज्ञान की जो मुद्रा बनती है, वह बनती है प्रमाता प्रमिति तथा प्रमेय के आकार रूप से। दूसरा हेतु यह है कि ज्ञान जितने होते हैं वे सब स्वतः प्रकाशक होते हैं। तो जब स्वतः प्रकाशक हुए तो आकार ज्ञान का इन तीन रूप होगा ही। ये भिन्न नहीं है, पर से ज्ञान आये ऐसी बात नहीं है। इसलिए यहां विषयभूत परपदार्थ आकार की बात नहीं कह रहे, किन्तु ज्ञान में विषयपने से आये हुए प्रमेय की बात कहीं जा रही है और वह प्रकाशन स्वतः हुआ है और वह स्व है, प्रमाता और ज्ञान में जानन किया तो है ही। तो यों जो ज्ञान होता है वह प्रमाता प्रमिति और प्रमेयाकार होता है। ऐसा मीमांसक सिद्धान्त में कहा गया है। अब उक्त मीमांसक सिद्धान्त में यह परखना है कि अनेकान्त की प्रक्रिया किस तरह अपनाई गई है। यहां यह स्वीकार किया है कि प्रमाता प्रमिति और प्रमेयरूप अनेक पदार्थ उनके विषयपने से सहित एक ज्ञान है। ज्ञान एक है जिसमें विषय ये तीन हुए। ऐसा ज्ञान स्वीकार किया है तो यहां विषयपने की अपेक्षा से तो बात आयी तीन और ज्ञानस्वरूप की अपेक्षा से वह है एक ही। विषयपने का ज्ञान स्वरूपता होने से उन तीन के विषयात्मक ही यह एक ज्ञान स्वीकार किया है। तात्पर्य तो यही हुआ कि यह एक ज्ञान त्रितयात्मक है, एकानेकान्तात्मक है, यही तो अनेकान्त की प्रक्रिया है।

अनेकान्त प्रक्रिया में वस्तुपरिचय की समीचीनता—अब उक्त सब बातों में सप्तभंगी बनाई जा सकती है। ज्ञान स्यात् एक है, ज्ञान स्यात् अनेक है। ज्ञान स्यात् एक और अनेक है, ज्ञान स्यात् अवक्तव्य है, ज्ञान स्यात् एक अवक्तव्य है। ज्ञान स्यात् अनेक अवक्तव्य है, ज्ञान स्यात् एक

अनेक अवक्तव्य है। इसी प्रकार इन ऊपर बताये गए सभी दार्शनिकों के सिद्धान्त में एक अनेक सामान्य विशेष सभी अनेकान्त प्रक्रियाओं में सप्तभंगी लगायी जा सकती है। जैसे कि नैययिका जन द्रव्य गुण कर्म आदिक पदार्थ मानते हैं तो वहां सामान्य विशेष घटित हो ही जाता है। द्रव्य इस प्रकार अनुवृत्ति का ज्ञान होने से सामान्य आया और द्रव्य गुण नहीं, कर्म नहीं, ऐसी व्यावृत्ति का बोध होने से सामान्य आया। अब उस ही एक को जैसे द्रव्य ही लिया तो यह स्यात् सामान्य रूप है। यह स्यात् विशेषणरूप है, यह स्यात् सामान्य विशेषरूप है, यह स्यात् अवक्तव्य है, यह स्यात् सामान्य अवक्तव्य है यह स्यात् विशेष अवक्तव्य है, यह स्यात् सामान्य विशेष अवक्तव्य है। तो यों सभी दार्शनिकों ने अपने सिद्धान्त निर्माण में अनेकान्त प्रक्रिया को अपनाया है और वास्तविकता भी यही है कि प्रक्रियाओं को अपनाये बिना न तो कोई दर्शन कर सकता, न लोकव्यवहार हो सकता। बल्कि यह भी कह सकते हैं कि अनेकान्त प्रक्रिया के अपनाये बिना कोई बोल भी नहीं सकता।

अनेकान्तप्रक्रिया के बिना बोधगति का अभाव—देखिये ! किसी ने कुछ कहा तो जो कहा सो है, जो नहीं कहा गया, सो नहीं है। कोई कहता है कि मैं सत्य ही बोलता हूँ तो उसके साथ -साथ यह तो लगा ही हुआ है कि मैं असत्य नहीं बोलता हूँ। दोनों बातें मानने से ही अभिप्राय बनेगा। भले ही उनमें से बात एक ही कहीं जाय। लेकिन दूसरी बात उसके साथ लगी हुई ही है। किसी भी चीज के सम्बन्ध में कोई यह कहे कि यह है तो उसके साथ यह दूसरा भंग लगा ही हुआ है कि यह अन्य कुछ नहीं है—यह ही है, यह अन्य कुछ नहीं है। और फिर ये दो बातें एक साथ नहीं कहीं जा सकती। इस कारण अवक्तव्य है। ये तीन स्वतन्त्र भंग तो स्पष्ट ही आ गए। फिर इनका संयोगी भंग बनकर ७ भंग हो जाते हैं। तो सप्तभंगी अनेकान्त प्रक्रिया यह प्राकृतिक चीज है और यह मानना ही होगा। अब केवल खेद की बात इतनी ही है कि प्रयोग में तो सब अनेकान्त प्रक्रियाओं को लेना है, पर अनेकान्त की पद्धति को समीचीनता का रूप देने में संकोच करते हैं। क्योंकि उससे अनेकान्त प्रक्रिया को स्पष्ट रूप से प्रसिद्ध कर लेंगे दार्शनिक तो दर्शन के प्रसंग में एक भी विवाद नहीं रह सकता। इस प्रक्रिया के मानते ही धीरे-धीरे सर्वत्र सुधार होकर वास्तविकता पर उपयोग पहुंच जायगा। द्रव्य के सम्बन्ध में जैसे सब लोग समझ रहे हैं कि यह पदार्थ है तो वह पदार्थ है तो पदार्थ शक्तिमय है और किसी न किसी अवस्था में है। और, ऐसे अनेक पदार्थों के साथ समता है फिर भी सत्त्व और परिणमन की दृष्टि से एक की अनेक से भिन्नता है। लेकिन इस विशेषता के वर्णन में द्रव्य, गुण, कर्म सामान्य विशेष ये ५ बातें आ जाती हैं। अब ये ५ बातें अलग-अलग हैं कहां ? प्रदेश तो वही वहीं है इन ५ के लिए किसी भी द्रव्य में जो अवस्था बनती है वह उसके प्रदेश में ही है। जो गुण है वह उसके प्रदेश में ही

है। अब उनकी तुलना करने से समता विषमता का जो ज्ञान हुआ वही कहीं अन्यत्र नहीं पड़ा है। जिन धर्मों को निरख कर हम समता विषमता को मानते हैं वह तत्त्व उन ही प्रदेशों में है। तो जब ये ५ बातें एक ही जगह हैं तो समवाय फिर क्या रहा ? कथंचित् तादात्म्य ही तो समवाय है और अभाव किसी के भावरूप ही होता है, तब ये ६ पदार्थ ७ पदार्थ कहां रहे ? और इस धुन में जिसे पदार्थ कहना चाहिए था वे सब छूट गए। तो अनेकान्त प्रक्रिया अपनाने पर धीरे-धीरे सभी का सुधार होकर वस्तु की वास्तविकता पर उपयोग पहुंच ही जायेगा।

वस्तु के सत्य परिज्ञान के लिए स्याद्वाद के आश्रय की आवश्यकता—वस्तु का सत्य परिज्ञान करने के लिए स्याद्वाद का आश्रय करना परम आवश्यक है। स्याद्वाद का आश्रय किये बिना वस्तु के सम्बन्ध में यथार्थ परिज्ञान नहीं हो सकता है। वस्तु तत्त्व के यथार्थ परिज्ञान बिना मोह नहीं हट सकता। मोह के हटे बिना राग द्वेष से दूर नहीं हो सकते। रागद्वेष दूर हुए बिना संसार के जन्म मरण संकट मिट नहीं सकते। जन्म मरण का संकट मिटे, इस ही में आत्मा का श्रेय है और यही सर्वोपरि वैभव है। तो ऐसी मुक्ति परम वैभव को पाने के लिए इन तत्त्वों को परिज्ञान करना आवश्यक है और उनके यथार्थ परिचय का आधार है स्याद्वाद। इसी हेतु इस स्याद्वाद का निरूपण करने वाली सप्तभांगी तरंगिणी अनेक भंगों से व्याप्त है और सिद्धान्त रूपी समुद्र से संयुक्त है। मानो जैसे कोई एक समुद्र होता है और उस समुद्र में लहरें अनेक होती हैं। ऐसी ही समझिये कि यह सिद्धान्त समुद्र है। सिद्धान्त कहते हैं वस्तु तत्त्व का वर्णन करने वाला शब्द और ज्ञानरूप आगम को। उस सिद्धान्त समुद्र में अनेक लहरे उठ रही हैं स्याद्वाद के प्रताप से। तो जैसे-जैसे कोई संतप्त मनुष्य समुद्र की लहरों का सेवन करके अपने संताप को समाप्त करके आनन्द प्राप्त करता है इसी प्रकार इस सिद्धान्त समुद्र से अनेक लहरों का स्पर्श करके विद्वान पुरुष भी अज्ञान संताप को हटाकर, मोह संताप को दूर करके विशुद्ध सत्य आनन्द को प्राप्त करते हैं। सो ग्रन्थकार यह भावना कर रहे कि अनेक भंगों से व्याप्त सिद्धान्त समुद्र से संयुक्त यह सप्तभांगी विद्वानों को आनन्द प्रदान करें !